इकाई 8 प्रारम्भिक वैदिक समाज*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- उन अनेक स्रोतों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, जिनसे हम प्रारंभिक वैदिक काल के विषय में जान सकते हैं;
- इन स्रोतों के माध्यम से भारतीय-आर्यों के व्यापक स्तर पर स्थानांतरण के सिद्धांत का परीक्षण कर सकेंगे; और
- प्रारम्भिक वैदिक काल की अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति एवं धर्म की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पहले की इकाइयों में आपने देखा कि लगभग 2000-1000 बी.सी.ई में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक रूप से असमान विकास वाली सभ्यताएँ पायी जाती थीं। ये सभ्यताएँ अनिवार्यतः कृषि-पशुपालन पर आधारित थीं और चूंकि इन सभ्यताओं ने सिवाय हड़प्पा सभ्यता के कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़े हैं, अतः इनके बारे में केवल पुरातात्विक अवशेषों से ही जानकारी मिलती है। इस और अगली इकाई में हम धार्मिक अभिलेखों के उस विशाल भण्डार का अवलोकन करेंगे, जिसे भारत का प्राचीनतम् साहित्यिक प्रमाण माना जाता है। यह एक विस्तृत याजकीय साहित्य है। *वेदों* को मनुष्यों (अपौरुषेय) द्वारा रचित नहीं बल्कि दिव्य प्रकटन के रूप में देखा गया था जो ऋषियों और द्रष्टाओं द्वारा सुने गये (*श्रुति*) थे। उनके

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-3 से ली गई है।

प्रकट होने के समय उन्हें नहीं लिखा गया। उन्हें पूर्ण संस्मरण द्वारा भावी पीढ़ी को सौंप दिया गया। इस प्रक्रिया में हर शब्दांश का परिपूर्ण रूप से संस्मरण किया गया। इस प्रक्रिया को *ऋग्वेद* के मंडूक-सूक्त (*भेकस्तुति*) में व्यक्त किया गया है। यह कहा गया है कि वर्षा ऋतु में मेंढक की तरह छात्रों को एक छात्र का अनुसरण करके सूक्तों का संस्मरण करना चाहिए। उन्हें कई शताब्दियों के दौरान सावधानीपूर्वक और मौखिक रूप से प्रेषित किया गया था, जो कि बिना संशोधन के, जोड़ या घटाव के, बिना ध्वनि के, सही उच्चारण और अभिव्यक्ति पर निर्भर थे। यह तब तक रहा जब तक उन्हें लिखा नहीं गया। इस प्रमाण की पुष्टि हम पुरातात्विक साक्ष्यों द्वारा यथासम्भव करेंगे। *ऋग्वेद* को प्राप्य मंत्रों का प्राचीनतम संग्रह माना जाता है अतः हम पहले *ऋग्वेद* का ही अध्ययन करेंगे ताकि आरंभिक वैदिक काल के विषय में जानकारी मिले। इसके बाद अन्य *वेदों* और उनसे सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस प्रकार के अध्ययन के दो लाभ हैं।
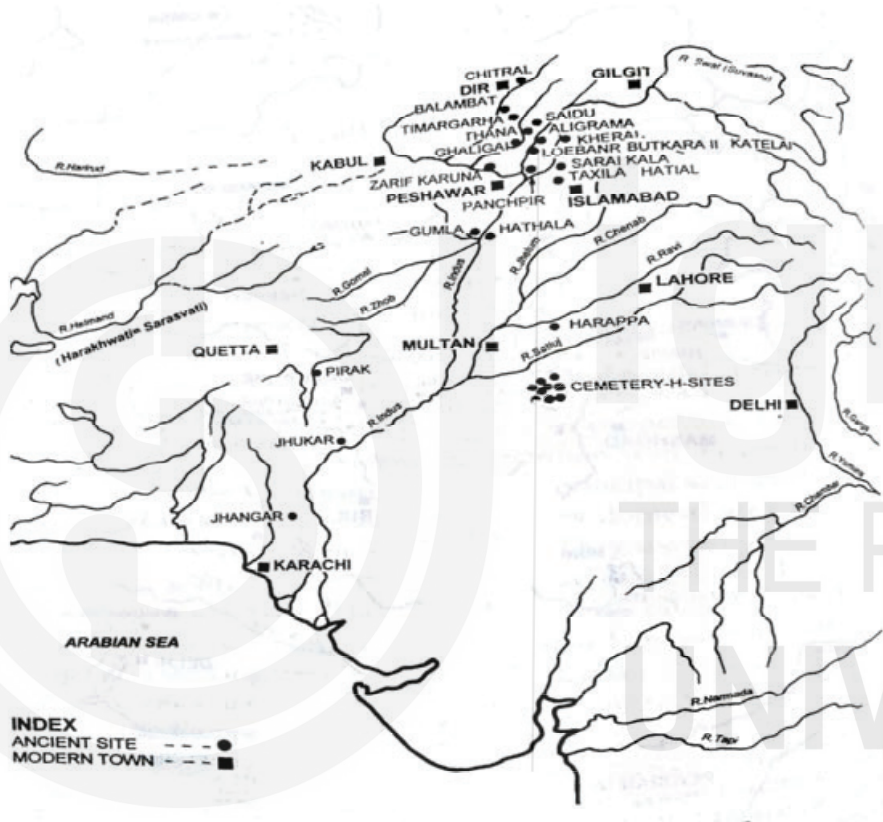
आरम्भिक भारतीय आर्य स्थल। आर.एस. शर्मा (2005) *इण्डियाज़ एंशियण्ट पास्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवार्सिटी प्रेस, नई दिल्ली से रूपान्तरित, पृ. 95।

पहला, आर्यों को *वेदों* का रचयिता माना जाता है और साथ ही यह बहुत समय तक समझा गया कि भारतीय उपमहाद्वीप में संस्कृति के विकास में आर्यों की प्रमुख भूमिका रही। *ऋग्वेद* की सामग्री के सूक्ष्म परीक्षण से यह नहीं लगता कि उस समय की भौतिक सभ्यता बहुत विकसित थी। बल्कि इसके विपरीत भारतीय सभ्यता की तमाम विशिष्ट भौतिक विशेषताएँ ऐसी हैं जो भारत के विभिन्न भागों में पायी गयी ऐसी पुरातात्विक संस्कृतियों में मौजूद थीं जिनका वैदिक काल से कोई संबंध नहीं था।

दूसरा, *ऋग्वेद* और उसके बाद के *वेदों* और सम्बद्ध साहित्य से प्राप्त सामग्री की तुलना करने से यह पता चलता है कि वैदिक समाज के अंदर भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा सुनिश्चित सांस्कृतिक ढाँचा नहीं था जिसे वैदिक संस्कृति या आर्य संस्कृति कहा जा सके।

आरंभिक वैदिक काल के लिए *ऋग्वेद* एक मात्र साहित्यिक स्रोत है। बाकी के तीन *वेदों* का

संकलन बाद में हुआ। इसलिए इन तीन *वेदों* को उत्तर वैदिक काल का माना जाता है। वैदिक काल को हम दो व्यापक कालानुक्रमिक भागों में विभाजित कर सकते हैं :

- आरंभिक वैदिक / ऋग्वैदिक
- उत्तर वैदिक

ऋग्वेद के प्रमाण सप्त सिन्धु अर्थात् सात नदियों की भूमि वाले भौगोलिक क्षेत्र से सम्बद्ध है। यह क्षेत्र पंजाब और निकटवर्ती हरियाणा का है। किन्तु *ऋग्वेद* के भूगोल में गोमती के मैदान, दक्षिणी अफगानिस्तान और दक्षिणी जम्मू कश्मीर भी सम्मिलित हैं। प्रारंभिक व्याख्याओं के अनुसार, भारतीय आर्यों के स्थानांतरण का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित हैं कि वे पश्चिम एशिया से भारतीय उप-महाद्वीप में आये। ये प्रवासी '*वेदों*' के रचयिता माने जाते हैं इसलिए इनको वैदिक जन कहा गया है। इस ऐतिहासिक व्याख्या के अनुसार, आर्य कई झुण्डों या चरणों में भारत आये।

सिंधु सभ्यता के नगरीय केंद्रों का मध्य दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. तक ह्रास हो गया था। राजनीतिक-प्रशासनिक और आर्थिक प्रणाली लुप्त हो चली थी। धीरे-धीरे अब ध्यान ग्रामीण बस्तियों पर केंद्रित हो रहा था। इस समय के आसपास इंडो-आर्यन भाषा बोलने वालों ने भारत-ईरानी सीमा से उत्तर पश्चिमी भारत में प्रवेश किया। उत्तर पश्चिमी पहाड़ों के दर्रों के माध्यम से प्रवेश किया और अपने साथ अपनी भाषा, रीति-रिवाज और सामाजिक परंपराओं को लेकर आए, जिनका बाद में स्थानीय आबादी में विलय हो गया। आर्यों को एक भाषाई समूह जो कि इंडो यूरोपीय[1] भाषाओं को बोलने वाला था, समझा गया है। परम्परागत इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा उनको गैर आर्य हड़प्पावासियों से भिन्न प्रकार का माना गया है।

तथापि प्रारम्भिक वैदिक समाज की टीका करने के लिए यह देखना लाभदायक होगा कि, साहित्यिक रचनाओं और पुरातात्विक साक्ष्यों में पूरकता है या नहीं। यदि ये दोनों प्रकार के स्रोत एक ही काल और क्षेत्र से सम्बद्ध हों तो इन्हें मिला कर आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी और विचार मिल सकते हैं। आइए, हम इन स्रोतों की चर्चा करें।

8.2 स्रोत

प्रारम्भिक वैदिक समाज के अध्ययन के लिए मुख्यतः हमारे पास दो प्रकार के स्रोत हैं – साहित्यिक तथा पुरातात्विक। आइए, पहले हम साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन करें।

8.2.1 साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोत के रूप में हमारे पास चार वैदिक ग्रंथ हैं :

- *ऋग्वेद,*
- *सामवेद,*
- *यजुर्वेद,* और
- *अथर्ववेद*।

इनमें *ऋग्वेद* सबसे प्राचीन रचना है।

''*वेद*'' शब्द को संस्कृत में ''विद'' से लिया गया है जिसका भावार्थ है ''ज्ञान होना''।

[1] 'इंडो-यूरोपियन' शब्द प्राचीनतम् भाषाओं के समान मूल भाषाई परिवार को दर्शाती है। संस्कृत, ईरानी, लैटिन, ग्रीक, जर्मन और अन्य यूरोपीय भाषाओं को जिन्हें दक्षिण-पश्चिम एशिया, यूरेशिया और यूरोप में बोला जाता है, इस 'इंडो युरोपिन' की वंशज मानते हैं। ये भाषाएँ आत्मीयता और समानता साझा करती हैं।

''*वेदों*'' में प्रार्थनाओं और श्लोकों का संकलन है और इनकी रचना बहुत से कवियों तथा महाऋषियों के परिवारों ने देवताओं के सम्मान में की। यद्यपि *वेद* मुख्य रूप से धार्मिक जीवन, संस्कार, अनुष्ठान, दार्शनिक प्रश्नों और मुद्दों के बारे में हैं, विभिन्न देवताओं को समर्पित आह्वान अक्सर युद्ध में जीत, लंबे जीवन, रोगों से मुक्ति, मवेशियों, घोड़ों, भोजन की उपलब्धता, पुत्र प्राप्ति जैसी कामनाओं की पूर्ति के लिए किये जाते थे। हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि वैदिक साहित्य कई शताब्दियों में विकसित हुआ है, लगभग एक सहस्राब्दी। इसलिए इस साहित्य को एक स्थिर समाज और संस्कृति की दर्पण छवि के रूप में नहीं लिया जा सकता। ऋग्वैदिक से उत्तर वैदिक काल तक राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, समाज और सांस्कृतिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन हुए। इन चारों *वेदों* को ''संहिता'' भी माना जाता है क्योंकि उस समय की मौखिक परम्परा के प्रतीक हैं। चूँकि श्लोक का तात्पर्य था उसका पाठ करना, उसको कंठस्थ करना तथा मौखिक रूप से उसको स्थान्तरित कर देना। अतः जिस समय इनको संकलित किया गया उस समय इनको लिखा नहीं गया। इसी कारणवश किसी भी संहिता के रचना काल को पूर्ण निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक संहिता कई शताब्दियों के दौर में हुए संकलन का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन चारों संहिताओं में वर्णित विषय वस्तु के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि *ऋग्वेद* की रचना लगभग 1500 बी.सी.ई से 1000 बी.सी.ई के मध्य में हुई होगी। और इसी समय को प्रारम्भिक वैदिक काल भी कहा जाता है। *ऋग्वैदिक संहिता* में 1028 सूक्त हैं, जिन्हें असमान आकार की 10 पुस्तकों (*मण्डलों*) में विभाजित किया गया है। 2-7 तक की पुस्तकों को कालक्रम की दृष्टि से सबसे पहले का माना जाता है। और ये आरंभिक वैदिक काल से संबंधित है। इन्हें 'परिवार ग्रंथ' भी कहा जाता है, क्योंकि हर पुस्तक किसी एक परिवार या कबीले के नाम पर आधारित है जिन्होंने इन किताबों में सम्मानित सूक्तों की रचना की। 1, VIII, IX पुस्तकें और X बाद की हैं। इस साहित्य पर सबसे अच्छी तरह से ज्ञात टीकाओं में से 14वीं शताब्दी सी. ई. की शायान की है, जो विजयनगर के राज्य में रहता था। शायणाचार्य की टिप्पणी के बिना 19वीं शताब्दी में मैक्स मुलर के लिए *ऋग्वेद* का संपादित संस्करण तैयार करना असंभव था।

विद्वानों का मत है कि *ऋग्वेद* और ईरान के प्राचीनतम ग्रंथ *अवेस्ता* जो *ऋग्वेद* से भी पहले की रचना है, में समान भाषा का प्रयोग हुआ है। *अवेस्ता* और *ऋग्वेद* के बीच भाषाई और सांस्कृतिक समानतायें केवल शब्दों में नहीं बल्कि अवधारणाओं में भी होती है। उदाहरण के लिए 'h' और 's' में अदला-बदली जैसे *अवेस्ता* में होमा, दाहा, हेप्टा हिंदु, अहुरा है और वही *ऋग्वेद* में सोम, दास, सप्त सिंधु, असुर में यह बदल जाता है। देवताओं के संदर्भ में, देवों की विशेषताओं को अक्सर उलट दिया जाता है। *ऋग्वेद* में असुरों को राक्षस व देवताओं के शत्रु समझा गया। *अवेस्ता* में दैव/देवता जैसे इंद्र राक्षस हैं वहीं अहुर/असुर सर्वोच्च देवता हैं। इन भाषाई समानताओं के आधार पर तथा कालक्रम में *अवेस्ता* को *ऋग्वेद* का अग्रगामी बताते हुए विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं -

1) इन दोनों ग्रंथों में वर्णित लोग एक समान बहु-भाषा समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका स्थानांतरण पश्चिम एशिया एवं ईरान से भारतीय उप-महाद्वीप की ओर हुआ। ये लोग ''आर्य'' कहलाये। इससे यह धारणा बन गई है कि प्राचीन ईरानी और इंडो-आर्यन भाषा बोलने वाले मूल रूप से एक एकल समूह थे, जिनके विघटन के परिणामस्वरूप शाखाएँ बन गयीं। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्र के साथ ईरान की भौगोलिक निकटता को देखते हुए यह सुझाव दिया जा सकता है कि इंडो-आर्यन भाषी, एक विघटन के बाद, भारत पहुँचे जहाँ उन्होंने *ऋग्वेद* की रचना की।

2) आर्यों का मूल स्थान एक ही था जहाँ से वे विभिन्न समूहों में यूरोप एवं पूर्व की ओर स्थानांतरित हुए। बाल गंगाधर तिलक और जार्ज बाइडेनकैप के अनुसार, आर्कटिक क्षेत्र

आर्यों का मूल घर था। हालांकि, इस सिद्धांत को बड़े पैमाने पर स्वीकार नहीं किया गया है।

तथापि, आर्यों के उत्पत्ति-स्थल के विषय में वाद-विवाद की वैधता अब समाप्त हो चुकी है क्योंकि समान जातीय पहचान की अवधारणा को गलत साबित किया जा सकता है। परंतु एक समान भाषाओं की अवधारणा के आधार पर इतिहासकार आर्यों के स्थानांतरण के सिद्धांत पर विश्वास करते हैं और कुछ इतिहासकार इस पर विशेष ज़ोर देते हैं।

8.2.2 पुरातात्विक साक्ष्य

पिछले 40 वर्षों में सिंधु व घग्घर नदियों के किनारे, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी राजस्थान में उत्खनन के द्वारा इन क्षेत्रों से हड़प्पा काल के बाद के उन्नत ताम्र पाषाण संस्कृति के अवशेषों को खोद निकाला गया है। इनका समय 1700 बी.सी.ई से 600 बी.सी.ई के मध्य का है। आपने इकाई 7 में इस बारे में पढ़ा है। आपने देखा है कि इन ताम्र पाषाण संस्कृतियों को उत्तर हड़प्पा, ओ.सी.पी. (गेरु रंग के मृद्भांड), बी.आर.डब्ल्यू. (काले-और-लाल मृद्भांड) और पी.जी.डब्ल्यू. (स्लेटी मृद्भांड) के नामों से (अपनी विशेषताओं के कारण) पुकारा जाता है।

तथापि, हमें यह याद रखना चाहिए कि मिट्टी के बर्तन (मृद्भांड) बनाने वाली शैली उस समय के लोगों की सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतीक नहीं है। विभिन्न प्रकार के मृद्भांड निर्मित करने की शैलियों का अनिवार्यतः यह अर्थ कदाचित नहीं है कि इन बर्तनों का प्रयोग करने वाले लोगों में भी अन्तर था। विश्लेषण किसी सांस्कृतिक संग्रह के एक विशेष लक्षण को ही परिभाषित करता है, इससे अधिक नहीं। कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य और उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तरी भारत में प्राप्त इन संस्कृतियों के संकेतों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है।

8.3 आर्यों का आक्रमण – कल्पित या वास्तविक

क्या आर्यों का आक्रमण एक कल्पना मात्र थी या वास्तविकता? अब हमें यह देखना है कि किस सीमा तक पुरातात्विक साक्ष्य इस प्रश्न का उत्तर जानने में हमारी मदद कर सकते हैं।

पुरातात्विक विद्वानों ने बहुत सी उत्तर-हड़प्पा संस्कृतियों को आर्यों से जोड़ने का प्रयास किया हैं। स्लेटी बर्तनों की संस्कृति को बार-बार आर्यों की शिल्पकारिता के साथ जोड़ा जाता है और इसको लगभग 900 बी.सी.ई. से 500 बी.सी.ई. के मध्य का माना गया। उनका तर्क उन अनुमानों पर आधारित है जिनको इतिहासकारों ने साहित्यिक रचनाओं के विश्लेषण के द्वारा निकाला था। तथापि, *ऋग्वेद* एवं *अवेस्ता* के बीच पाई जाने वाली भाषागत समानता का अनुसरण करते हुए पुरातत्वविदों ने, बर्तनों की किस्म, मिट्टी के बर्तनों पर चित्रण और तांबे आदि की वस्तुओं के बीच समानता दिखा कर उत्तर-हड़प्पा तथा पश्चिम एशिया/ईरानी ताम्र पाषाण संग्रह के मध्य समानता के चिन्ह खोजने की चेष्टा की है। इस प्रकार की अतिरंजित समानताओं ने इतिहासकारों के इस निष्कर्ष को बढ़ावा दिया है कि आर्य उन लोगों का समूह था जिन्होंने पश्चिम एशिया से भारत की ओर स्थानांतरण किया था। इस प्रकार साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक दूसरे का पूरक बना कर स्थानांतरण के सिद्धांत की वैधता को पुष्ट किया गया।

ऋग्वेद तथा *अवेस्ता* के मध्य भाषागत समानताओं को लेकर कोई विवाद नहीं है। परंतु इस प्रकार की समानता ये नहीं दर्शाती कि विशाल स्तर पर लोग भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरित हुए। दूसरा ये कि भारत में ताम्र पाषाण शिल्प अवशेषों और पश्चिम एशिया में पाए गए शिल्प अवशेषों के बीच समानता कम ही पायी जाती है। यह भी विशाल स्तर पर लोगों के स्थानांतरण को नहीं दिखाता। ''आर्य'' अवधारणा की जैसा कि पहले कहा गया, मृद्भांड की किसी एक शैली के आधार पर पहचान नहीं की जा सकती और न ही इसका

नस्लीय या जातीय आधार पर अब कोई महत्त्व है। ''आर्य'' एक खोखली अवधारणा है जो लोगों के बीच भाषागत समानता से संबंधित हैं। इस विषय में आपको उत्खनन द्वारा प्रस्तुत किये गये निम्नलिखित निष्कर्षों का ध्यान रखना चाहिए।

1) प्रारम्भिक विद्वानों का विश्वास था कि इंडो-आर्य हड़प्पा सभ्यता के पतन का कारण थे उन्होंने हड़प्पा के नगरों तथा शहरों का सर्वनाश किया। उन्होंने *ऋग्वेद* के उन श्लोकों को उद्धृत किया जिसमें इंद्र को किलों के निवासी नष्ट करने वाला बताया गया है। लेकिन पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते कि हड़प्पा कालीन सभ्यता का पतन इसलिए हुआ कि उस पर किसी बाहरी शक्ति ने कोई व्यापक आक्रमण किया था।

2) चित्रित धूसर मृद्भांड (पी.जी.डब्ल्यू.-स्लेटी बर्तन) के प्रयोग करने वालों को आर्यों से जोड़ने के प्रयासों को पुरातात्विक साक्ष्य भी प्रमाणित नहीं करते। अगर मृद्भांड संस्कृतियाँ आर्यों के विषय में सूचित करती हैं तो उनके आक्रमण की अवधारणा को मस्तिष्क में रखते हुए ये मृद्भांड बहावलपुर तथा पंजाब में भी मिलने चाहिए क्योंकि आर्यों के स्थानांतरण का रास्ता भी यही था। लेकिन, हमें यह एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र जैसे हरियाणा, ऊपरी गंगा के थाल और पूर्वी राजस्थान में प्राप्त होते हैं।

3) दोनों संस्कृतियों में समय के अंतर के विषय में भी सोचा गया जिसका तात्पर्य यह लगाया गया कि उत्तर हड़प्पा और हड़प्पा काल के बाद की ताम्र पाषाण कालीन सभ्यता के बीच एक अंतराल था। भगवानपुरा, दधेरी, हरियाणा और मंडा में की गई हाल की खुदाइयों से पाया गया कि उत्तर हड़प्पा और स्लेटी बर्तनों (पी.जी.डब्ल्यू.) की संस्कृति के अवशेषों को बिना किसी रुकावट के एक साथ पाया गया है। इस प्रकार ''आक्रमण'' की अवधारणा को भी खुदाइयों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।

4) 1750 बी.सी.ई. के बाद नगर एवं शहर, साधारण बनावटी औज़ार जैसे मोहरें, तोल-माप के साधन आदि जो व्यापार एवं नगरीकरण से संबंधित थे, लुप्त हो गये। प्रारम्भिक काल का ग्रामीण ढांचा द्वितीय तथा पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. में भी स्थिर बना रहा। पुरातात्विक खोजों के द्वारा खोजी गई उत्तर हड़प्पा काल के बाद की वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन, धातु के औज़ार तथा अन्य वस्तुएँ वास्तव में भारत की ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति की क्षेत्रीय विभिन्नता दिखाती हैं।

इस प्रकार दूसरी और पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. के पुरातात्विक प्रमाणों ने वैदिक आर्यों के विषय में आजकल प्रचलित दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रथमतः पुरातत्व में ऐसा कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह सिद्ध हो कि 1500 बी.सी.ई. के आस-पास मध्य या पश्चिमी एशिया से भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर लोगों का स्थानान्तरण हुआ। दूसरा, इस बात का कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिला है कि आर्यों ने हड़प्पा की सभ्यता का विनाश करके एक नयी भारतीय सभ्यता की स्थापना की। वस्तुतः यद्यपि *ऋग्वेद* में बार-बार विभिन्न दलों के बीच *संघर्ष* और लड़ाइयों का वर्णन आया है, किंतु आर्यों और अनार्यों तथा उनकी संस्कृतियों के बीच कथित मुठभेड़ों का कोई भी विवरण पुरातत्व में नही मिलता।

फिर भी चूँकि *ऋग्वेद* धार्मिक श्लोकों का प्राचीनतम उपलब्ध संग्रह है अतः इसका ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन श्लोकों (स्तोत्रों) से उस प्रारम्भिक समाज के विभिन्न पहलुओं के विषय में ऐसी जानकारियाँ मिलती हैं जो पुरातात्विक प्रमाणों से नहीं मिल सकती। उनसे हमें उस समय की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, राजपरम्परा और राजनैतिक संगठन, धार्मिक और ब्रह्माण्डिकीय विश्वासों आदि के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें से अधिकांश जानकारी परिवर्तिकालीन भारतीय समाज को समझने में सहायक सिद्ध

होती है। अतः अब हम यह देखेंगे कि *ऋग्वेद* से प्रारम्भिक वैदिक समाज के बारे में क्या जानकारी मिलती है।

बोध प्रश्न 1

1) चार *वेद* क्या हैं? प्रारम्भिक काल से कौन सा *वेद* विशेषकर संबंधित है?

....

....

....

....

2) क्या आर्यों के आक्रमण की अवधारणा पुरातात्विक उत्खनन के प्रकाश में स्वीकार्य है? पुरातत्वविदों की व्याख्याओं को 100 शब्दों में दीजिए।

....

....

....

....

3) प्रत्येक का उत्तर (हाँ) या (नहीं) में दीजिए।

i) आरंम्भिक वैदिक काल का हमारा ज्ञान केवल साहित्यिक साक्ष्यों पर आधारित है। ( )

ii) *वेद* अनिवार्य रूप से देवताओं को समर्पित प्रार्थनाओं एवं श्लोकों का संकलन हैं। ( )

iii) *अवेस्ता* ईरानियों का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। ( )

iv) *ऋग्वेद* एवं *अवेस्ता* के बीच भाषागत समानताएँ 'आर्यों' के भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानांतरण की अवधारणा को वैधता प्रदान करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। ( )

8.4 अर्थव्यवस्था

प्रारंभिक वैदिक समाज पशुपालन पर आधारित था, पशुओं को पालना ही मुख्य पेशा था। एक चरवाही समाज कृषि उत्पादों की तुलना में पशुधन पर अधिक निर्भर करता है। पशु चराने के काम आजीविका का साधन है और इसको वे लोग अपनाते हैं जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ पर बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी का कार्य सम्भव नहीं जिसके कारण पर्यावरण संबंधी और कुछ सीमा तक सांस्कृतिक विवशताएं हैं।

प्रारम्भिक वैदिक काल में पशुपालन के महत्त्व का *ऋग्वेद* साक्ष्यों में काफी बड़े स्तर पर वर्णन हुआ है। *ऋग्वेद* में बहुत सी भाषागत अभिव्यक्तियाँ गाय (गौ) से जुड़ी हैं। पालतू पशु सम्पन्नता के प्रधान प्रतीक थे और एक सम्पन्न आदमी जो पालतू पशुओं का स्वामी होता था '*गोमत*' कहलाता था। इस काल में *संघर्ष* एवं लड़ाईयों के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था, वे थे *गविष्टि, गवेश्ना, गवयत* आदि। पहले शब्द का अर्थ है गाय की खोज करना और ये शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि इन पालतू पशुओं पर अधिकार समुदायों के मध्य असंतोष का आधार होता था तथा कभी-कभी इसको लेकर कबीलों के बीच *संघर्ष* एवं युद्ध छिड़ जाते थे। *ऋग्वेद* में *पणिस* शब्द का प्रयोग हुआ है, जो वैदिक जनों के शत्रु थे तथा वे आर्यों के

धन विशेषकर गायों को पर्वतों एवं जंगलों में छिपा लेते थे। इन पशुओं को छुड़ाने के लिए वैदिक देवता इंद्र की पूजा की जाती थी। यह संदर्भ यह भी बताता है कि पशुओं का अपहरण सामान्य बात थी। राजा या मुखिया को ''*गौपति*'' कहा जाता था, जो गायों की रक्षा करता था। *ऋग्वेद* में ''*गोधुली*'' शब्द का प्रयोग समय को मापने के लिए हुआ है, दूरी को *गवयुती* नाम दिया गया है, पुत्री को *दुहिता* कहा गया है क्योंकि वह दूध दूहन का काम करती थी, तथा जो लोग अपनी गायों के साथ एक ही *गोष्ट* में रहते थे उनको उसी गोत्र का माना जाने लगा। जो व्यक्ति गाँव का धनी होता था उसे ''*गौमान*'' कहा जाता था। ऐसे ''*माधवन*'' (धनी) को सभा (सभासद्) की सदस्यता मान्य थी। ये सारे शब्द गौ से बने हुए हैं और इससे लगता है कि *ऋग्वेद* कालीन जीवन में महत्त्वपूर्ण कार्य गौ-पालन था। चरागाह, गौशाला, दुग्ध उत्पादन और पालतू जानवर के साहित्यिक संदर्भ श्लोकों एवं प्रार्थनाओं में पाये गये हैं। ऐसा लगता है कि गौ को कुलदेवता के रूप में देखा जाता था और उसकी पूजा होती थी।

गाय के अलावा , 'अश्व' भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण था क्योंकि यह चरगाहों की खोज व युद्ध में प्रमुख भूमिका निभाता था। पौराणिक कथाओं में अश्व का इस्तेमाल न केवल पुरुषों के रथ बल्कि देवताओं के रथों को खींचने में लाया जाता था। और जहाँ चरगाह व्यापक थे, घोड़े की पीठ से मवेशियों को हाँकना आसान था। *ऋग्वेद* में पशुपालन से संबंधित अनगिनत भाषागत साक्ष्यों की तुलना में कृषि गतिविधियों से जुड़े संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं। अधिकतर कृषि संदर्भ बाद के काल से संबंधित हैं। ''यव'' या जौ के अतिरिक्त अन्य किसी अनाज का वर्णन नहीं किया गया है। प्रारंभिक वैदिक काल के लोग लौह तकनीकी का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि उनको तांबे की जानकारी थी, परन्तु ये औज़ार लोहे के औज़ार की तुलना में कम उपयोगी थे। पत्थर के औज़ारों (कुल्हाड़ी) का प्रयोग किया जाता था और इसका वृतांत *ऋग्वेद* में हुआ है। आग का प्रयोग जंगल जलाने के लिए जा रहा था और झूम खेती का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इस क्षेत्र में वर्षा कम होती तथा *ऋग्वेद* में वर्णित नदियाँ सतलुज, सिंधु, घग्घर और रावी आदि के बहाव में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता रहता था। उच्च स्तर की सिंचाई प्रणाली के बिना, जिसका विकास इस काल में नहीं हुआ था, नदियो के किनारे की कछारी (जलोढ़) भूमि की सिंचाई स्थायी तौर पर नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार ग्रंथों में वर्णित हंसिया, कुदाल और कुल्हाड़ी का प्रयोग शायद जंगलों को काटकर साफ करने या झूम खेती के लिए किया गया।

पशुचारण एवं परिवर्तित खेती के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग खानाबदोश या अर्ध-खानाबदोश की स्थिति में पशु झुंडों को लेकर कुछ निश्चित समय के लिए अपने पशुओं को चराने के लिए घूमते थे। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन नहीं बिता रहे थे। आबादी के गतिशील चरित्र के बारे में, ''*विश*'' शब्द से भी समझा जा सकता है जिसका तात्पर्य बस्ती था। *पुनर* (विश), *उपा* (विश) और *प्रा* (विश) जैसे प्रत्ययों के लगातार प्रयोगों से बस्तियों के उपविभाजन का बोध होता है और जिनका तात्पर्य है पास बसना (एक बस्ती के), पुनः प्रवेश करना (एक बस्ती में) या वापस आना (एक बस्ती को)।

भेंट विनिमय एवं पुनर्वितरण की समाज में महत्त्वपूर्ण आर्थिक भूमिका थी। कबीलाई-*संघर्ष* के कारण पराजित या अधीन समूहों द्वारा विजित सरदारों को बलि के रूप में नजराना या अदायगी देनी पड़ती थी। बाद में यह शब्द (बलि) देवताओं के लिए भेंट के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा। कोई नियमित कर नहीं था, न ही कबिलाई सरदार का जमीन पर कोई अधिकार था। *भाग* (हिस्सा) के वितरण के बाद, सफल *संघर्ष* के बाद लूटपाट का एक बड़े हिस्से पर सरदार का हक था। *शुल्क* का अर्थ किसी भी वस्तु के मूल्य से था। विजयी कबीले के अन्य सदस्यों को युद्ध में बलपूर्वक प्राप्त किये गये एवं लूट-पाट के सामान का *भाग* या हिस्सा मिलता था। उत्सव के अवसरों पर कबीले का मुखिया अपने कबीले के सदस्यों को भोज कराता था तथा उनको उपहार देता था। इसका आयोजन सम्मान प्राप्त करने के लिए किया जाता था। इस काल में व्यापार एवं व्यवसाय की हालत कमज़ोर थी। भू-स्वामित्व के

आधार पर व्यक्तिगत संपत्ति का कोई सिद्धांत नहीं था। भूमि का अधिग्रहण व्यावसायिक आधार पर था।

8.5 समाज

प्रारम्भिक वैदिक समाज कबीलाई समाज था तथा वह जातीय एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित था। समाज जाति के आधार पर विभाजित नहीं था और विभिन्न व्यावसायिक गुट अर्थात् मुखिया, पुरोहित, कारीगर आदि एक ही जन समुदाय के हिस्से थे। कबीले के लिए '*जन*' शब्द का इस्तेमाल किया जाता था और *ऋग्वेद* में विभिन्न कबीलों का उल्लेख है। कबीलों में पारस्परिक *संघर्ष* सामान्य थे, जैसे *''दाशराज युद्ध''* का वर्णन *ऋग्वेद* में हुआ है और इसी वर्णन से हमें कुछ कबीलों के नाम प्राप्त होते हैं जैसे भारत, पुरु, यदु, द्रहयु, अनू और तुरवासू। ये कबीलों के युद्ध जैसे कि पहले भी कहा गया है पशुओं के अपरहय एवं पशुओं की चोरी को लेकर होते रहते थे। कबीले का मुखिया *''राजा*[2]*''* या *''गोपति''* होता था। वह युद्ध में नेता तथा कबीले का रक्षक था। उसका पद अन्य व्यावसायिक समूहों की भांति ही पैतृक नहीं था बल्कि उसका जन के सदस्यों में से चुनाव होना था। उसका कौशल बस्ती को सुरक्षित रखने और लूट को जीतने मे ंनिहित था। दोनों उसकी प्रतिष्ठा के लिए अनिवार्य थे। योद्धा को *'राजन्य'* कहा जाता था। बहुत से *कुटुम्ब* (*विश*) मिलकर एक *जन* (कबीला) बनता था। *विश* एक गाँव या ग्राम में बस जाते थे। *कुल* या परिवार समाज की प्राथमिक इकाई था और *''कुलप''* अर्थात् परिवार का सबसे बड़ा पुरुष परिवार का मुखिया था जो परिवार की रक्षा करता था। कई कुल मिलाकर *ग्राम* बनते थे। इससे प्रतीत होता है कि बस्तियाँ नातेदारी पर आधारित थी। *ऋग्वेद* के परिवार ग्रंथ के अनुसार परिवार एक सामाजिक इकाई के रूप में, तीन पीढ़ियों तक विस्तारित होता था और पुत्र सामुहिक रूप से पिता के घर में रहते थे।

कबीला (जन), कबीलाई इकाई (विश), गाँव (ग्राम), परिवार (कुल), परिवार का मुखिया (कुलप)।

समाज पितृसत्तात्मक था। पुत्र की प्राप्ति लोगों की सामान्य इच्छा थी। पुरुष को महत्त्व दिया जाता था और इसका पता उन श्लोकों से लगता है जिनको पुत्र प्राप्ति के लिए लगातार प्रार्थना में प्रयोग किया जाता था। यद्यपि पूरा समाज पितृसत्तात्मक था, फिर भी समाज में महिलाओं का भी काफी महत्त्व था। वे शिक्षित थीं और वे सभाओं में भी भाग लेती थीं। कुछ ऐसी महिलाओं के भी दृष्टांत मिले हैं जिन्होंने श्लोकों का संकलन किया। उनको अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार था और वे देर से विवाह कर सकती थीं। इन सबके बावजूद महिलाओं के पिताओं, भ्राताओं और पतियों पर सदैव निर्भर रहना पड़ता था। शिक्षा का मौखिक रूप से आदान-प्रदान किया जाता था, परंतु शिक्षा की परम्परा इस काल में अधिक लोकप्रिय नहीं थी।

ऋग्वेद के रचनाकारों में स्वयं को अन्य मानव समुदायों, जिन्हें उन्होंने *दास* और *दस्यू* कहा, से पृथक् रखा। *दास* शब्द को ऋग्वैद में अलग संस्कृति के दूसरे व्यक्ति को निरूपित करने के लिए प्रयोग किया गया है। *दासों* को काला, मोटे होठों वाला, चपटी नाक वाला, लिंग पूजक और अशिष्ट भाषा वाला कहकर वर्णन किया गया है। *ऋग्वेद* में उन्हें अनुष्ठानों का पालन नहीं करने के लिए व एक प्रजनन पंथ का अनुसरण करने के लिए धिक्कारा गया है। वे सुरक्षित दीवारें बना कर रहते थे और प्रचुर पशुधन के स्वामी थे। वे एक अन्य वर्ग *पणिस्* के विषय में जानकारी मिलती है जो धन और पशुओं के स्वामी थे। कालांतर में *पाणि* शब्द व्यापारियों और धन संपत्ति से जुड़ गया। इन समुदायों में आपसी झगड़े और मैत्रियाँ होते रहते थे और उन्हें विभिन्न जातियों या भाषाई वर्गों के रूप में नहीं बाँटा जा सकता।

[2] राजा का मूल अर्थ है 'चमकना' या 'नेतृत्व करना'। हालांकि, महाकाव्यों में इसकी व्युत्पत्ति एक और मूल अर्थ से जुड़ी है – 'प्रसन्न करना'।

उदाहरणतः *ऋग्वेद* का सबसे प्रमुख नेता सुदास था जिसने ''10 राजाओं'' की लड़ाई में भरत कुल का नेतृत्व किया था। उसके नाम के अंत में प्रयुक्त *दास* शब्द से लगता है कि उसका *दासों* से कुछ संबंध था। एक ही क्षेत्र में कई समुदायों की उपस्थिति के कारण ही सम्भवतः *वर्ण* व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

विभिन्न व्यावसायिक समूहों जैसे कि कपड़ा बुनने वाले, लोहार, बढ़ई, चर्मकार, रथ बनाने वाले, पुजारी आदि का वर्णन हुआ है। सारथी का समाज में विशेष स्थान था। *ऋग्वेद* में भिखारियों, मजदूरी पर काम करने वालों या मजदूरी का कोई दृष्टांत नहीं मिलता। परन्तु समाज में आर्थिक असमानता थी और हमें ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनके अनुसार कुछ धनी लोग रथों, पालतू पशुओं (गायों-बैलों) आदि के स्वामी थे और इन वस्तुओं को भेंट या उपहार में देते थे।

कोई कानूनी संस्था नहीं थे। रिवाज कानून था और कबीले के प्रमुख या पुजारी का विवेक अंतिम था। हालांकि समुदाय के बुजुर्गों की भी राय मान्य थी। चोरी, विशेष रूप से पशु-चोरी सबसे सामान्य अपराध थे। एक आदमी को मारने का दंड 100 गाय था।

बोध प्रश्न 2

1) आप ''पशुपालक समाज'' से क्या समझते हैं? पशुपालन प्रारंभिक वैदिक लोगों का प्रधान व्यावसायिक कार्य क्यों था?

....

....

....

....

....

2) प्रारम्भिक वैदिक समाज में पशु का क्या महत्त्व था? 50 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

3) प्रारम्भिक वैदिक काल की पाँच महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

4) उचित शब्द से रिक्त स्थानों को भरिये।

   i) प्रारम्भिक वैदिक समाज में राजा या मुखिया को (गोमत / गोपती) कहा जाता था।

   ii) इस काल में समय-समय पर होने वाले कबीलों के युद्ध एवं *संघर्षों* का मुख्य कारण (गायों / भूमि) पर अधिकार करना था।

iii) (यव/चावल) के अतिरिक्त किसी अन्य अनाज का *ऋग्वेद* में वर्णन नहीं है।

iv) आधारभूत सामाजिक इकाई (कुल/विश) था।

v) प्रारम्भिक वैदिक समाज (बहुविवाह/एकपत्निक) पर आधारित था।

8.6 राजनैतिक व्यवस्था

कबीलाई राज्य व्यवस्था पूर्णतः समानतावादी नहीं थी। *ऋग्वेद* में दोहरा सामाजिक विभाजन मिलता है, जिसको दो वंशीय समूहों के रूप में देखा गया है – प्रथम ''*राजन्य*'' या वे जो युद्ध करते थे तथा जिन्होंने उच्चवंशीय परम्परा प्राप्त की, और शेष कबीले के साधारण सदस्य या *विश* जिन्होंने छोटीवंशीय परम्परा प्राप्त की। यद्यपि सामाजिक क्रम में किसी गुट ने विशिष्ट स्थान नहीं पाया था, परंतु लगातार कबीलों के पारस्परिक *संघर्षों* एवं युद्धों ने सामाजिक विभाजन की रचना की। चरागाहों, पशुओं की बढ़ती आवश्यकता और लोगों तथा बस्तियों की सुरक्षा आदि के कारण आंतरिक एवं बाह्य कबीलाई *संघर्षों* में वृद्धि हुई। युद्ध में योद्धासमूह की सहायता के लिए ''कबीले'' विशाल स्तर पर यज्ञ या बलि का आयोजन करते थे। इन यज्ञों में पुजारी या पुरोहित जनसमुदाय तथा देवताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। वह देवताओं की स्तुति करता था जिससे कि देवताओं का आशीर्वाद कबीले के मुखिया को युद्धों में सफलता पाने के लिए मिल जाये। प्रारम्भ में, सारा जन समुदाय इन यज्ञों में समानता के आधार पर भागीदारी करता था। बड़े स्तर पर इन यज्ञों के समय धन, खाने आदि का वितरण किया जाता और जन समुदाय के प्रत्येक सदस्य को बराबर हिस्सा मिलता था। लेकिन *संघर्षों* एवं युद्धों में वृद्धि होने के कारण यज्ञ या बलि का महत्त्व बढ़ गया और पुरोहित ने समाज में एक विशेष दर्जा हासिल कर लिया। इस काल के अंतिम भाग में, वे राजाओं या मुखियाओं से प्राप्त होने वाले उपहारों का बड़ा हिस्सा पाने लगे, और इस प्रकार जन के अन्य सदस्यों की तुलना में उनको विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

युद्ध आदि होने के कारण राजा के पद का भी विशेष महत्त्व हो गया और उच्च तथा छोटी वंशीय परम्पराओं के बीच विभाजन अधिक स्पष्ट होने लगा। ये राजनीतिक असमानताएँ किस समय दिखायी पड़ी इसको स्पष्ट रूप से बता पाना कठिन है परंतु हमें याद रखना चाहिए कि *ऋग्वेद* के 10वें सर्ग में ''पुरुष सूक्त'' का वर्णन है और उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में हमें उन उच्च राजन्य समूहों के वर्णन मिलते हैं, जो क्षत्रिय का स्तर ग्रहण कर रहे थे तथा जो स्वयं में एक अलग जाति थी। ये परिवर्तन 1000 बी.सी.ई. के बाद हुए। इसका तात्पर्य यह कदाचित नहीं है कि जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं वह अपरिवर्तनीय था, वास्तव में यह परिवर्तन धीमी गति से हो रहा था लेकिन यह एक मुश्किल सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति ''उत्तर वैदिक काल'' में हुई (इकाई 9 को देखें)।

ऋग्वेद में कबीलाई सभाओं के लिए *गण, विधाता, सभा* और *समिति* जैसे शब्दों का वर्णन है। यह निश्चित नहीं है कि इनकी कार्यप्रणाली वास्तव में इस काल में क्या थी। ''*सभा*'' कबीले के चुनिंदा सदस्यों की परिषद थी, इसलिए वह विशेष थी। ''समिति'' सम्पूर्ण कबीले की परिषद होती होगी। *विधाता* वह सभा थी, जिसमें अन्य वस्तुओं के अलावा छापे में प्राप्त की जाने वाली लूट का वितरण किया जाता था। इन सभाओं का कार्य सरकारी एवं प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करना था और यही अपने जन समुदाय के किसी एक सदस्य को राजा निर्वाचित करने का भी कार्य करती थी। इस प्रकार वे योद्धाओं की शक्ति पर नियंत्रण रखते थे। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं कि यद्यपि हम प्रारम्भिक वैदिक व्यवस्था में अच्छी प्रकार से परिभाषित राजनैतिक श्रेणीबद्धता नहीं पाते हैं फिर भी परिवर्तनों के इस काल में सामाजिक राजनैतिक श्रेणीबद्धता को जन्म दिया और जो ''उत्तर वैदिक काल'' में जातीय व्यवस्था के रूप में

परिलक्षित हुई। आरंभिक वैदिक कालीन समाज कबीलाई मूल्यों एवं नियमों से शासित होता था जिसके कारण मोटे तौर पर वर्ग विभेदीकरण नहीं हुआ।

8.7 धर्म

वैदिक लोगों के धार्मिक विचार *ऋग्वेद* के श्लोकों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। वे चतुर्दिक प्राकृतिक शक्तियों (जैसे वायु, जल, वर्षा, बादल, आग आदि) जिन पर वे नियंत्रण नहीं कर सकते थे और उन पर दैवी शक्ति का आरोपण करके, मानव के रूपों में, जिनमें अधिकतर पुल्लिंग थे, उपासना करते थे। बहुत कम देवियों की अराधना होती थी। इस तरह से धर्म पैतृकसत्तात्मक समाज को दर्शाता है और वह प्रारम्भिक जीववाद था। इंद्र शक्ति का देवता था और उसकी उपासना शत्रुओं का नाश करने के लिए होती थी। वह बादलों का देवता था और वर्षा करने वाला था तथा उससे समय-समय पर वर्षा के लिए कहा जाता था। उसको पराजित नहीं किया जा सकता था। बादल एवं वर्षा (प्राकृतिक नियति) शक्ति से संबंधित थे जिसको पुरुष के रूप में मानवीयकरण किया गया तथा जिसका प्रतिनिधित्व इंद्र देवता करता था। गण का मुखिया जो युद्ध में सबसे आगे रहता था उसका प्रतिनिधित्व भी इंद्र के चरित्र में मिलता है। अग्नि आग का देवता था और इंद्र के बाद उसका महत्त्व था। *ऋग्वेद* के कुछ सुन्दर श्लोक अग्नि को समर्पित हैं। उसे कई घरेलु रस्मों जैसे शादी की उपरिकेंद्र माना जाता था। पाँच तत्वों में से वह सबसे शुद्ध था। उसको पृथ्वी एवं स्वर्ग के बीच मध्यस्थ माना जाता था। अर्थात देवताओं और मनुष्यों के बीच। वह परिवार के चूल्हे का अधिकारी था, और उसकी उपस्थिति में ही विवाह सम्पन्न होते थे। अग्नि का पूजन चूल्हे को प्रतीकात्मक महत्त्व देता था जिसे गृहस्थ का सबसे आदरणीय केंद्र माना जाता था। आग गंदगी एवं जीवाणुओं को नष्ट करती है इसलिए अग्नि को पवित्र माना जाता है। प्रारम्भिक समाज में अग्नि के महत्त्व को यज्ञ या बलि से भी संबंधित किया जा सकता है। जो आहुतियाँ अग्नि को समर्पित की जाती थीं उनसे ऐसा माना गया कि वे धुएँ के रूप में देवताओं तक पहुँचायी जाती थीं।

वरुण को जल का देवता माना जाता था और वह विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था का रक्षक था। यम मृत्यु का देवता था और उसका प्रारम्भिक वैदिक धर्म में विशेष महत्त्व था। दूसरे अन्य बहुत से देवता थे जैसे सूर्य, सोम (जो एक पेय भी था), सावित्री, रूद्र आदि और अनेक प्रकार के दिव्य देहधारी देवता थे जैसे गंधर्व, अप्सरा, मरुत, विश्वदेवा तथा जिनको सम्बोधित करते हुए *ऋग्वेद* में प्रार्थना एवं श्लोक लिखे गये हैं। सोम अनुष्ठान को केवल ईरान और भारत में विशिष्ट माना जाता था। सोम पौधा उत्तर पश्चिमी पहाड़ों पर उगता है। सोमरस का पान विशेष अवसरों पर किया जाता था और यह एक मतिभ्रम के रूप में कार्य करता था। *ऋग्वेद* की एक पूरी पुस्तक सोम को समर्पित है और एक जटिल प्रतीकवाद की ओर इशारा करती है।

वैदिक धर्म बलि देय था। बलि या यज्ञों को निम्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिए किया जाता था :

- देवताओं की उपासना करने,
- मनोरथ पूरा करने के लिए, युद्ध में विजय,
- पशुओं, पुत्रों आदि की प्राप्ति के लिए।

छोटे अनुष्ठान घरेलू स्तर पर सम्पन्न किये जाते थे लेकिन समय-समय पर बड़े बलिदान आयोजित किये जाते थे, जिसमें कबीले के लोग उपहार लाते थे। सार्वजनिक बलिदान को एक पवित्र अवसर माना जाता था। यज्ञ में विश द्वारा स्वेच्छा से दिये गये उपहार जिसको राजा एकत्रित करता था, यज्ञों में सेवन व खर्च किये जाते थे। अन्य राजाओं और पुरोहितों

को ऐसे अवसरों पर उपहार व दान दिया जाता था। आग की वेदियों का आकार गृह के संदर्भ में छोटा व विस्तृत बलिदानों में विशालकाय होता था।

विशिष्ट दिनों में यज्ञ होते थे और विशिष्ट समय को शुभ माना जाता था। बलिदान के दौरान यजमान को सम्मानित किया जाता था। बलि की भूमि को भी पहले पवित्र किया जाता था और अनुष्ठानों के लिए कोई स्थायी स्थान नहीं था। इस समय मूर्ति पूजा का कोई उल्लेख नहीं है।

हमें कुछ ऐसे श्लोक मिले हैं जिनको बलि के औज़ारों में शक्ति संचयन के लिए समर्पित किया गया जैसे कि बलि *वेदी*, सोम के पोधे को पीसने वाले पत्थरों, ओखली, युद्ध के हथियारों, एवं नगाड़ों आदि। श्लोकों एवं प्रार्थनाओं को इन बलि यज्ञों के अवसरों पर गाया जाता था और सामान्यतः पुरोहित ही इन यज्ञों को सम्पन्न करते थे। प्रारम्भिक वैदिक काल में बलि यज्ञों का बहुत महत्त्व हो गया जिसके परिणामस्वरूप, पुरोहितों का महत्त्व भी बढ़ने लगा। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित एवं पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी वृद्धि हुई। बलिदान वाले क्षेत्र में बहुत सी वस्तुओं का उचित स्थिति में स्थापित करने के लिए प्रारम्भिक गणित की आवश्यकता गणना करने के लिए पड़ती थी। मिट्टी की ईंटों की संख्या व आकार की जरूरत होती थी। वैदिक *वेदी* बनाने के लिए आधारभूत ज्यामिति का प्रयोग किया जाता था। यह सुझाव दिया गया है कि ईंटों का उपयोग और गणितीय गणना हड़प्पा परंपरा से प्राप्त हुई है। हालांकि *ऋग्वेद* में वर्णित रीति-रिवाजों को बड़े पैमाने पर ईंट से बनी वेदियों की जरूरत नहीं थी और इनका उल्लेख उत्तर वैदिक साहित्य में ही मिलता है। बलिदान बार-बार होने के कारण पशुओं के शरीर का ज्ञान भी बढ़ा। वैदिक लोगों का विश्वास था कि जगत् का उद्भव एक विशाल ब्रह्माण्डी यज्ञ से हुआ और यज्ञों के समुचित सम्पादन से ही उसका प्रतिपालन हो रहा है। धर्म काल्पनिक-अनुष्ठान पर आधारित नहीं था बल्कि इसके द्वारा बलिदान व श्लोकों के माध्यम से देवताओं से सीधे सम्पर्क स्थापित करने पर बल दिया गया था। आत्मिक उत्थान करने के लिए देवताओं की उपासना नहीं की जाती थी और न ही निराकार दार्शनिक अवधारणा के लिए। अपितु इनकी उपासना भौतिक उपलब्धियों के हेतु की जाती थी।

बलि पर आधारित धर्म पशु-पालक (चरवाहों) लोगों का धर्म है। इस समाज में पशु की बलि सामान्य बात है। जब पशु बूढ़ा हो जाए, जब वह न दूध दे सकता है और न मांस, न प्रजनन के लिए ही उपयुक्त रह जाता है, अर्थात् जो पशु आर्थिक लाभ के नहीं होते उनको मारकर उनके मालिकों का बोझ हल्का कर दिया जाता है। इस तरह से पशुबलि बूढ़े जानवरों को नष्ट करने का एक तरीका है और इसका समाज में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। लेकिन कृषि प्रधान समाज में, पुराने पशुओं का उपयोग खेती-बाड़ी में किया जाता है और वे हल आदि खींचने के काम आते हैं तथा इसीलिए खेती-बाड़ी वाले समुदाय जानवरों के नष्ट होने के काम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार वैदिक धर्म पैतृकसत्तात्मक पशुपालक समाज को उजागर करता है और यह दृष्टिकोण में भौतिकतावादी था।

बोध प्रश्न 3

1) प्रारम्भिक वैदिक राजनैतिक व्यवस्था में राजन की क्या स्थिति थी? पाँच वाक्यों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

2) प्रारम्भिक वैदिक लोगों के धर्म की प्रकृति का वर्णन पाँच वाक्यों में कीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाओ।

i) पुरोहित या पुजारी का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था। ( )

ii) ''*सभा*'' और ''*समिति*'' को राजा के चुनाव में कोई अधिकार नहीं था। ( )

iii) प्रारम्भिक वैदिक समाज में, शक्ति का देवता, इंद्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। ( )

iv) देवताओं की पूजा लोगों के आत्मिक उत्थान के लिए होती थी। ( )

v) धर्म मायावी अनुष्ठान के सिद्धांत पर आधारित नहीं था। ( )

8.8 सारांश

आपने इस इकाई में उन साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उत्तर वैदिक समाज के पुनर्निर्माण में हमारी सहायता करते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के प्रकाश में ''आर्यों'' के वृहत पैमाने पर स्थानांतरण की अवधारणा को स्वीकार करना कठिन है। इसके अलावा पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई के उत्तरार्ध को हम आर्यों की विजय के रूप में नहीं देख सकते जिसके फलस्वरूप उत्तरी भारत में एक सजातीय आर्य संस्कृति का प्रसार हुआ। पुरातात्विक उत्खनन से एक विजय के सिद्धांत का समर्थन नहीं मिलता।

प्रारम्भिक वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से पशुपालन की थी और गाय संपत्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक थी। प्रारंभिक वैदिक लोगों के जीवन में खेती का स्थान गौण था।

प्रारंभिक वैदिक समाज कबीलाई और मुख्यतः समानतावादी था। कुटुम्ब और परिवार के संबंधों ने समाज का आधार निर्मित किया था और परिवार समाज की आधारभूत इकाई था। व्यवसाय पर आधारित सामाजिक विभाजन प्रारम्भ हो चुका था परंतु उस समय जातिगत विभाजन नहीं था।

प्रारंभिक राजनैतिक व्यवस्था में जन के मुखिया या राजा और पुजारी या पुरोहित के महत्त्वपूर्ण स्थान थे। अनेकों गण सभाओं में से ''*सभा*'' व ''*समिति*'' प्रशासन में विशेष योगदान करती थीं। यद्यपि प्रारंभिक वैदिक व्यवसथा में स्पष्ट रूप से परिभाषित कोई राजनैतिक पदानुक्रम नहीं था फिर भी कबीले की राजनैतिक व्यवस्था पूर्णतः समतावादी नहीं थी।

प्रारम्भिक वैदिक लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों जैसे वायु, जल, वर्षा आदि को मूलरूप दिया और उनकी देवता की तरह पूजा करते थे। वे देवता की उपासना किसी अमूर्त दार्शनिक अवधारणा के कारण नहीं बल्कि भौतिक लाभों के लिए करते थे। वैदिक धर्म में बलिदान या यज्ञ का महत्त्व बढ़ रहा था।

यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि यह समाज स्थिर नहीं बल्कि गतिशील था। इन पाँच सौ

वर्षों के दौरान (1500 बी.सी.ई से 1000 बी.सी.ई) समाज का लगातार विकास हो रहा था और आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में नये-नये तत्व सामाजिक संरचना को रूपांतरित कर रहे थे।

8.9 शब्दावली

पुरावशेष (artifact) : मानव द्वारा निर्मित वस्तुएँ जैसे पुरातात्विक रुचि का कोई मामूली औज़ार या हथियार।

कुटुम्ब : कबीलाई समुदायों में पाया जाने वाला बड़ा परिवार समूह।

नातेदारी : खून का संबंध।

जीववाद : आत्मा के लिए प्राकृतिक वस्तुओं और क्रियाओं को श्रेय देना।

खानाबदोश : ऐसे कबीले का सदस्य जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकता हो तथा जिसका कोई स्थाई घर न हो।

पितृसत्तात्मक : पुरुष प्रधान परिवार या कबीला।

अर्ध-स्थायीत्व : ऐसे लोग जो स्थायी रूप से एक स्थान पर न बसे हों और दूसरी नयी बस्ती की खोज में घूमते हों।

परिवर्ती खेती : एक भूमि का कुछ समय के लिए खेती-बाड़ी हेतु प्रयोग करके इसको छोड़ देना तथा नयी भूमि का प्रयोग करना।

स्तर विन्यास : भूमि की वे परतें जिनको खुदाई करके निकाला गया हो। इन परतों की खुदाई के कार्य की आधार भूमि की किस्मों पर निर्भर करती है या उत्खनन में प्राप्त होने वाली विभिन्न साक्ष्यों पर।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) *ऋग, साम, यजुर, अथर्व*। *ऋग्वेद* प्रारंभिक वैदिक काल से संबंधित है।

2) पुरातात्विक स्रोत आर्यों के आक्रमण या स्थानांतरण की अवधारणा का समर्थन नहीं करते। आर्यों के द्वारा हड़प्पा की सभ्यता का सर्वनाश करने की अवधारणा के विरोध में पुरातत्वविदों के तर्क, ताम्र, पाषाण काल एवं उत्तर हड़प्पा संस्कृतियों के बीच पाई जाने वाली सांस्कृतिक असंगति, अपने उत्तर में लिखिए। देखिए भाग 8.3।

3) i) नहीं, ii) हाँ

4) i) हाँ, ii) नहीं

बोध प्रश्न 2

1) ऐसा समाज जो प्रधानतः पालतू पशुओं रूपी सम्पदा पर निर्भर हो क्योंकि बड़े स्तर पर खेती-बाड़ी पर्यावरण और सांस्कृतिक विवशताओं के कारण सम्भव नहीं थी। देखिए भाग 8.4।

2) प्रारंभिक वैदिक समाज में पालतू पशु संपत्ति का प्रमुख स्रोत थे। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आपको गाय या पलतू पशुओं के महत्त्व पर लिखना होगा। देखिए भाग 8.4।

3) आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिए कि यह एक कबीलाई समाज था, समाज पितश्सत्तात्मक था, परिवार समाज की मूल इकाई थी, जाति विभाजन वहां पर नहीं था। देखिए भाग 8.5।

4) i) गोपति ii) गायों iii) यव iv) कुल v) एक पत्नीत्व

बोध प्रश्न 3

1) आपको अपने उत्तर में लिखना चाहिए कि राजा कबीले का मुखिया था, बार-बार होने वाले युद्धों ने उसको महत्त्वपूर्ण बनाया, वह कबीले का रक्षक था, उसका पद सदैव पैतृक नहीं होता था, आदि। देखिए भाग 8.6।

2) वैदिक लोग अनेक प्राकृतिक शक्तियों की उपासना देवता के रूप में करते थे, बलिदान पर बल देते थे परंतु मायावी-अनुष्ठान के सिद्धांत पर नहीं, धर्म भौतिक उपलब्धियों पर आधारित था आदि। देखिए भाग 8.7।

3) i) × ii) × iii) ✓ iv) × v) ✓

8.11 संदर्भ ग्रंथ

ब्रायंट, ई. (2000). *द क्वेस्ट फॉर द ओरिजिन्स ऑफ वैदिक कल्चर.* दिल्ली।

देशपांडे, एम. एम. एण्ड हुक, पी. (ऐडिटेड) (1979). *आर्यन एण्ड नॉन आर्यन इन इंडिया.* एन आर्बर।

कूईपर, एफ. बी. जे. (1991). *आर्यंस इन द ऋग्वेद.* एमस्टर्डम।

लिंकन, बी. (1981). *प्रीस्ट्स, वॉरियर्स एण्ड कैटल,* लॉस. एंजेलिस।

मैलोरी, जे. पी. (1989). *इन सर्च ऑफ इण्डो-यूरोपियन्स : लैंग्वेज, आर्कियोलॉजी एण्ड मिथ.* लंदन।

मसीका, सी. पी. (1976). *डीफाईनिंग ए लिंगुइस्टिक एरियाः साउथ एशिया.* शिकागो।

पार्जीटर, एफ. ई. (1922). *द एशियंट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन.* लंदन।

राउ, डब्ल्यू (1976). *द मीनिंग ऑफ 'पुर' इन वैदिक लिट्रेचर.* म्युनिक।

इकाई 9 उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप, यह जान पाएँगे कि :

- उत्तर वैदिक समाज के अध्ययन के लिए कौन-कौन से स्रोत उपलब्ध हैं;
- उत्तर वैदिक काल की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था में किस प्रकार परिवर्तन हुए; और
- नव धातु या लोहे के प्रचलन से तकनीकी परिवर्तन के आर्थिक एवं सामाजिक आयाम क्या थे?

9.1 प्रस्तावना

आप जिस समय का अध्ययन करने जा रहे हैं वह 1000 बी.सी.ई. से 600 बी.सी.ई. के मध्य का समय है। इस युग में वैदिक कबीले ''सप्त सिन्धव'' क्षेत्र में गंगा की उपरी घाटी तथा

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-3 से ली गई है।

उसके आस-पास के क्षेत्र में फैल गये थे। क्षेत्रीय परिवर्तन के इस काल में आर्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में कई परिवर्तन आये। इस इकाई में हम इन परिवर्तनों के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा करेंगे।

उत्तर वैदिक काल का मानचित्र जिसमें *आर्यवर्त* की सीमायें व उत्तरी भारत के *जनपद*, लौह युग के राज्य – कुरू, पंचाल, कोशल और विदेह स्पष्ट दर्शाये गये हैं। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/Vedic_period#/media/File:Late_Vedic_Culture_(1100-500_BCE).png)।

9.2 स्रोत

इस युग का अध्ययन करने के लिए हमारे पास साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

9.2.1 साहित्यिक स्रोत

ऋग्वेद संहिता में बाद में जोड़े गये 10वें मंडल तथा साम, यजुर एवं *अथर्ववेद* संहिता इस काल के मुख्य साहित्यिक स्रोत हैं। *सामवेद* संहिता प्रार्थना तथा श्लोकों की पुस्तक है जो *ऋग्वेद* से है। इनको उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर स्पष्ट तथा लयबद्ध गाने के लिए संकलित किया गया।

- *यजुर्वेद* यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों को स्पष्ट करता है और इसमें स्तुति गीतों का भी संग्रह है। इस संहिता में संकलित अनुष्ठानिक एवं स्तुति गीत उस युग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं।

- *अथर्ववेद* उस काल की लोक परम्पराओं का संकलन है तथा वह लोकप्रिय धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्य जनता की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने का यह एक अच्छा उत्तर वैदिक कालीन स्रोत है।

इन ग्रंथों के बाद कुछ अन्य ग्रंथ सामने आते हैं। इन ग्रंथों को हम ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक संहिताओं पर टीका टिप्पणियाँ हैं। यह अनुष्ठानों के सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों को भी उजागर करते हैं और उनसे उत्तर वैदिक समाज की भी जानकारी मिलती है। संस्कृत में लिखे गये रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्यों से प्रारम्भिक भारतीय समाज के बारे में जानकारी मिलती है। तब भी भारतीय इतिहास के किसी भी काल को महाकाव्यों का काल कहना बहुत उपयुक्त नहीं होगा। इतिहासकारों का मत है कि इन महाकाव्यों में जो जानकारी मिलती है वह अधिकांशतया उत्तर वैदिक काल से संबंधित है। इस काल का प्रमुख केंद्र बिन्दु ऊपरी गंगा और मध्य गंगा घाटियाँ हैं। थोड़ा बहुत अन्य क्षेत्रों का भी विवरण है। महाकाव्यों के अनुसार भी अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनायें इसी क्षेत्र में घटी। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन महाकाव्यों में जिन कहानियों का वर्णन है उनको ऐतिहासिक घटनायें मनाने का हमारे पास कोई सबूत नहीं है। साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि इन महाकाव्यों को अपने वर्तमान रूप में पहुँचने में कई सौ साल लग गये इसलिए इन महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार के समाजों के दर्शन होते हैं।

9.2.2 पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक स्रोत स्थान-स्थान पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों की चर्चा करते हैं। उत्तर वैदिक काल का समय लगभग 1000 बी.सी.ई. से 600 बी.सी.ई. तक का है। समकालीन ग्रंथों में बहुत से समुदायों तथा सांस्कृतिक समूहों के बारे में जानकारी मिलती है। परन्तु विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन किसी विशेष प्रजाति अथवा समूह से सम्बद्ध नहीं किये जा सकते। इसी क्षेत्र में लगभग इसी काल में कुछ खेतिहर समूह भी फले-फूले। ये खतिहर समूह एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे जिन्हें चित्रित धूसर मृद्भांड (पी.जी.डब्ल्यू.) कहा जाता है। यह बर्तन और अन्य पुरातात्विक अवशेष उत्तर वैदिक काल की भौतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं।

अब तक ऊपरी गंगाघाटी में 700 से अधिक चित्रित धूसर मृद्भांड के स्थलों की खुदाई की गई है। ये बाहवलपुर के घग्घर नदी के सूखे क्षेत्रों, सिन्धु व गंगा के तराई वाले क्षेत्रों तथा गंगा यमुना दोआब में फैले हुए हैं। इन स्थलों की पूर्वी सीमा गंगा के उत्तरी पश्चिमी मैदान तक सीमित है जहाँ श्रावस्ती नामक स्थल इसका सूचक है तथा सरस्वती नदी (जो अब राजस्थान के मरूस्थल में विलीन हो चुकी है) तक फैली है। अतरंजीखेड़ा, अहिछत्र, नोह, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, भगवानपुरा तथा जखेड़ा चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति के मुख्य स्थल हैं।

2000 बी.सी.ई से 1400 बी.सी.ई की दक्षिणी राजस्थान बानस संस्कृति का विस्तार संभवतः गंगा घाटी में 800 बी.सी.ई. तक हो चुका था। इस तरह काले-एवं-लाल मृद्भांडों का प्रयोग करने वाले लोगों को भी उत्तर वैदिक संस्कृति के साथ जोड़ा जा सकता है। वैदिक साहित्य के अनुसार आर्यों का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ परन्तु पुरातात्विक स्रोत ''वैदिक आर्यों'' के पूर्व दिशा में फैलने को सिद्ध नहीं करते। पुरातात्विक साक्ष्यों में, पूर्व दिशा में फैलने वाली किसी भी संस्कृति के साक्ष्य नहीं हैं। इस प्रकार साहित्यिक व पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोतों

में एक बड़ी दूरी दिखाई पड़ती है। हालांकि साहित्यिक स्रोतों से इंगित उत्तर वैदिक समाज और पुरातात्विक साक्ष्यों से इंगित समाज दोनों में लोहे के प्रयोग के आरम्भ का पता चलता है।

चित्रित धूसर मृद्भांड क्षेत्रों में लोहे की चीजें सामान्यतया प्रचलित थी। अतरंजीखेड़ा, नोह एवं जोधपुरा से प्राप्त वस्तुओं की कार्बन 14 की पद्धति से निकाली गई तिथियाँ बताती हैं कि इस धातु का गंगा के मैदानों में 1000 बी.सी.ई. से 800 बी.सी.ई. के बीच प्रचलन शुरू हो गया था। लोहे का उत्तर प्रदेश, हिमाचल, पंजाब तथा बाद में दक्षिण बिहार में दोहन किया जाने लगा। यह एक स्थानीय प्रक्रिया थी। *ऋग्वेद* में वर्णित आयस शब्द लोहे के अर्थ से हो सकता है, परन्तु पुरातात्विक खोजों के आधार पर लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में मिलता है। साहित्यिक स्रोत इसकी पुष्टि करते हैं। *यजुर्वेद* में ''आयस'' को ''श्याम आयस'' लिखा गया है तथा ब्राह्मण ग्रंथों में लोहे को ''कृष्ण आयस'' के नाम से पुकारा गया है। दोनों का अर्थ स्याह धातु से सम्बन्धित है।

किन्तु हाल ही के उत्खनन से पता लगता है कि दक्षिण भारत के महापाषाणी लोग लोहे के प्रयोग से अच्छी तरह से परिचित थे। इसलिए अब हम प्रवासी आर्यों को भारत में लोहे का प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय नहीं दे सकते।

9.3 लौह तकनीकी तथा इसका प्रभाव

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या लोहे की जानकारी ने इस समय की धातु तकनीकी में कोई विकास किया? इसी प्रकार आप यह भी जानना चाहेंगे कि नई तकनीकी के प्रचलन से समाज की भौतिक परिस्थितियों में किस प्रकार के परिवर्तन हुए?

उत्तर वैदिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि घुमक्कड़ पशुपालक समाज एक स्थायी समाज में परिवर्तित हो रहा था। यह पहले भी बताया जा चुका है कि स्थायी रूप से खेती करने के लिए वनों एवं गंगा के दोआब को साफ करने के लिए लोहे की कुल्हाड़ी का प्रयोग किया गया। ऐसा समझा जाता है कि लोहे के नोक वाले हल एवं कुदाल ने कृषि यंत्रों की क्षमता को बढ़ाया जिससे कृषि के कार्यों का फैलाव हुआ। इसलिए विद्वानों का मत है कि लोहे के प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को और विकसित करने में विशेष योगदान दिया। फिर भी, इस तथ्य से हम भली प्रकार से परिचित हैं कि उत्तर वैदिक काल कृषि तथा लोहे के प्रयोग में पूर्णतः विकसित नहीं था। बिहार से लोहे के खनन का कार्य बड़े स्तर पर नहीं किया जाता था तथा लोहा पिघलने की विधि भी अति विकसित नहीं थी।

खुदाई से जो चीजें उपलब्ध हुई हैं उनमें मुख्य रूप से नुकीले लोहे के तीर, नुकीले भाले आदि हथियार हैं, इनमें अधिक चीजें अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से हंसिया, कुदाल व कुल्हाड़ी बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। जखेड़ा से हल का एक फाल प्राप्त हुआ है जो शायद इस युग के अंत का है। इस प्रकार उत्खनन से ऐसा लगता है कि लोहे का प्रयोग केवल हथियार बनाने तक ही सीमित था। लोहे के प्रयोग ने पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्ध तक कृषि तकनीकी को तब तक प्रभावित नहीं किया जब तक गंगा घाटी की दलदली भूमियों तथा अन्य वनों को खेती के लिए साफ नहीं कर लिया गया। उत्तर वैदिक काल में गंगा दोआब के ऊपरी जंगलों को जलाकर साफ किया गया। महाभारत में वर्णित है कि खांडव नाम के जंगल को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगर को बसाया गया था। लोहे के नुकीले हथियारों तथा घोड़े वाले रथों ने सैनिक कार्यों में मुख्य भूमिका अदा की एवं इस युग में सैनिक कार्यों में इनका खूब प्रयोग होने लगा था जिसकी चर्चा महाभारत में विस्तृत रूप से हुई है। लेकिन जीविकोपार्जन के कार्यों में लोहे का विशेष प्रयोग शुरू नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न 1

1) सही वाक्य पर (✓) का निशान लगाओ :

   i) हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि वैदिक समाज का फैलाव पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )

   ii) यह कहना असम्भव है कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )

   iii) हम अनुमान कर सकते हैं कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )

   iv) उपरोक्त में से कोई नहीं ( )

2) *अर्थववेद* के द्वारा :

   i) हम उत्तर वैदिक काल की लोक परम्पराओं को समझ सकते हैं।

   ii) हम उत्तर वैदिक काल की अभिजात वर्ग की परम्पराओं को समझ सकते हैं।

   iii) हम सामान्य जनता की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों को जान सकते हैं।

   iv) दोनों (i) और (iii)

3) उत्तर वैदिक काल में :

   i) लोहे का मुख्य रूप से कृषि के लिए प्रयोग किया गया। ( )

   ii) लोहे का मुख्य रूप से युद्ध के हथियारों के लिए प्रयोग किया गया। ( )

   iii) लौह तकनीकी वहाँ पर बिल्कुल नहीं थी। ( )

   iv) स्टील का प्रयोग किया जाता था। ( )

4) उत्तर वैदिक काल में लोहे के प्रयोग के प्रभाव पर 50 शब्द लिखें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

9.4 अर्थव्यवस्था

गंगा यमुना *दोआब* एवं मध्य गंगा घाटी में उर्वरक भूमि के विशाल मैदानों की उपलब्धता से उत्तर वैदिक काल में कृषि का विकास सम्भव हुआ तथा इस क्षेत्र में प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई. में, धीरे-धीरे स्थायित्व कायम हो सका।

इसी के साथ-साथ कृषि पर आधारित स्थायी जीवन प्रणाली का भी प्रारम्भ हो चुका था। दोनों तरह के साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोत यह बताते हैं कि लोग खाने में चावल का प्रयोग करने

लगे थे। चित्रित धूसर मृदभांड तथा बानस संस्कृति के खुदाई किये गये स्थलों से जले हुये चावल के दाने मिले हैं। वैदिक साहित्य में चावल के लिए व्रीही, तन्दुला तथा शलि जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह लगता है कि इस समय फसल चक्र का प्रयोग होने लगा था तथा जौं व चावल की खेती की जाने लगी थी। इस काल में खेती की अच्छी पैदावार तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिए *राजसूय* यज्ञ में दूध, घी व पशुओं के साथ-साथ अनाज भी चढ़ाया जाने लगा। *अथर्ववेद* में ऐसी 12 बलियों का वर्णन है जिससे कि भौतिक लाभ की प्राप्ति होती थी तथा इसी के साथ ब्राह्मणों को गाय, बछड़े, सांड, सोना, पके चावल, छप्पर वाले घर तथा अच्छी पैदावार देने वाले खेतों को उपहार के रूप में दिया जाने लगा। उपहार में दी जाने वाली ये वस्तुएँ इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कृषि तथा कृषि पर आधारित स्थायी जीवन का महत्त्व बढ़ रहा था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में वर्णन है कि 8, 12 व 20 बैल तक हल को जोतते थे। यहाँ पर बैलों की संख्या का वर्णन प्रतीक के रूप में हुआ है। परन्तु इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि खेती करने के लिए हल बैल का प्रयोग खूब होने लगा था।

9.4.1 पशुपालक जीवन के महत्त्व में कमी

पशुपालन का कार्य अब जीवन यापन का मुख्य साधन नहीं था जैसा कि यह प्रारम्भिक वैदिक काल में था। इस काल में मिश्रित कृषि व्यवस्था का प्रचलन था जिसमें खेती तथा पशुपालन दोनों का संयुक्त रूप से प्रयोग था। कृषि श्रम प्रधान नहीं थी। जिन जगहों की खुदाई से चावल प्राप्त हुआ है वे स्थान दोआब के पूर्वी क्षेत्रों में स्थित हैं। रोपाई के द्वारा धान पैदा करने का तरीका अभी शुरू नहीं हुआ था।

मिश्रित कृषि व्यवस्था के कारण खेती पर आधारित स्थायी जीवन का उदय हुआ। धूसर मृद्भांड सांस्कृतिक अवशेष 2 से 3 मीटर की गहराई के हैं जिससे यह पता लगता है कि लोग एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहते थे। भगवानपुरा और जखेड़ा की खुदाइयों से स्पष्ट है कि टहनियों, दूब व लकड़ी से बनी गोल झोपड़ियों का स्थान मिट्टी के परकोटे से बने अधिक टिकाऊ घरों ने ले लिया था। इन टिकाऊ घरों के बनाने में प्रयोग की गई सामग्री से स्पष्ट है कि अब उत्तर वैदिक काल के लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन शैली को अपना रहे थे।

9.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन

प्रारम्भक वैदिक काल में पूर्ण समुदाय को लाभ पहुँचाने के लिए अनुष्ठान किये जाते थे। देवताओं की पूजा दूसरे समुदायों पर विजय पाने, पशु प्राप्त करने अथवा पुत्र लाभ के लिए की जाती थी। यह अनुष्ठान और पूजा ऐसे अवसर होते थे जब मुखिया या समुदाय के प्रमुख धन भी बाँटते थे। उत्तर वैदिक काल में अनुष्ठानों का उद्देश्य बिलकुल बदल गया। अब अनुष्ठान बहुत जटिल हो गये जो कई सालों तक चलते रहते थे। इसलिए अब केवल धनी लोग यह अनुष्ठान कर सकते थे। सामूहिकता की भावना में कमी आ गई। बलि देने के पीछे प्रमुख उद्देश्य समुदाय पर नियंत्रण प्राप्त करना हो गया। अब पूरे समुदाय को उपहार नहीं दिये जाते थे। मुखिया केवल ब्राह्मणों को उपहार देता था जो उसके लिए हवन अथवा बलि आदि के अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान अत्यधिक जटिल हो गये, केवल अत्यन्त निपुण ब्राह्मण ही उन्हें कर सकते थे। क्योंकि ऐसा विश्वास था कि एक मामूली गलती भी अनुष्ठान करने वाले का विनाश कर देगी। ऐसा भी विश्वास था कि बलि देने से मुखिया या समुदाय के प्रमुख महामानव ही शक्ति प्राप्त कर के समुदाय में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। इस कार्य के लिए मुखिया अपनी साधन सम्पत्ति का एक बड़ा भाग ब्राह्मण पुरोहित को देता था। इस प्रकार अनुष्ठान मुखिया के लिए भौतिक और आध्यात्मिक प्रभुत्ता स्थापित करने का साधन बन गये।

9.4.3 भूमि का बढ़ता महत्त्व

जमीन की जुताई पारिवारिक श्रम तथा घरेलू नौकरों और दासों की मदद से की जाती थी। इस युग में, पहले भूमि का स्वामित्व पूरे समुदाय या विश के पास होता था परन्तु जब भूमि पर परिवार का स्वामित्व हुआ, इससे परिवार का प्रमुख या गृहपति धनी हो गया। *वैश्य* (जो मूलतः विश से बना था) समाज में उत्पादक वर्ग था। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उत्पादन के कार्यों में सीधी हिस्सेदारी नहीं लेते थे और इनके जीवन यापन के लिए खाद्यानों व सम्पत्ति का उत्पादन *वैश्य* ही करते थे। *वैश्य* जो भूमिकर या अन्य खाद्य सामग्री क्षत्रियों को देते थे उसके बदले में क्षत्रिय उनकी भूमि की रक्षा करते थे। ब्राह्मणों को *वैश्य* जो दान दक्षिणा देते थे उसके बदले में ब्राह्मण उनके जीवन में नैतिक उत्थान के लिए कार्य करते थे। *विश/वैश्य* इस घरेलू अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। जीवन निर्वाह करने वाले खाद्य पदार्थ क्षत्रिय व ब्राह्मणों के बीच क्रमशः भूमिकर और दान दक्षिणा में बंट जाते थे। भूमि को बेचने या क्रय करने की कोई प्रथा नहीं थी। पृथ्वी द्वारा विश्वकर्मा भौवन नाम के एक शासक की इस बात के लिए निंदा की गई कि उसने भूमि का अनुदान देने की कोशिश की। इस संदर्भ में यह स्पष्ट है कि भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व का सिद्धांत माना जाता था तथा विश की भी भूमि में भागीदारी थी।

9.5 राजनीति और समाज

पशुपालन से मिश्रित कृषि की ओर संक्रमण का उत्तर वैदिक राजनीति तथा समाज के चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परिवर्तन की मुख्यधाराएँ थीं :

- प्रारम्भिक वैदिक समाज की कबीलाई संस्था का स्थान क्षेत्रीय पहचान ने ले लिया तथा इसके फलस्वरूप मुखिया की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ।
- सामाजिक ढाँचा जो प्रारम्भिक वैदिक काल में कबीलाई संबंधों पर आधारित और समानतावादी था अब काफी जटिल हो गया। यह समाज असमानता पर आधारित था। एक कबीला कई समूहों में बंट गया। समाज में कुछ समूह उच्च समझे जाते थे और कुछ निम्न।

9.5.1 राजनीति

ऋग्वैदिक काल में जन का प्रयोग जनता या कबीले के लिए किया जाता था। लेकिन अब *जनपद* की धारणा अस्तित्व में आई। *जनपद* का तात्पर्य उस स्थान से था जहाँ पर कबीला बस गया था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में ''*राष्ट्र*'' शब्द का प्रयोग होने लगा था। परन्तु इस शब्द को अभी तक उस अर्थ में परिभाषित नहीं किया गया था जिससे यह एक निश्चित क्षेत्र का द्योतक हो।

कौरव (कुरु) कबीले का उदय वैदिक काल के दो बड़े कबीलों भरत तथा पुरु के संयुक्त होने पर हुआ था। इनका अधिकार गंगा/यमुना दोआब के ऊपरी भू-भाग पर था। इसी प्रकार पांचाल कबीला उन लोगों को कहा गया जिनका अधिकतर प्रभाव दोआब के मध्य भू-भाग पर था और ''पांचाल देश'' के नाम से जाना जाता था। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि अब कबीले की पहचान क्षेत्रीय पहचान में बदल गई थी। यह भी कहा जाता है कि कुरु तथा पांचाल कबीलों का एक-दूसरे से विलय हो जाने के कारण उनका अधिकार गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी मध्य भू-भाग पर हो गया था। इस प्रकार ''*जन*'' तथा क्षेत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन और क्षेत्र के नियंत्रण ने छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक *महाजनपद* तथा *जनपद* के गठन में सहायता की।

कबीलों के मुखिया और योद्धा

जब कबीले किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित हो गये और उस क्षेत्र के रूप में जाने जाने लगे तो कबीलों के मुखिया के पद एवं कार्य शैली में भी परिवर्तन हुआ। राजा या मुखिया अब केवल पशुओं की लूट में सम्मिलित नहीं होता था बल्कि वह उस क्षेत्र का रक्षक बन गया था जिसमें उसके कबीले के लोग रहते थे। *राजन्य* जिसको ऋग्वैदिक काल से उच्च वंशीय परंपरा के पात्र समझा जाता था अब वह क्षेत्रीय वर्ग में बदल गया। ''क्षत्रिय'' शब्द का साहित्यिक अर्थ है राज्य या क्षेत्र पर अधिकार होना। क्षत्रिय वर्ग का मुख्य कार्य था अपने कबीले के लोगों तथा उस क्षेत्र की रक्षा करना जिसमें वे बस गये थे। *विश* या जनता को क्षत्रियों को एक कर देना होता था जिसके बदले में क्षत्रिय जनता की रक्षा करते थे और *विश* धीरे-धीरे क्षत्रिय वर्ग के अधीन बन गये। भूमिकर तथा *बलि* अब इच्छानुसार देने वाले उपहार नहीं थे बल्कि अब नियमित कर व नजराना देने वाली प्रथाओं का उदय हुआ।

कबीलाई सभाएँ

क्षत्रिय तथा योद्धा वर्ग की स्थिति में परिवर्तन के कारण गण या कबिलाई सभाओं के चरित्र में भी परिवर्तन हुआ। *समिति* की अपेक्षा *सभायें* इस समय अधिक शक्तिशाली हो गईं।

सभा राजा को उसके कर्त्तव्य में सहायता करती थी। राजा या मुखिया का पद जन्म पर आधारित नहीं था परन्तु राजा का चुनाव केवल क्षत्रिय वर्ग के मध्य से ही होता था।

राजा की वैधता

पैतृक उत्तराधिकार के स्पष्ट सिद्धांतों के अभाव में राजा के लिए राजतिलक के समय होने वाले अनुष्ठानों का महत्त्व और बढ़ गया था। इसी के माध्यम से वह अपने प्रभुत्व के लिए आम लोगों की सहमति प्राप्त करता था। इसलिए *राजसूय, अश्वमेध* तथा *वाजपेय* जैसे अनुष्ठानिक यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर किया जाने लगा था। ऋग्वैदिक काल में *अश्वमेध* यज्ञ का आयोजन छोटे स्तर पर ही होता था। लेकिन इस काल में इसका आयोजन दूसरे स्थानों पर अधिकार करने तथा दूसरे स्थानों पर शासक की वैधता स्थापित करने के लिए किया जाता था। दूसरे यज्ञों द्वारा राजा के स्वस्थ होने की कामना की जाती थी और राजा की वैधता, उसकी संप्रभुता व शक्ति को स्थापित करने के लिए इन तीनों यज्ञों का आयोजन किया जाता था। उदाहरण के लिए *राजसूय* यज्ञ के बाद आयोजक राजा (सम्राट) घोषित किया जाता था। बाद के काल में भी जब नये राज्य या राजा बनते थे तब भी इनका महत्त्व बना रहा। राजाओं द्वारा इनका उपयोग अपनी सत्ता को धार्मिक वैधता प्रदान करने के लिए हुआ।

साधनों, आर्थिक उत्पादन एवं वितरण के द्वारा राजा क्षेत्रीय एकता को प्राप्त करता था जिससे कि उसका स्तर मात्र लुटेरे या केवल युद्धों के नेता से कुछ अधिक हो जाता था। तब भी, वह एक संप्रभुता सम्पन्न शासक नहीं था। उसका चुनाव होता था और उसे हराया भी जा सकता था, तथा वह अपने कबीले के प्रति उत्तरदायी था। वह दूसरे ऐसे राजाओं की नियुक्ति भी नहीं कर सकता था जो उसके कार्यों में उसका सहायता करते। वे स्वयं में अधिकार सम्पन्न मुखिया थे। यह काफी महत्त्वपूर्ण है कि इस समय में क्षत्रिय वंश का स्तर अधिक ऊँचा हो गया था, इसका कारण है कि क्षेत्रीय पहचान के सिद्धांत की स्थापना हो गयी थी। इस प्रकार क्षेत्र के भौतिक आधार ने राजा को शासन करने की शक्ति दी।

कबीलाई *संघर्ष*

कबीले के आन्तरिक व बाह्य *संघर्ष* की प्रकृति में भी परिवर्तन हुए। अब लड़ाईयाँ पालतू पशुओं के छुटपुट झगड़े नहीं रह गए थे, बल्कि भूमि पर आधिपत्य स्थापित करना इन झगड़ों का मुख्य तत्व था। क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता का सम्बन्ध कबीले की बढ़ती हुई

जनसंख्या से था। लोहे के हथियार और घोड़ों द्वारा चलने वाले हल्के रथों ने युद्धों के कौशल को बढ़ावा दिया। महाभारत में कबीले के आन्तरिक युद्ध को कुरू वंश के कौरव और पांडव के बीच दिखाया है।

पुरोहित

राजन्य क्षत्रिय के बढ़ते हुए महत्त्व ने ब्राह्मण के महत्त्व को भी बढ़ा दिया क्योंकि वे अनुष्ठानों द्वारा राजा के पद को वैधता प्रदान करते थे। ऐसे अवसर पर दान-दक्षिणा द्वारा धन सम्पत्ति का बाँटा जाना मुख्य रूप से क्षत्रिय यजमान द्वारा ब्राह्मण पुरोहित को देना था। बड़े स्तर पर पवित्र अनुष्ठान करना यह दिखाता है कि राजा अपने को पद पर बहुत सुरक्षित नहीं पाता था और शासन करने की अपनी योग्यता ऐसे अनुष्ठानों द्वारा दिखाना चाहता है। बाद के काल में राज्य के पुरोहित का दर्जा देवताओं के समतुल्य हो गया, यह समझा जाता था कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ की आवश्यकता है। इसी प्रकार राज्य पुरोहित अथवा ब्राह्मण दान से प्रसन्न होता है। इस प्रकार धन सम्पत्ति का बंटवारा मुख्यतया शासक और पुरोहित दो उच्च वर्गों में था और राजनैतिक शक्ति क्षत्रिय के अधिकार में आ रही थी।

9.5.2 समाज

हम *विश* या *जन* की घटती हुई स्थिति और क्षत्रिय की बढ़ती हुई हैसियत के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। समाज की रचना अब असमानता पर आधारित थी। एक स्रोत के अनुसार चार *वर्णों* अर्थात् *ब्राह्मण, क्षत्रिय*, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति ब्राह्मण के रचयिता प्रजापति के शरीर से हुई। ''आदिकालीन मनुष्य का श्लोक'' नामक श्लोक *ऋग्वेद* के उत्तरार्द्ध में है। यह श्लोक पहली बार चार वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताता है।

''जब मनुष्य को विभाजित किया गया उसे कितने भागों में बाँटा गया? उसका मुख क्या था, उसके हाथ क्या थे, उसकी जंघा क्या थी और उसके पांव क्या कहे गये?

ब्राह्मण उसका मुख था

क्षत्रिय उसके हाथ से बनाये गये

उसकी जंघा से *वैश्य* बने

उसके पांव से *शूद्र* उत्पन्न हुये।''

इन स्रोतों में प्रतीकात्मक रूप से यह दिखाया गया है कि *ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य* और *शूद्र* समाज के अंग हैं। हालांकि यह अंग समान स्तर के नहीं हैं। *ब्राह्मण* की तुलना सिर या मुख से की गई है जबकि *शूद्र* की तुलना पांव से। *ब्राह्मण* सर्वोच्च समझे गये क्योंकि ऐसा माना गया कि समाज देवताओं से सम्पर्क केवल उनके द्वारा ही स्थापित कर सकता था जब कि *शूद्र* निम्न कार्य करता था और इस श्रेणी में वह दास भी रखे गये जो युद्ध में पकड़े जाते थे।

वर्ण की अवधारणा

वर्ण की अवधारणा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

क) जन्म के आधार पर सामाजिक स्तर

ख) *वर्णों* का श्रेणीबद्ध तरीके से गठन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, *वैश्य, शूद्र*) जिसमें ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च और *शूद्र* सबसे निम्न स्थान पर थे।

ग) अंतर्विववाह, विवाह एवं अनुष्ठानों की पवित्रता के नियम।

वर्ण व्यवस्था को आगे धर्म से या सार्वभौमिक नियम की अवधारणा से प्रतिबद्ध किया गया है और *वर्ण* धर्म की स्थापना सामाजिक नियम के रूप में इसलिए की गई जिससे कि समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाया जा सके। लेकिन उत्तर वैदिक समाज में *वर्ण* धर्म का पूर्णतः विकास नहीं हो पाया था।

इस समय में समाज का विभाजन व्यवसाय के आधार पर था और समाज में अभी काफी लचीलापन था जिसमें किसी का व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं होता था।

वैदिक काल के बाद के काल में भी *वर्ण* धर्म प्रत्येक समूह के अनुष्ठानिक महत्त्व मात्र की ओर संकेत करता था। *वर्ण* व्यवस्था में गैर क्षत्रिय लोग भी क्षत्रिय हो सकते थे और शासक भी (उदाहरण के लिए नंद और मौर्य) और न ही ब्राह्मणों को राजनैतिक सर्वोच्चता स्थापित करने से वंचित किया गया (जैसे कि शुंगराजा)।

इस प्रकार *वर्ण* व्यवस्था के सिद्धांत को व्यवहारिक स्तर पर वैदिक काल के बाद भी कठोरता के साथ कभी भी लागू नहीं किया जा सका।

ऐसा समझा जाता है कि उत्तर वैदिक काल में भौगोलिक केंद्र परिवर्तन के साथ वैदिक लोगों का सामना बहुत से गैर-वैदिक कबीलों के साथ हुआ। इनके साथ लम्बे आदान-प्रदान के बाद एक मिला-जुला समाज अस्तित्व में आया। कम से कम *अथर्ववेद* में कई गैर वैदिक धार्मिक परम्पराओं का चित्रण है जिसे पुरोहितों द्वारा स्वीकार किया गया था। यहाँ पर विवाह के कठोर नियमों को लागू करने का उद्देश्य अंतर्विवाह के द्वारा कबीले की पवित्रता को बनाये रखना था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों का महत्त्व समाज में बढ़ जाने के कारण उनके लिए यह अनिवार्य हो गया कि अन्य लोगों की तुलना में वे स्पष्टतः अपनी सर्वोच्चता कायम रखें। उत्तर वैदिक काल में फिर भी वर्णों की अवधारणा अपनी प्रकृति में अल्पविकसित थी। उदाहरणतः अस्पृश्यता की अवधारणा अनुपस्थित थी।

गोत्र

इस समय में *गोत्र* (साहित्यिक अर्थ गौशाला) संस्था का भी उदय हुआ। कबीलाई सगोत्र विवाह (कबीले के अन्दर विवाह) के विरुद्ध लोग असगोत्रीय विवाह (कबीले के बाहर विवाह) करते थे। गोत्र ने एक समान पूर्वज के वंशक्रम को महत्त्व दिया और इसी कारण एक ही गोत्र के लड़के लड़कियों का आपस में विवाह नहीं होता था।

परिवार

इस काल में पितृसत्तात्मक परिवार अच्छी प्रकार से स्थापित था तथा गृहपति को एक विशेष स्थान प्राप्त था। घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्टता प्राप्त कर लेने से गृहपति की स्थिति महत्त्वपूर्ण हो गयी। भूमि पर स्वामित्व का अधिकार परम्परागत प्रयोग के आधार पर था तथा भूमि के सामुदायिक स्वामित्व को भी सुरक्षित रखा गया। गृहपति धनी थे और अनुष्ठान में उनका मुख्य कार्य यज्ञमान (जो बलि करने की आज्ञा देता हो) का था। उन्होंने धन उपहारों के द्वारा प्राप्त नहीं किया था। परन्तु उन्होंने इसको अपने विशेष प्रयासों से उत्पादित किया। यज्ञों का सम्पन्न कराना उनका कार्य था जिससे कि उनको विशेष दर्जा मिलता और उनके धन में से कुछ भाग ब्राह्मणों को भी जाता था। कुछ महिलाओं को दार्शनिक का दर्जा प्राप्त हुआ था तथा रानियाँ राजतिलक के अनुष्ठानों के अवसर पर पुरुषों के साथ उपस्थित रहती थी, फिर भी महिलाओं को पुरुषों का सहायक ही समझा जाता था और नीति निर्धारण में उनका कोई योगदान नहीं होता था।

जीवन के तीन आश्रम

तीन आश्रम, अर्थात् – जीवन को तीन भागों में विभाजित किया गया था। यह निम्न प्रकार थे।

ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी जीवन), *गृहस्थाश्रम* (घरेलु जीवन), *वानप्रस्थाश्रम* (घरेलु जीवन का परित्याग कर के वन में निवास करना), संभवतः चतुर्थ, संन्यासी (अनिवार्य रूप से सांसारिक जीवन को छोड़ देना) था जिसके विषय में हमें उपनिषदों के लिखने के समय तक कोई जानकारी नहीं मिलती। उत्तर वैदिक काल में संन्यासी या तपस्वी वह व्यक्ति थे जिन्होंने वैदिक काल के बाद में वैदिक सामाजिक व्यवस्था का सक्रिय या निष्क्रिय तरीके से विरोध किया।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से सही कथन (✓) का निशान लगायें। उत्तर वैदिक काल में :

   i) पशुपालन जीवनयापन का मुख्य साधन कहा जा सकता है। ( )

   ii) मिश्रित कृषि व्यवस्था जिसमें खेती तथा पशुपालन सम्मिलित थे, जीवन यापन का मुख्य साधन थी। ( )

   iii) केवल श्रम प्रधान खेती की जाती थी। ( )

   iv) उद्योग मुख्य कार्य था। ( )

2) उत्तर वैदिक काल में :

   i) समाज संगठन के लिए केवल कबीला ही आधार था। ( )

   ii) भूमि अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई तथा भूमि पर कबीलाई स्वामित्व धीरे-धीरे पारिवारिक स्वामित्व में परिवर्तित हो गया। ( )

   iii) भूमि का स्वामित्व कबीले से बाहर था। ( )

   iv) इनमें से कोई नहीं। ( )

3) उत्तर वैदिक काल में :

   i) समिति की अपेक्षा सभा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई। ( )

   ii) समिति सभा से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई। ( )

   iii) सभा तथा समिति दोनों के महत्त्व में गिरावट आई। ( )

   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं। ( )

4) उत्तर वैदिक कालीन लोगों ने :

   i) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने शुरू किये। ( )

   ii) अपने गोत्र से बाहर विवाह किये। ( )

   iii) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने या न करने की परवाह नहीं की। ( )

   iv) उपरोक्त में से कोई नहीं। ( )

5) उत्तर वैदिक काल में पारिवारिक जीवन क्या था? पचास शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

9.6 धर्म

इस समय के ग्रंथ दो विभिन्न धार्मिक परम्पराओं की ओर इशारा करते हैं :

- वैदिक जिसका वर्णन *साम* और *यजुर्वेद* संहिताओं तथा *ब्राह्मण* ग्रंथों में हुआ है, और
- गैर वैदिक या शायद लोक परम्परा जिसको विस्तृत रूप से *अथर्ववेद* में संकलित किया गया।

वास्तव में, *अथर्ववेद* में वर्णित धार्मिक परम्परा से साफ पता लगता है कि यह विभिन्न संस्कृतियों और वैदिक धार्मिक व्यवस्था में प्रचलित मान्यताओं का मिला जुला रूप है। *यजुर्वेद* संहिता और *ब्राह्मण* ग्रंथों में इस काल के बलिदान विषयक धर्म का संकलन है। इस युग में बलियों का बड़ा महत्त्व हो गया था तथा उन्होंने सार्वजनिक व व्यक्तिगत स्तर पर आयोजित किया जाता था। सार्वजनिक बलि अर्थात् *राजसूय, वाजपेय* व *अश्वमेध* यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर होने लगा जिसमें पूरा समुदाय भाग लेता है। इन आहुति (बलि) यज्ञों के कुछ अनुष्ठानों में उर्वरता पंथ के तत्व भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, अश्वमेध यज्ञ में इस बात की आवश्यकता होती थी कि पटरानी बलि के घोड़े के साथ रहती है यहाँ पर रानी पृथ्वी का प्रतीक मानी जाती थी और इस अनुष्ठान के विषय में ऐसा सोचा जाता था कि इससे राजा की सम्पन्नता बढ़ती थी। *राजसूय* एवं *वाजपेय* यज्ञों के समय अनेक कृषि अनुष्ठानों किये जाते। पृथ्वी के नियमित रूप से तरुण व उर्वरक होने जैसे विषयों के लिए भी यज्ञों का आयोजन किया जाता था।

9.6.1 पुरोहितवाद

उत्तर वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानों के सुसम्पादन को स्पष्ट करते हैं तथा जो जटिल थे उनको सम्पन्न करने के लिए ऐसे व्यवसायिक लोगों की आवश्यकता थी जो उनके आयोजनों की कला में निपुण हों। बलि यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए विधि या नियमों को रचा गया। वैदिक बलि यज्ञों का यह तात्पर्य नहीं था कि खाद्य सामग्री को अग्नि को भेंट चढ़ाकर साधारण तरीके से उनको सम्पन्न किया जा सके। भेंट चढ़ाने एवं बलि आदि देने के तरीकों में संरक्षक या यजमान की आवश्यकता के अनुसार अन्तर किया जाता था। अब बलि यज्ञ आध्यात्मिक प्रतीक से भरपूर थे और प्रत्येक अनुष्ठान किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। पुरोहितवाद की एक नयी पद्धति का उदय हुआ क्योंकि इन यज्ञों के सम्पादन में बहुत सी जटिलताएँ आ गई थी फिर चाहे वह सार्वजनिक यज्ञ हो या व्यक्तिगत, इस प्रकार यज्ञोपासना करने के लिए पुजारियों का एक वर्ग विशेषज्ञ हो गया। यहाँ तक कि एक ही यज्ञ के दौरान उसके विभिन्न चरण पूरे करने के लिए अलग-अलग पुरोहितों की आवश्यकता होती थी।

9.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता

प्रारम्भिक वैदिक काल के दो महत्त्वपूर्ण देवता इन्द्र तथा अग्नि का महत्त्व कम हो गया।

प्रजापति या स्रष्टा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। यह इस तथ्य का भी प्रतीक है कि कृषक समाज में स्रष्टा मिथक का कितना महत्त्व है। रुद्र जो *ऋग्वेद* में एक छोटा देवता था, अब एक महत्त्वपूर्ण देवता हो गया तथा विष्णु को भी सृष्टि का रचयिता तथा रक्षक समझा जाने लगा। पूषण जो पहले पालतू पशुओं की रक्षा करता था अब शूद्रों का देवता हो गया। देवताओं की स्थिति में होने वाले परिवर्तन इस तथ्य के प्रतीक हैं कि घुमक्कड़ कबीलों के स्थायी रूप से बसने और स्थायी कृषक बस्तियों में परिवर्तित होने पर उनके चरित्र में भी किस प्रकार परिवर्तन हुआ। प्रारम्भिक वैदिक देवता जो प्राकृतिक विशेषताओं के प्रतीक थे इनके गुणों को धीरे-धीरे त्याग दिया गया और प्राकृतिक तत्वों को देवता के रूप में देखना जटिल हो गया। उत्तर वैदिक काल के श्लोकों में वर्णित होने वाले विशेष देवता में प्राकृतिक तत्व को ढूंढ़ पाना कोई सरल कार्य न था।

9.6.3 लोक परम्परा

अथर्ववेद लोक परम्पराओं से सम्बन्धित सूचनाओं का विशाल भंडार है। इनका सार तत्व वैदिक बलि विषयक धर्म से भिन्न है। और यह मायावी धर्म से सम्बन्धित है। इस *वेद* की विषयवस्तु मानव जीवन के प्रत्येक हिस्से का वर्णन करती है। इसके सूक्त निम्न बातों का वर्णन करते हैं :

- रोग का प्रतिकार
- स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना
- घर तथा सन्तान की सम्पन्नता के लिए मन्त्र
- पालतू पशु और खेत
- सौहार्दता बनाने के लिए मन्त्र
- प्रेम और विवाह या विरोध तथा ईर्ष्या आदि से सम्बन्धित मंत्र।

इस प्रकार इसमें उस समय में व्याप्त अन्धविश्वास तथा विश्वासों का संकलन है। *अथर्व* शब्द एक मायावी सूत्र की ओर इशारा करता है और *अथर्व* पुरोहित इस धर्म को आधिकारिक रूप से संपन्न करते थे। वैदिक देवताओं की स्तुति की जाती थी लेकिन जिस कारण से उसकी स्तुति की जाती थी वे कारण बहुत छोटे तथा व्यक्तिगत होते थे। बहुत सारे देवता, राक्षस, तथा पिशाच (कुछ अपकारी और परोपकारी) सब की स्तुति की जाती थी। इसका उद्देश्य सौभाग्य प्राप्त करने एवं मित्रों का लाभ अथवा दुश्मनों का सर्वनाश करने के लिए होता था। बहुत से मंत्र और स्तुतियाँ परिवार से सम्बन्धित थी और आम आदमी के दैनिक जीवन के नजदीक थी। उदाहरण के लिए, इन्द्र को, घर को लूटने वालों, नागों तथा असुरों को मारने वाला कहा गया है। ऐसा विश्वास किया गया कि अश्विन कृषि रक्षा करते तथा चूहों को मारते। सावित्री को याद वहाँ किया जाता था जहाँ पर नया घर बन सके। पूषण की पूजा सौहार्द्र प्राप्त करने तथा बच्चों को सुरक्षित जन्म के लिए जाती थी जबकि सूर्य भूत-प्रेत को भगाता था।

इस युग के अंत में ब्राह्मणों के विरुद्ध एक कड़ी प्रतिक्रिया हुई। यज्ञों में जटिलता आने का परिणाम यह हुआ कि दर्शन में एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ जिसका मूर्तरूप उपनिषदों में दिखायी दिया। इन्होंने अनुष्ठानिक कार्यक्रमों व बलि के रूप में किये जाने वाले निरर्थक खर्च का विरोध किया तथा आत्मिक ज्ञान पर बल दिया। इस प्रकार धर्म के भौतिक आधार का बहिष्कार कर दिया गया और धर्म को दर्शन विषय तक उठाया गया। उपनिषदों ने आत्मा के परिवर्तन विहीनता एवं अमरत्व पर ज़ोर दिया। इस प्रकार से वे राजनीतिक स्थिरता तथा

एकता पर ज़ोर देते दिखाई पड़ते हैं क्योंकि यह वह समय है जबकि *जनपदों* एवं *महाजनपदों* अर्थात् गणतन्त्र व राजशाही का उदय हो रहा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल के बीच में धार्मिक मतों तथा कार्यक्रमों में एक महान परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन क्रमशः पशुपालन से कृषि की ओर बदलाव से संबंधित था। ये धार्मिक परिस्थितियाँ उस काल की उन बदलती हुई सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की प्रतीक थी जो पूर्व वैदिक से उत्तर वैदिक काल में आये।

बोध प्रश्न 3

1) उत्तर वैदिक काल में : (निम्नलिखित में सही कथन (✓) का निशान लगायें)।

   i) सार्वजनिक एवं घरेलू *बलि* यज्ञ बड़े महत्त्वपूर्ण हो गये। ( )

   ii) *बलि* यज्ञ की कोई भूमिका नहीं थी। ( )

   iii) *बलि* यज्ञों का महत्त्व हो गया क्योंकि पुरोहित एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने को आ गये। ( )

   iv) दोंनों (i) और (iii) सही हैं। ( )

2) यह कहा जा सकता है कि :

   i) महत्त्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता एक समान थे। ( )

   ii) महत्त्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता अलग-अलग थे। ( )

   iii) घुमक्कड़ से स्थायी तौर पर बसने के साथ सामाजिक चरित्र में आये परिवर्तन का उत्तर वैदिक देवता मूर्तरूप थे। ( )

   iv) दोंनों (ii) और (iii) सही हैं। ( )

3) उत्तर वैदिक काल में देवताओं की स्थिति में परिवर्तन क्या इंगित करती है? 50 शब्दों में उत्तर दें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

9.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने जाना :

- कि उत्तर वैदिक समाज पशुपालन शैली से एक स्थायी कृषि समाज में परिवर्तित हो रहा था परन्तु लोहा कृषि में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सका था। लोहे के औज़ारों ने आगे चलकर ही कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

- कि इस प्रक्रिया में स्पष्ट राजनैतिक इकाइयों की स्थापना हुई, आचार संहिताओं को लिखा गया और एक विशेष सामाजिक विभाजन का उदय हुआ।
- कि वैदिक धर्म और इस काल की लोक परम्परा में, अपनी पहचान बनाये रखते हुए भी, मेल-मिलाप बढ़ रहा था।
- कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रारम्भिक वैदिक काल के रूद्र जैसे छोटे देवता अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये जबकि पहले के महत्त्वपूर्ण इन्द्र जैसे देवताओं का महत्त्व कम हो गया, और
- इस युग के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए जिससे कि उस समय के समाज का पूर्ण चित्र सामने आ सके।

9.8 शब्दावली

दोहरी फसल : एक ही खेत में एक समय दो या दो से अधिक फसल पैदा करना।

सगोत्र विवाह : एक ही कबीले, जाति व गोत्र आदि के अन्दर विवाह।

असगोत्र विवाह : जाति, गोत्र आदि से बाहर विवाह।

फलावत उत्सर्ग (पूजा) : अनुष्ठान/धार्मिक कार्य जिसमें मानव जन्म या जन्म की प्रक्रिया पर ज़ोर दिया जाये।

भेंट अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवसथा जिसमें इसको तथा इसकी संस्थाओं को बनाये रखने में उपहार अथवा भेंट विशेष योगदान करते हों।

श्रम प्रधान : वह कार्य जिसमें तकनीकी के स्थान पर मानव श्रम अधिक योगदान करे।

स्थायी रूप से बसना : ठहराव या एक ही स्थान पर रहना।

विभाजन : तहों में विभाजन, सामाजिक विभाजन का तात्पर्य है कि समाज में धन, जाति आदि के आधार पर विभाजन होना।

जीवन यापन गतिविधि : आर्थिक रूप से जीवित रहने के लिए कार्य, इसमें मिश्रित खेती आती है।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ii), 2) iv), 3) ii)

4) भाग 9.3 को देखें (आप अपने उत्तर में यह बतायें कि क्या लोहा युद्ध के लिए महत्त्वपूर्ण हो गया था या रोजमर्रा उपयोग के लिए और क्यों?)।

बोध प्रश्न 2

1) ii), 2) ii), 3) i), 4) ii)

5) उपभाग 9.5.2 को देखें (आपको अपने उत्तर में परिवार के महत्त्व, गृहपति के महत्त्व तथा महिला की परिवार में स्थिति के बारे में बताना चाहिए)।

बोध प्रश्न 3

1) iv), 2) iv)

3) उपभाग 9.6.2 को देखें (आप अपने उत्तर में बतायें कि क्या नये देवता एक नये समाज की ओर इशारा करते थे?)।

9.10 संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, डी.पी. एण्ड *चक्रवर्ती,* डी.के. (ऐडिटेड) (1979). *ऐसेज इन प्रोटोहिस्ट्री,* नई दिल्ली।

ऑलचिन, ब्रिजैड एण्ड रेयमण्ड (1988). *द राईज़ ऑफ सिविलाइजेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान.* नई दिल्ली।

बैशम, ऐ.एल. (1986). *द वंडर दैट वाज इण्डिया.* नई दिल्ली।

झा, डी.एन (1986). *ऐंशिएंट इण्डिया : एन इन्ट्रोडक्ट्री आऊटलाईन.* नई दिल्ली।

कौशांबी, डी.डी. (1987). *द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एंशिएंट इण्डिया इन हिस्टोरिकल आऊटलाइन.* नई दिल्ली।

संकालिया, एच.डी. (1962). *प्रिहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान.* पूना।

थापर, रोमिला (1983). *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* वॉल्यूम-I. नई दिल्ली।

इकाई 10 *जनपद* और *महाजनपद* : नगरीय केंद्रों का उदय, समाज और अर्थव्यवस्था*

इकाई की रूपरेखा

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-4 से ली गई है।

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- छठी शताब्दी बी.सी.ई. के समाज तथा उससे पूर्व के समाज के अंतर को समझ सकेंगे;
- एक शहर के वास्तविक अर्थ तथा ग्रामीण केन्द्रों से इसकी भिन्नता को समझ सकेंगे;
- उन मुख्य कारणों को जान सकेंगे जिनसे छठी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान नगरीकरण हुआ;
- यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि उस समय किस प्रकार के नगर अस्तित्व में थे;
- छठी शताब्दी बी.सी.ई. में नगरीय जीवन की बहुत सी विशेषताओं को समझ सकेंगे;
- विभिन्न मुख्य *जनपदों* तथा *महाजनपदों* के विषय में जान सकेंगे;
- छठी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान समाज के नये समूहों के उदय के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

  आप उन मुख्य सामाजिक व आर्थिक परिवर्तनों को जो दूसरे शहरीकरण के समय निश्चित रूप से उभरे, जान सकेंगे, मुख्यतया :

- समाज के मुख्य अंग, सामाजिक व्यवस्था और शूद्रों के ऊपर लगाए गये नियंत्रण;
- खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के प्रमाण एवं कारक तत्व;
- ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषतायें, और
- इस काल की मुख्य दस्तकारियाँ तथा व्यवसाय और व्यापार की प्रकृति एवं व्यापार मार्ग।

10.1 प्रस्तावना

आपने देखा होगा कि आपके आस-पास के लोग एक ही भाषा बोलते हैं। यही नहीं, पूरा क्षेत्र एक ही प्रकार के त्यौहार मनाता है तथा उनकी शादी-ब्याह की रीतियाँ भी एक जैसी होती हैं। उनके खान-पान की आदतें भी लगभग समान ही होती हैं। सांस्कृतिक एकरूपता रखने वाले क्षेत्र कैसे अस्तित्व में आए? इस प्रक्रिया का आरंभ *जनपदों* के उदय से ही हो गया था। *जनपदों* के उदय के साथ ही भारतीय भूगोल का जन्म भी माना जा सकता है। आपको ध्यान होगा कि वैदिक समाज पर चर्चा करते हुए हमने विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों पर बहस नहीं की थी। इसका कारण यह था कि लोग किसी विशेष क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं थे। किसानों की बस्तियाँ कायम होने के साथ बस्तियों के निवासी आस-पास के क्षेत्र से भावनात्मक रूप से जुड़ गए। उन्होंने इन क्षेत्रों की नदियों, पक्षियों एवं पशुओं तथा फलों को देखा। यही नहीं, इसी समय उन्होंने किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र को अपना मानना शुरू किया। यह भौगोलिक

क्षेत्र अन्य समुदायों के क्षेत्रों (*जनपदों*) से पृथक् थे जो कि इन क्षेत्रों से मित्रता अथवा शत्रुता का भाव रख सकते थे। आंतरिक रूप से संबद्ध तथा बाह्य जगत से अलग होने की विशेषता वाले यह *जनपद*ीय प्राचीन भारत के आरंभिक विकास का आधार बने। ये इकाइयाँ अथवा *जनपद* समान भाषा, रीति-रिवाजों एवं धारणाओं के विकास के केन्द्र बन गए।

10.2 वैदिक युग तथा छठी शताब्दी बी.सी.ई.

जनपदों के विषय में चर्चा करते समय हमें *जनपदों* के उदय से संबंधित अनेक वस्तुओं का उल्लेख करना होता है। चूंकि *जनपद* छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक अस्तित्व में आ चुके थे, अतः हम कह सकते हैं कि जिन क्षेत्रों में यह *जनपद* अस्तित्व में आए, वहाँ काफी बड़े परिवर्तन मूर्त रूप में प्रकट हुए। जिन क्षेत्रों में लोग *जनपदों* में रहते थे वहाँ गाँव, कस्बे और शहर हुआ करते थे। आपको ध्यान होगा कि जब हमने आरंभिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल की चर्चा की थी तो हमने गाँव, कस्बे और शहर जैसी इकाइयों में लोगों के रहने का उल्लेख नहीं किया था, यद्यपि वे सामान्य बस्तियों में निवास करते थे। यही वह समय है, जबकि राजे-रजवाड़े इतिहास में पदार्पण करते हैं। इसी समय ही गहन दार्शनिक विचारों का उदय हुआ। बौद्ध मत, जैन मत और कई अन्य असनातनी सम्प्रदाय इसी समय उभरे। भिक्षु, रजवाड़े तथा व्यापारी इतिहास के पन्नों पर फैल गए। इस प्रकार, जिस युग (लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. से चौथी शताब्दी बी.सी.ई.) का हम अध्ययन करेंगे वह कई अर्थों में हमारे समक्ष भारतीय समाज में हुए निरंतर परिवर्तनों को प्रकाश में लाएगा।

10.3 नगर केन्द्र क्या है?

छठी शताब्दी बी.सी.ई से प्रारम्भ होने वाले काल में भारतवर्ष में दूसरी बार नगरों का उदय हुआ। यह नगरीकरण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था कि काफी लम्बे समय तक यह नगरीय व्यवस्था रही और इसी काल में साहित्य की लेखन परम्पराओं का प्रारम्भ हुआ। जैन तथा हिन्दू धर्म के कई मतों में इस परम्परा का समावेश हुआ है तथा उपरोक्त धार्मिक वर्गों के लोग इस काल से अपने धर्मों की स्थापना का काल मानते हैं। तत्कालीन साहित्य में राजग्रह, श्रावस्ती, काशी आदि नगरों के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। बुद्ध एवं महावीर ने अधिकांशतया नगर के लोगों को ही सम्बोधित किया।

सिंधु घाटी के नगरों की समाप्ति के पश्चात् खेतिहर और घुमक्कड़ समुदाय भारत के मैदानों में बस गए। साधारण घरों वाली छोटी ग्रामीण बस्तियाँ हर तरफ देखी जा सकती थी। यह सब राजाओं और व्यापारियों के प्रभुत्व और बाज़ार स्थलों के कोलाहल एवं कलकल से मुक्त थीं। आपने राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा जो अपनी सत्यनिष्ठा तथा वचनबद्धता के लिए प्रसिद्ध है। हम यहाँ पर उनकी प्रारंभिक कहानी का वर्णन कर रहे हैं जिसको *ऐतरय ब्राह्मण* ग्रंथ से लिया गया है। इस ग्रंथ का समय मोटे तौर पर आठवीं सदी से नवीं सदी बी.सी.ई. के बीच का माना जा सकता है।

कहानी इस प्रकार चलती है, – राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। वह भगवान वरूण के पास गए और प्रार्थना की, ''अगर मेरे पुत्र की उत्पत्ति हो तो उसकी बलि में आपको दूंगा''।

उनके यहाँ रोहित नाम के पुत्र का जन्म हुआ। वरूण ने उसकी बलि की माँग की। राजा ने बहुत से बहाने बनाये और बलि को टालते रहे। जब रोहित बड़ा हुआ तो हरिश्चन्द्र ने उसको बतलाया, ''ओ मेरे प्रिय पुत्र, वरूण भगवान ने तुमको मुझे प्रदान किया है। इसलिए उनको मैं तुम्हारी बलि दूंगा''। ''नहीं'', उसने कहा और अपना धनुष लेकर वह जंगल को चला गया और एक वर्ष तक वह जंगल में घूमता रहा।

वरूण क्रोधित हो गया और हरिश्चन्द्र को दण्डित करने के लिए जलोदर रोग का अभिशाप दे दिया। रोहित ने जब यह सुना तो उसने जंगल से गाँव वापस जाने का निश्चय किया। उसने छः बार गाँव को वापस आने का प्रयास किया परन्तु इन्द्र ने उस पर दबाव डालकर उसको हर बार जंगल वापस जाने के लिए बाध्य किया।

सातवें वर्ष उसने सुनहसेप नाम के ब्राह्मण लड़के को उसके पिता से सौ सिक्कों में खरीद लिया। इसके पश्चात् वह हरिश्चन्द्र के गाँव वापस लौट आया जहां पर सुनहसेप की भगवान वरूण के लिए बलि दी जाने वाली थी। जब सुनहसेप की बलि दी जाने वाली थी तो उसने कुछ मंत्रों का उच्चारण किया जिससे वरूण अति प्रसन्न हुए और उसको बचा लिया गया। राजा का जलोदर रोग भी समाप्त हो गया।

नगरीकरण के इतिहासकार के लिए इस कहानी का यह महत्त्व है कि राजा हरिश्चन्द्र किसी नगर में नहीं रहते थे, न किसी छोटे कस्बे में बल्कि वह एक ऐसे गाँव में रहते थे जो जंगल के समीप था। छठी शताब्दी बी.सी.ई. आते-आते इस सब में काफी परिवर्तन हुआ। आप इस इकाई में जानेंगे कि राजशाही *महाजनपदों* के राजा एवं गण-संघों के क्षत्रिय मुखिया कौशाम्बी, चम्पा, श्रावस्ती, राजगृह और वैशाली जैसे नगरों में रहते थे। इस समय तक केवल बड़े नगर ही अस्तित्व में नहीं आए थे, किन्तु कृषि पर आधारित गाँव के साथ-साथ बाज़ार केन्द्र, छोटे कस्बे, बड़े कस्बे और अन्य प्रकार की बस्तियाँ भी अस्तित्व में आ चुकी थी।

नगर केन्द्र को परिभाषित करने का प्रयास बहुत से विद्वानों ने किया है। वैसे तो किसी नगर केंद्र को परिभाषित करना काफी सरल कार्य लगता है। लेकिन जब हम यह काम शुरू करते हैं तो यह प्रश्न काफी जटिल हो जाता है। जैसा कि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि धनी आबादी होना नगर केंद्र का एक लक्षण है। तथापि हम देखते हैं कि कुछ भारतीय आधुनिक गाँवों की आबादी आस्ट्रेलिया के कुछ नगरों से भी अधिक है। इसी प्रकार, कुछ विद्वानों का तर्क है कि नगर केंद्रों का आकार गाँवों से बड़ा होता है। फिर भी, नगरों के आकार स्तर को निश्चित करना कठिन है। हम जानते हैं कि आधुनिक गाँवों का आकार हड़प्पाकालीन कालीबंगन जैसे नगरों से काफी अधिक है। इस प्रकार लोगों की संख्या या बस्ती के आकार को नगर या गाँव केंद्र को परिभाषित करने के लिए विश्वसनीय आधार नहीं माना जा सकता है। इसलिए उन कार्यों की विशेषताओं की पहचान करना महत्त्वपूर्ण है जिनको वे पूरा कर रहे हैं। गाँव में अधिकतर लोग खाद्य उत्पादन के काम में लगे हुए होते हैं। इसलिए गाँवों की सामाजिक व्यवस्था पर किसानों व खेतों की प्रधानता होती है। दूसरी ओर, नगरों में शासनकर्त्ताओं या पुजारियों या व्यापारियों की प्रधानता होती है। यह संभव है कि नगर में भी बहुत से लोग कृषि से संबंधित कार्यों में संलग्न हो। परन्तु नगर को परिभाषित करने के लिए कृषि के अतिरिक्त गतिविधियों का होना आवश्यक है।

हम उदाहरणार्थ बनारस को लेते हैं जो भारत के जीवित प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसकी प्रसिद्धि अच्छी किस्म का चावल उत्पादन करने के कारण ही नहीं परन्तु एक बहुत महत्त्वपूर्ण तीर्थ केंद्र होने के कारण है। बनारस सम्पूर्ण भारत के तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करता था। ये तीर्थ यात्री मन्दिर में देवी देवताओं पर विभिन्न प्रकार के उपहार चढ़ाते थे। इस तरह से जो लोग मंदिरों के स्वामी थे वे सारे देश से आने वाले तीर्थ यात्रियों के संसाधनों को प्राप्त करने में सक्षम थे। नगर केंद्र की दूसरी विशेषता यह है कि अपने साथ-साथ यह अपने प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली अधिकतर जनसंख्या के संबंध में भी काम करता है। इस प्रकार नगर अपनी भौतिक सीमा से कहीं ज्यादा बड़े क्षेत्र के लोगों को भी प्रशासनिक, आर्थिक और धार्मिक सेवाएँ उपलब्ध करा सकता है। प्रभाव क्षेत्र की जनसंख्या के साथ यह सम्बद्धता नगर केंद्र के लिए लाभदायक है। इसका अर्थ यह है कि शहर के निवासी प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले लोगों के संसाधनों का प्रयोग करने में सक्षम हैं। इस कार्य को वस्तु कर या नज़राना वसूल

करके किया जा सकता है। नगर में रहने वाला व्यापारी धातुओं, खनिजों और विलासिता की वस्तुओं की आपूर्ति को नियंत्रित करके ग्रामीण क्षेत्रों के संसाधनों के एक हिस्से को हड़प करने में (विनियोग करने में) सक्षम है। इसका तात्पर्य यह है कि शहरों में रहने वाले राजाओं, पुजारियों तथा व्यापारी वर्गों के पास साधारण आदमी की तुलना में अधिक धन है। ये वर्ग अपने धन का उपयोग अधिक धन, सम्मान एवं ताकत प्राप्त करने में करते हैं। अब, प्रत्येक समाज में धनी व ताकतवर लोगों के दिखावट के अपने-अपने तरीके होते हैं। कुछ समाजों में सम्पन्न लोग बड़े-बड़े महल बनाते हैं तो कुछ सुन्दर मन्दिर बनाते हैं और कुछ महाबलि यज्ञों का आयोजन करते हैं। अन्य लोगों की रुचि मूल्यवान धातुओं व पत्थरों को रखने में होती है।

राजाओं, पुजारियों और व्यापारियों तथा किसानों के अलावा नगरों में दस्तकार और कारीगर भी रहते हैं जो नगर के लिए विलासिता की चीज़ों एवं शहर से बाहर के लोगों के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इन कारीगरों को शहर के सम्पन्न लोगों की भांति विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, व्यापारी और प्रशासक काफी धनी हो सकते हैं परन्तु लुहार, राजगीर या बढ़ई गरीब ही होंगे। इस प्रकार, धनी और गरीब, दोनों की उपस्थिति नगर की एक विशेषता है।

हम कह सकते हैं कि नगर उन स्थलों को कहा जा सकता है जहाँ पर आबादी का महत्त्वपूर्ण वर्ग खाद्य उत्पादन के अतिरिक्त अन्य दूसरी गतिविधियों में संलग्न है।

इस प्रकार की विभिन्न सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के कारण उन लोगों में उचित तालमेल करने में कठिनाई होती है जो लोग इन गतिविधियों में व्यस्त हैं। उदाहरण के लिए, लुहार को किसान से अनाज की आवश्यकता होगी या व्यापारी को अपना माल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को ले जाने में लुटेरों से सुरक्षा की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में जहाँ प्रत्येक समूह दूसरे समूह के बिना जीवित नहीं रह सकता वहाँ उनकी गतिविधियों में तालमेल रखने के लिए एक केंद्रीकृत संगठन की आवश्यकता होती है। गरीब व धनी के बीच शत्रुता पर नियंत्रण करने की आवश्यकता और नगर के उपभोग के लिए कृषि उत्पाद को गतिशील बनाने की आवश्यकता ने केंद्रीकृत शक्ति की उत्पत्ति की संभावनाओं को पैदा किया। केंद्रीकृत निर्णय लेने वाले गुटों की उत्पत्ति लगभग उसी समय हुई जब शक्ति पर एकाधिकार रखने वाले गुटों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में यह तथ्य निहित है कि एक प्रकार का राज्य समाज अस्तित्व में आया।

इस तरह कारीगरों, धनी व गरीब लोगों और प्रशासन की उपस्थिति शहरी समाज की विशेषता है।

10.4 छठी शताब्दी बी.सी.ई की पृष्ठभूमि

प्राचीन भारत में *महाजनपदों* और केंद्रकृत प्रणालियों के उद्‌भव के विषय में हम जल्द बतायेंगे। हम देखेंगे कि एक समय में ब्राह्मणों का एक जाति वर्ग (सूचि) में कैसे उद्‌भव हुआ और जो अनुष्ठानिक कार्य के विशेषज्ञ हो गये। फिर क्षत्रिय योद्धाओं और भू-स्वामियों का वर्ग आया जिसने क्रमिक रूप से किसानों तथा व्यापारियों पर कर लगाना प्रारम्भ किया। उत्तर वैदिक काल में सरदारों ने बलि अनुष्ठानों के अवसर पर अपनी सम्पत्ति को खर्च करना और वितरित करना प्रारम्भ कर दिया। अधिक से अधिक, विशाल से विशाल स्तर पर बलि यज्ञों के आयोजन करने से सरदारों के बीच प्रतियोगिता होने लगी जिससे कि वे अधिक से अधिक लूट, कर व नज़राना प्राप्त करने को बाध्य हो गये। इस व्यवस्थित कृषक समाज में कृषि उत्पाद और पालतू पशु सम्पत्ति के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीक थे। विशेषकर, कृषि उत्पाद इस प्रकार की सम्पत्ति थी जिसकी साल दर साल जुताई की भूमि को बढ़ाकर और अधिक

उत्पादन करने वाले कृषि के तरीकों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता था। शासकों की अधिक से अधिक धन की लालसा ने अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने तथा चरवाहों एवं चारा खोजकर लाने वालों को बसने के लिए बाध्य किया। पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि बहुत-सी कृषि बस्तियाँ 6वीं शताब्दी बी.सी.ई. से 7वीं शताब्दी बी.सी.इ. के बीच अस्तित्व में आयीं। मध्य गंगा घाटी में बढ़ते हुए लोहे के औज़ारों का प्रयोग तथा रोपाई द्वारा की गई खेती ऐसे दो कारक थे जिनसे कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में काफी मदद मिली।

लोहे का प्रयोग और रोपाई द्वारा खेती

1000 बी.सी.ई. के आस-पास भारतीयों ने लोहे को पिघलाने की कला को सीख लिया था। आगे आने वाली तीन या चार शताब्दियों में लोहे का प्रयोग बढ़ता गया। इसलिए उज्जैन, श्रावस्ती और हस्तिनापुर से बड़ी संख्या में लोहे के उपकरण एवं औज़ार प्राप्त हुए हैं। विशेषकर लोहे के हथियारों का प्रयोग काफी बड़े स्तर पर होने लगा था। जिसके कारणवश किसानों की तुलना में क्षत्रियों की शक्ति में वृद्धि हुई। क्षत्रिय वर्गों ने लोहे के हथियारों की सहायता से किसानों से अधिक धन को वसूल किया। लोहे के हथियारों ने उनकी युद्ध, विजय और लूट-पाट की भूख को और बढ़ाया।

लोहे के प्रयोग का अर्थव्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लोहे की कुल्हाड़ी से जंगलों को साफ किया जा सका और लोहे की फाल वाले हल से कृषि कार्यों को करने में सुविधा हुई। यह मध्य गंगा घाटी में (प्रयागराज और भागलपुर के मध्य का क्षेत्र) काफी उपयोगी था जहाँ पर रोपाई द्वारा धान की खेती की जाती थी। धान की रोपाई को भी इस काल में सीख लिया गया था। यह सर्वविदित तथ्य है कि परंपरागत कृषि में तराई चावल की खेती वाले क्षेत्र में पैदावार गेहूँ या मोटे अनाजों की तुलना में अधिक थी। चावल उत्पादक मध्य गंगा घाटी में, गेहूँ उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी की तुलना में अधिक अनाज का उत्पादन होता था। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में चावल व खेतों की किस्म का बार-बार वर्णन हुआ है। यह व्यापक स्तर पर चावल की खेती की ओर निर्णायक परिवर्तन को स्पष्ट करता है। अधिक खाद्य उत्पादन के कारण जनसंख्या के बढ़ने में सहायता मिली, जिसकी अभिव्यक्ति उस समय के प्राप्त हुए पुरातात्विक स्थलों में वृद्धि के रूप में होती है। अधिक अन्न उत्पादन ने यह संभावना बनाई कि ऐसे सामाजिक समूह अस्तित्व में आये जो खाद्यान्न उत्पादन में लिप्त नहीं थे।

वैदिक बलि यज्ञों से तात्पर्य था कि सरदारों के द्वारा जो अतिरिक्त उत्पाद एकत्रित किया जाता था वह यज्ञों के आयोजन के समय उपहारों के रूप में चला जाता था। मध्य गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों का स्वरूप ऊपरी गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों से भिन्न था। जिसका अर्थ था कि जिस अतिरिक्त उत्पादन को सरदारों द्वारा एकत्रित किया जाता था वह बलि यज्ञों के अवसर पर खर्च नहीं होता था। जिन बढ़ते हुए समूहों का इस अतिरिक्त धन पर नियंत्रण था वे ही नवोदित राज्यों के शासक वर्ग बन गए और इसी धन की आधारशिला पर छठी शताब्दी बी.सी.ई. के नगरों की उत्पत्ति हुई।

10.5 हमारी जानकारी के स्रोत

हमें *जनपदों* और *महाजनपदों* के विषय में जानकारी कुछ वैदिक तथा बौद्ध साहित्य से प्राप्त होती है। *ब्राह्मण* ग्रंथ एक वैदिक स्रोत का उल्लेख करते हैं जिसमें वैदिक अनुष्ठान के तरीकों का उल्लेख है। इसी प्रकार दार्शनिक समस्याओं को रेखांकित करने वाले *उपनिषदों* को भी वैदिक साहित्य का अंग माना जाता है। यह ग्रंथ 800 बी.सी.ई. के बाद से लिखे जाते रहे हैं। इनमें कई *जनपदों* और *महाजनपदों* का उल्लेख है जिसमें हमें खेतिहर समुदायों की बस्तियों के विषय में विविध जानकारी प्राप्त होती है। इस युग के विषय में जानकारी का एक अन्य

स्रोत बौद्ध साहित्य है। *संघ* के नियमों को रेखांकित करने वाली *विनय-पिटक*, बुद्ध के उपदेशों का संग्रह *सुत्त पिटक* तथा अलौकिक समस्याओं का उल्लेख करने वाली *अभिधम्म पिटक* हमें इस युग के उपदेशक राजकुमारों, धनी एवं निर्धनों तथा गाँवों एवं कस्बों के विषय में जानकारी देते हैं। बुद्ध के पूर्व जन्मों के विषय में बताने वाली *जातक-कथाएँ सुत्त पिटक* का अंग हैं। वे हमें उस समय के समाज की स्पष्ट जानकारी देते हैं। इन ग्रंथों में विभिन्न क्षेत्रों तथा भौगोलिक विभाजनों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इस युग के प्रति हमारी जानकारी में पुरातत्वशास्त्री भी काफी योगदान करते हैं। उन्होंने अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, उज्जैन, श्रावस्ती, वैशाली तथा अन्य कई स्थलों की खुदाई की है जिनका इन ग्रंथों में उल्लेख है। उन्होंने यहाँ के लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं, घरों, इमारतों, कस्बों आदि के अवशेष प्राप्त किए हैं। उदाहरण के लिए इस युग की पुरातात्विक उपलब्धियों से पता चलता है कि इस युग के लोग उत्तरी काले पालिश किए मृद्भांड कहे जाने वाले उत्कृष्ट बर्तनों का उपयोग करते थे, जिसका उल्लेख इकाई-7 में किया जा चुका है। पूर्वकालीन बस्तियों में लोग या तो लोहे के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे अथवा इसे विशेष अवसरों पर ही इस्तेमाल करते थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में लोगों ने लोहे का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर करना आरंभ किया। सम्पन्न खेतिहर बस्तियाँ और कस्बे भी खुदाई के दौरान पाए गए हैं। इस प्रकार पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोतों की मिली-जुली जानकारी से हमें छठी शताब्दी बी.सी.ई तथा चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के बीच के भारतीय समाज की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

उत्तर प्रदेश, बरेली जिले में स्थित प्राचीन शहर अहिच्छत्र (या अहि-क्षेत्र) के अवशेष, उत्तर पंचाल की राजधानी, एक उत्तरी भारतीय राज्य जिसका उल्लेख है महाभारत में। श्रेय : सुनीत 87। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/Janapada#/media/File:Ahichchhatra_Fort_Temple_Bareilly.jpg)।

10.6 छठी शताब्दी बी.सी.ई. के नगर

छठी शताब्दी बी.सी.ई. के नगरों के विषय में हमारी सूचना बहुत से स्रोतों पर आधारित है क्योंकि यह वह समय है जब प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। ब्राह्मणिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में उस समय की परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। इस काल के बहुत से नगरों और गाँवों के उत्खनन से प्राप्त विवरण हमारी जानकारी को और पुष्ट करते हैं।

लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. के मुख्य नगर। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-4, इकाई-15।

10.6.1 साहित्य में नगरों और कस्बों के प्रकार

प्राचीन भारतीय साहित्य में शहरों के प्रतीक के रूप में *पुर, दुर्ग, निगम, नगर* आदि शब्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है। अब हम यह देखेंगे कि प्राचीन भारतीय इनको किस प्रकार से परिभाषित करते थे।

पुर – *पुर* शब्द का प्रयोग प्रारंभिक वैदिक साहित्य में भी हुआ। यहाँ इनका उल्लेख किलेबंद बस्तियों, अस्थायी शरण स्थलों या पालतू पशुओं के बाड़ों के संदर्भ में हुआ है। बाद में इस शब्द का प्रयोग राजा के निवास स्थान और परिजनों के निवास स्थान या गण संघों के शासक वर्ग के परिवार जनों के निवास स्थल के लिए होता है। धीरे-धीरे घेरे-बंदी के अर्थ में इसका प्रचलन कम होने लगा और इसका तात्पर्य शहर या नगर से लगाया जाने लगा।

दुर्ग – यह एक और शब्द है जिसका प्रयोग राजा की घेरे-बन्द राजधानी के लिए होता था। इस घेरेबंदी के कारण नगर केंद्र की सुरक्षा होती थी और यह आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से अलग हो जाता था। घेरेबंदी के कारण शासक वर्गों के लिए नगर में रहने वाले लोगों के कार्यकलाप को नियंत्रित करना सरल था।

निगम – एक कस्बे के प्रतीक के रूप में इस शब्द का पाली साहित्य में खूब वर्णन हुआ है। संभवतः इसका ऐसे स्थल से संबंध है जहाँ पर व्यापारी वर्ग के द्वारा चीजों की बिक्री एवं खरीदारी की जाती थी। वास्तव में कुछ विद्वानों का विश्वास है कि इन निगमों का विकास उन गाँवों से हुआ जो बर्तन, लकड़ी के सामान तथा नमक का निर्माण करने में विशेषज्ञ थे। ये *निगम* बज़ार वाले कस्बे थे, इस तथ्य की सत्यता इस बात से भी सिद्ध होती है कि बाद

के काल के पाए गए सिक्के दर्शाते हैं कि ये *निगम* में बनाए गए हैं। कभी-कभी साहित्यिक ग्रंथों में नगरों में ''*निगम*'' शब्द का प्रयोग उस स्थल के लिए हुआ है जहाँ पर दस्तकार और कारीगर रहते और काम करते थे।

नगर – साहित्य में कस्बे या शहर के लिए प्रयोग होने वाले यह सबसे अधिक सामान्य शब्द है। इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग *तेत्रिरिय अरण्येक* में हुआ। यह ग्रंथ सातवीं शताब्दी बी.सी.ई. से छठी शताब्दी बी.सी.ई के समय में रचा गया। एक अन्य शब्द *महानगर* का प्रयोग नगरों के लिए हुआ है। ये केंद्र *पुर* के राजनैतिक कार्य – कार्यकलाप तथा निगम के व्यापारिक कार्यकलाप का समन्वित रूप थे। इन शहरों में राजाओं, व्यापारियों तथा प्रचारकों का निवास था। बौद्ध साहित्य में 6 महानगरों का संदर्भ आता है। इनमें से अधिकतर मध्य गंगा घाटी में स्थित थे। ये राजगृह, चम्पा, काशी, श्रावस्ती, साकेत और कौशाम्बी थे। *पट्टन, स्थानीय* आदि दूसरे शब्द हैं जिनको कस्बे व नगर के लिए प्रयोग किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि *पुर* व *दुर्ग* सबसे पुराने ऐसे शब्द हैं जिनको भारतीय साहित्य में कस्बे या नगर के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। शेष शब्दों का प्रयोग बाद के काल में हुआ। यह हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है कि इन दोनों शब्दों का प्रयोग बस्तियों की घेरेबंदी के लिए किया गया है। इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि राजा और उसके समर्थक घेरेबंद बस्तियों में रहते थे। वे आसपास की बस्तियों से टैक्स वसूल करते थे। उनकी धन संचय व विलासिता की वस्तुओं को एकत्रित करने की क्षमता के कारण व्यापार का फैलाव संभव हो सका। इन किलेबंद बस्तियों की बदौलत विभिन्न संबंधों का जाल-तंत्र की व्यवस्था का विकास हुआ। अंततः इसके कारणवश नगरों का उद्‌भव हुआ। इस विचार के समर्थन में यह तथ्य भी है कि ब्राह्मणिक परम्परा के अनुसार अनेक नगरों की आधारशिला विशेष राजाओं द्वारा रखी गई। जैसे कि कुशम्ब नाम से जाने वाले राजा ने कौशाम्बी नाम के नगर को बसाया। इसी प्रकार हस्तिन से हस्तिनापुर को बसाया और श्रावास्ता ने श्रावस्ती की आधारशिला रखी। बौद्ध साहित्य में नगरों का संबंध मुनियों, पेड़-पौधों व जानवरों से है। उदाहरण के लिए, कपिलवस्तु को वह नाम कपि मुनि के नाम पर दिया गया। कहा जाता है कि कौशाम्बी को यह नाम उस क्षेत्र में कुशम्ब नाम के वृक्षों के उगने के बाद दिया गया। परन्तु राजाओं द्वारा शहरों की स्थापना की परम्परा ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा कहा जाता है कि पांडवों ने इंद्रप्रस्थ नाम के नगर को बसाया। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण के काल में भी शासक परिवार के राजकुमारों ने अनेक नगरों को बसाया।

आगामी काल में राजनैतिक केंद्रों में से कुछ काफी बड़े व्यापारिक केन्द्र बन गए। जल्दी ही, ऐसे नगर जो केवल राजनैतिक केंद्र थे, राजनैतिक तथा वाणिज्य केंद्रों से कम महत्त्वपूर्ण हो गए। जैसे कि राजधानी हस्तिनापुर ने कभी भी ऐसी सम्पन्नता को प्राप्त नहीं किया, जैसी कि काशी या कौशाम्बी को प्राप्त थी। जब दूर-दराज के स्थलों से व्यापार काफी बढ़ जाता था तो राजनैतिक लोग व्यापारियों पर कर लगाकर अपने खजाने को सम्पन्न करते थे। कम से कम दो उदाहरण ऐसे हैं जिनमें राजनैतिक राजधानियाँ उन स्थानों में परिवर्तित हो गईं जो महत्त्वपूर्ण व्यापार मार्गों पर स्थित थे। कोशल राज्य की राजधानी को अयोध्या से श्रावस्ती ले जाया गया और मगध राज्य की राजधानी को राजगृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को बनाया गया। यह व्यापारिक व्यवस्था के उद्‌भव के महत्त्व को स्पष्ट करता है जो प्राचीन उत्तरापथ के उस हिस्से में फैला हुआ था जो हिमालय की तलहटी और बाद में तक्षशिला को राजगृह से जोड़ता था। इसी प्रकार, पाटलिपुत्र ऐसी जगह पर स्थित था जहाँ से वह गंगा नदी से गुज़रने वाले व्यापारिक रास्ते का लाभ उठा सकता था। राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण ऐसा करण था जिससे कि प्राचीन भारत में नगरों का विकास हुआ। हम काल का साहित्य व्यापारियों के काफिलों के वर्णन से भरा पड़ा है, जो दूर स्थलों पर व्यापार के लिए जाते थे। धनी व्यापारी भी राजाओं के साथ-साथ महात्मा बुद्ध के मुख्य अनुयायी थे।

10.6.2 प्राचीन भारत में नगर की छवि

निम्नलिखित विवरण कुछ बाद के काल के बौद्ध और ब्राह्मणिक साहित्यिक ग्रंथों में आये संदर्भों पर आधारित हैं। *दिव्यावदान* और *धर्म-सूत्र* जैसी पुस्तकें हमें उस समय के नगरों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराती हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य नगरों की आदर्श छवि प्रस्तुत करता है। *रामायण* में वर्णित अयोध्या या बौद्ध ग्रंथों में वर्णित वैशाली बिल्कुल आदर्श लगेंगे। अगर उनके विवरण का गहराई से अध्ययन किया जाए तो आदर्श रूप में नगरों का वर्णन बिल्कुल शतरंज के बोर्ड की भांति किया गया है। नगरों के चारों ओर किलेबंदी व खाई थी। ऐसी सड़कें थी जिसके नाम बहुत से दस्तकारों के नाम पर थे। नगरों की घेरेबंदी सुरक्षित दीवारों तथा खाइयों द्वारा की गई थी। चौड़ी सड़कें, रंगीन पताकाओं से सुसज्जित ऊँचे भवन, व्यस्त बाजार, फूलों वाले बाग, कमलों व हंसों के साथ पानी से भरे तालाब इस विवरण में आते हैं। पुरुषों की अच्छी वेश-भूषा तथा नाचती व गाती सुन्दर महिलाएँ शहर का चित्रण पूरा करती हैं। आदर्श शहरों का यह असीमित विवरण हमें ऐसा अपर्याप्त विचार देता है जिसके आधार पर प्राचीन भारत के शहरों की वास्तविक स्थिति का बोध नहीं होता। अन्य बिखरे हुए संदर्भों की मदद से नगरों के विषय में हम एक अधिक उचित राय बना सकते हैं।

10.6.3 नगर का भ्रमण

ऐसा प्रतीत होता है कि नदियों के लम्बे मार्गों के किनारों अथवा लम्बे स्थल मार्गों के *संगम* पर नगरों का विकास हुआ। जब आप शहर की सड़कों से गुजरेंगे तब आप क्या पायेंगे? समकालीन ग्रंथ नगरों की जीवन्त छवि प्रस्तुत करते हैं। घोड़ों की टापों से उड़ती धूल के अम्बार और व्यापारियों के काफिले जिनको पवित्र ब्राह्मण बहुत घृणा की दृष्टि से देखते थे। दुकानों के आसपास लोगों की भीड़ चिल्ला-चिल्लाकर खाने की चीजें जैसे कि आम, कटहल, केले, मिसरी, पके चावल आदि की बिक्री करती थी। सस्ते आभूषण, शंख वाले कंगन तथा फूलों को बेचने वाली महिलाओं का कोलाहल एवं कलकल की आवाजें हवा में तैरती रहती थीं। अगर किसी को शराब की ज़रूरत हो तो फिर बहुत से किस्म की शराब की दुकानें मिल जायेंगी। घरों का निर्माण अक्सर मिट्टी व लकड़ी से होता था तथा उसकी खपरैल वाली छत होती थी। इस प्रकार के घरों को गंगा के मैदान के गाँवों में आज भी देखा जा सकता है। कुछ मामलों में घरों का निर्माण पत्थर और पक्की ईंटों से भी किया जाता था। महिलाओं को झरोखों से झांकते हुए देखा जा सकता था। कभी-कभी कोई वेश्याओं के दर्शन भी कर सकता था। अगर कोई जुआ खेलने का शौकीन था तो उसके लिए इसकी भी व्यवस्था थी। राजा और उसकी सेना के हाथियों व रथों पर सवार जलूसों को सड़कों पर निकालते हुए देखा जा सकता था। शहर के कुछ भागों में सेना को धनुर्विद्या सीखते हुए, हाथियों को परीक्षण देते हुए और युद्ध कला में कौशलता को बढ़ाते हुए देखा जा सकता था। गेरूवे व सफेद वस्त्रों को धारण किए साधुओं के झुंड के झुंड नगर में घूमते हुए देखे जा सकते थे और कभी-कभी ये साधु नग्न अवस्था में भी घूमते रहते थे। ये घुमक्कड़ संन्यासी इसी समय में उदित विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित थे और इनको जो उपवन या बाग दिए गए थे उनमें रहते हुए इनको विभिन्न धार्मिक सवालों पर उपदेश देते हुए देखा जा सकता था। श्रोताओं की सभा में विभिन्नता होती थी। कभी-कभी यह सभा केवल धनी व्यापारियों और राजकुमारों की होती थी और कभी-कभी उन लोगों की होती जो समाज के निर्धनतम वर्ग से आते थे। धनी लोग इन सन्यासियों को खुल कर धन देते थे। उपवनों एवं धार्मिक स्थलों पर इन संन्यासियों का पूर्ण अधिकार होता था और ये भी नगर के जीवन का एक अंग थे।

10.6.4 विनिमय की वस्तुएँ

बाजारों में उपयोगी वस्तुओं की बिक्री एवं खरीदारी बड़े पैमाने पर होती थी। लोगों को लोहे, तांबे, टिन व चांदी आदि धातुओं के बने उपकरणों तथा औज़ारों को खरीदते हुए देखा जा

सकता था। नमक के उपार्जन तथा बेचने के विशेषज्ञ व्यापारियों के गुटों को सड़क के उस टुकड़े पर, जो उनको दे दिया गया था, देखा जा सकता था। काशी के सूती कपड़ों की ओर खरीदने वालों की काफी बड़ी संख्या आकर्षित होती थी। उत्तर-पश्चिम गंधार प्रदेश से आने वाले ऊनी कम्बलों को केवल धनी लोग खरीदते थे। सिन्ध और कम्बोज से आयात होने वाले घोड़ों की भी बिक्री की जाती थी। यहाँ पर उन दिनों केवल समाज के उच्च धनी लोग खरीदार होते थे। शंख से बनी चूड़ियाँ, सोने से बने सुन्दर आभूषण, कंघियाँ, हाथी दांत से निर्मित आभूषण और कीमती पत्थरों की बहुत अधिक माँग कुलीन वर्ग में थी।

समकालीन स्रोत इस ओर भी संकेत करते हैं कि प्रत्येक सामान को अलग सड़क पर बेचा जाता था। जो उसका उत्पादन करते थे या उसको लाते थे वही बेचते भी थे। विभिन्न प्रकार के सामानों को बेचने की कोई दुकान नहीं थी। विभिन्न प्रकार के व्यापारी होते थे, जैसे कि दुकानदार (*अपनिक*), खुदरा *(क्रय-विक्रय)* और धन विनियोक्ता *(सेठी-गहपति)*। धनी लोग सिक्कों का उपयोग करते थे। चांदी का सिक्का शतमन अधिकतम मूल्य का था। उसके बाद *कर्षपण* का महत्व था। *कर्षपण* का महत्त्व था। तांबे के माशा और *ककणि* कम मूल्य के सिक्के थे। नगरों की इस चमक-दमक के बीच गरीब लोगों का वह वर्ग था जिसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। एक बौद्ध *जातक* कथा में वर्णन है कि एक व्यापारी की बेटी के द्वारा एक चण्डाल (जो लोग जाति व्यवस्था से बाहर थे) को देखने पर प्रदूषण के डर से उसकी आंखों को धोया गया। नगरों के उदय के साथ-साथ धोबियों, मेहतरों, भिखारियों तथा भंगियों का वर्ग भी अस्तित्व में आया। भंगियों और शवों को दफनाने वालों की सेवाएँ शहरों के लिए आवश्यक थीं। फिर भी ये लोग समाज के सबसे निर्धन तथा अधिकार-विहीन लोग थे। जाति व्यवस्था से बहिष्कृत ये लोग नगरों के बाहर अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार की किसी आशा के बिना रहते थे। समुदायिक समाज के पतन और शासकों द्वारा उत्पादन पर बढ़ती हुई माँगों के कारण भिखारियों के गुटों की संख्या बढ़ी। एक कहानी में बताया गया है कि दिन में राजा के लोग गाँव को लूटते थे और रात को लुटेरे।

10.7 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नगर

हमें जो साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें आगामी शताब्दियों में बहुत से परिवर्तन हुए और उनमें कुछ न कुछ जोड़ा गया। हमें जो लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं वे एक हज़ार वर्ष से भी कम पुराने हैं। इसलिए इन ग्रंथों में से प्रारंभिक काल के इतिहास के विवरण को बाद के काल के विवरण को अलग करना कठिन है। जो सूचनायें हमें उत्खनन से प्राप्त हुई हैं वे इस काल के नगरों के विषय में कुछ अधिक ठोस आधार प्रदान करती हैं। क्योंकि पुरातात्विक आंकड़ों को अधिक निश्चितता के कारण कालबद्ध किया जा सकता है। यह भी है कि साहित्यिक विवरणों में नगरों की ऐश्वर्यता एवं चमक-दमक को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। उत्खनन से प्राप्त सामग्री में इस प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं होता है। अब हमें यह देखना है कि उत्खनन से प्राप्त विवरण से किस प्रकार की सूचना प्राप्त हुई है।

700 बी.सी.ई. के लगभग, अयोध्या, कौशाम्बी और श्रावस्ती जैसी छोटी बस्तियाँ अस्तित्व में आईं। इन बस्तियों में रहने वाले लोग विभिन्न प्रकार की मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। इन मृद्भाण्डों में एक विशेष मृद्भाण्ड जबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, वह है चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (PGW)। ऊपरी गंगा घाटी में रहने वाले निवासी इसका इस्तेमाल कर रहे थे। मध्य गंगा घाटी के अन्य स्थानों में लोग काले-और-लाल मृद्भाण्ड का प्रयोग कर रहे थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई के आसपास इस सारे क्षेत्र के निवासी इस श्रेणी के मृद्भाण्डों के साथ-साथ एक विशेष प्रकार के चमकदार सतह वाले मृद्भाण्डों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार के मृद्भाण्ड को उत्तरी काली पालिश वाले मृद्भाण्ड (NBPW) कहते हैं। वह उच्च किस्म के मृद्भाण्ड इस बात का प्रमाण है कि छठी शताब्दी बी.सी.ई. में गंगा घाटी के नगरों में व्यापक

सांस्कृतिक समरूपता थी। शायद इन मृद्भाण्डों का कुछ ही स्थलों पर निर्माण होता था और दूसरे स्थलों को इसका व्यापारियों के द्वारा निर्यात किया जाता था। पुरातात्विक स्थलों पर जो दूसरी वस्तु प्रकट होनी प्रारम्भ होती है वह इस काल के सिक्के हैं। प्राचीन भारत में इस काल में प्रथम बार सिक्कों का प्रयोग होना शुरू हुआ। चांदी और तांबे के सिक्कों का निर्माण होता था और इन सिक्कों को सामान्यतः आहत सिक्के कहा जाता है। इन पर एक ओर विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को चिन्हित किया गया है। प्रारम्भ में इन सिक्कों को संभवतः व्यापारियों ने जारी किया। सिक्कों की प्रणाली के लागू हो जाने के कारण संगठित व्यापार को बढ़ावा मिला इसके अलावा, आहत सिक्कों की भांति ढलवा ताम्र-लौह के सिक्कों पर इस समय कुछ नहीं लिखा था।

वस्तु विनिमय व्यवस्था में दो व्यक्ति अपने उत्पाद के माध्यम से विनिमय करते हैं। मानों कि किसी व्यक्ति के पास गाय है जिसके विनिमय से वह भूसा खरीदना चाहता है और एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास भूसा है लेकिन वह भूसे के बदले चावल खरीदना चाहता है। अतः इस मामले में वस्तु विनिमय को लागू नहीं किया जा सकता। जबकि सिक्के, खरीदने और बेचने के लिए एक निश्चित मूल्य के माने जाते थे। कोई भी वस्तु खरीदने के लिए गाय ले जाने की अपेक्षा सिक्कों को ले जाना भी अधिक सरल था। धन प्रणाली के लागू हो जाने के कारण अन्ततः *महाजन* वर्ग का उद्भव हुआ।

इस समय की बड़ी बस्तियों में घर बनाने के लिए पक्की ईंटों का प्रयोग होने लगा था। गंदे पानी के निस्तारण के लिए उपयोग किये जाने वाले एक के ऊपर एक जार या टेराकोटा के छल्ली से बने गड्ढे भी बनाये गये हैं। यह एक नियोजित तरीके की ओर संकेत करते हैं। इससे पहले काल में लोग कच्ची ईंटों से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे। बड़े आकार की बस्तियों के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आबादी का घनत्व बढ़ रहा था। कुछ स्थानों से नाली तथा मल स्थलों के भी प्रमाण मिले हैं।

आहत सिक्के, कोसल *कर्षपण*, लगभग 525-465 बी.सी.ई.। श्रेय : क्लासिकल न्यूमसमैटिक ग्रुप। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/Karshapana#/media/File:Kosala_Karshapana.jpg)।

उत्खनन से जो सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि इस काल के लिए साहित्य में नगरों से संबंधित जो विवरण है उसको काफी बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है या फिर वह बाद के समय के नगरों के लिए है। नगरों के विषय में प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि किसी भी नगर को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था, जबकि साहित्यिक विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के नगरों को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था। तक्षशिला शहर के विशाल स्तर पर किए गए उत्खनन से स्पष्ट होता है कि इस नगर को शायद आठवीं-सातवीं शताब्दी

बी.सी.ई में बसाया गया था। योजनाबद्ध नगर बसाने का काम दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में ही अस्तित्व में आया। इसी तरह साहित्य में बार-बार वर्णन आता है कि अयोध्या और वैशाली जैसे नगरों का क्षेत्रफल 30 से 50 वर्ग किलोमीटर था। लेकिन उत्खनन से पता चलता है कि इनमें से कोई भी नगर 4 से 5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल से अधिक नहीं था। इसी प्रकार, विशाल महलों एवं चौड़ी सड़कों का वर्णन भी अतिरंजित मालूम होता है। कौशाम्बी के महल की संरचना के अतिरिक्त छठी शताब्दी बी.सी.ई. के अन्य किसी भी महल की संरचना का विवरण नहीं मिलता। अधिकतर घर सामान्य झोंपड़ियों की भांति थे। इस काल का कोई ऐतिहासिक भवन नहीं मिलता। प्रारंभिक काल के अनेक नगरों जैसे कि उज्जैन, कौशाम्बी, राजगृह आदि की किलेबंदी की गई थी। ऐसा लगता है कि युद्ध के भय से किलेबंदी की जाती थी। नगरों की किलेबंदी से यह भी लगता है कि इसके द्वारा नगरीय जनता का आबादी के शेष भाग से स्पष्ट विभाजन हो जाता था। इससे जनता पर राजा सरलता के साथ नियंत्रण कर सकता था। इसके द्वारा साहित्य में वर्णित उस तथ्य की भी पुष्टि होती है जिसमें *पुर* का तात्पर्य बस्ती की किलेबंदी से था और जो प्राचीन भारत में प्रारंभिक नगरीय बस्तियों के रूप थे।
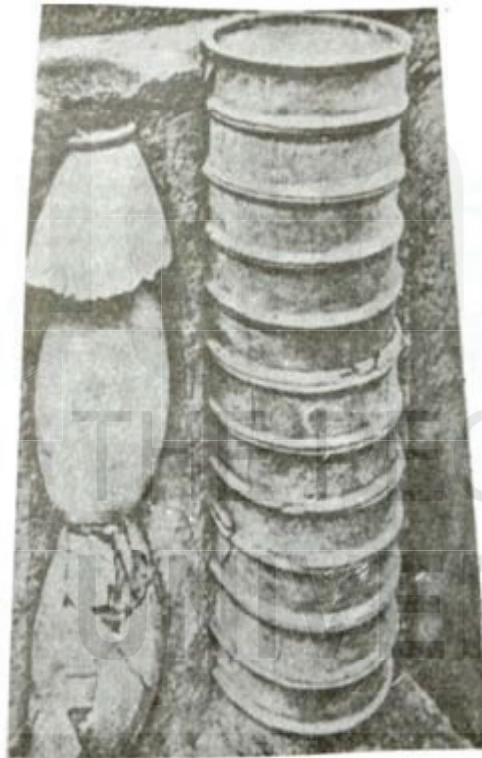
प्राचीन नगरों से प्राप्त पानी सोखने के गड्ढे। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4, इकाई-15।

अब ऐसा विश्वास किया जाता है कि विशाल महलों के साथ सम्पन्न नगर मौर्य काल के दौरान अस्तित्व में आये। हमें जो साहित्य उपलब्ध है उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि मौर्य काल के नगरों को स्तर मानकर उससे पूर्व के काल के नगरों का वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तरों पर निशान लगाइए :

   नगरीकरण के इतिहासकारों के लिए हरिश्चन्द्र की कहानी का महत्त्व निहित है :

   क) पुत्र रोहित की अवज्ञा में

   ख) सुनेहसेप की खरीदारी में

   ग) राजा हरिश्चन्द्र के शहर में नहीं बल्कि गाँव में रहने के तथ्य में

   घ) भगवान वरूण तथा इन्द्र द्वारा खेली गई विभिन्न भूमिकाओं में

2) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (X) का निशान लगाइए :

   i) आबादी की संख्या और बस्ती के आधार पर ग्रामीण केंद्र से अलग नगर केंद्र की पहचान की जा सकती है।

   ii) लोहे के औज़ारों के बढ़ते प्रयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की।

   iii) चावल उत्पादक मध्य गंगा-घाटी की तुलना में गेहूँ उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी में अधिक खाद्य अनाजों का उत्पादन करती थी।

   iv) लोहे के हथियारों के निर्माण से शासक वर्गों की ताकत में वृद्धि हुई है।

3) समकालीन साहित्य में वर्णित नगरों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

4) पुरातात्विक साक्ष्य नगरों के विषय में क्या बताते हैं? पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

5) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (✓) या गलत (X) का चिह्न लगाइए :

   i) जैसे वृक्षों के नाम पर नगरों का नामकरण होता था उसी प्रकार राजाओं के नाम पर भी नगरों के नामकरण की परंपरा थी। (   )

   ii) प्राचीन ग्रंथों से नगरों का पूर्णतया सही विवरण प्राप्त नहीं होता। (   )

   iii) नगरों के अस्तित्व में आने से भिखारियों, भंगियों और अन्य दरिद्र लोगों के गुट समाप्त हो गए। (   )

   iv) सिक्कों की प्रणाली लागू हो जाने से वस्तु विनिमय समाप्त हुआ तथा संगठित व्यापार सुगम हुआ। (   )

10.8 बस्तियों के प्रकार-I : *जनपद*

समकालीन ग्रंथों से सुव्यवस्थित भौगोलिक क्षेत्रों में समाज तथा अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों की ओर संकेत मिलता है। उस समय के साहित्य में बस्तियों की विभिन्न इकाइयों का उल्लेख मिलता है। इनमें *महाजनपद, जनपद, नगर, निगम, ग्राम* आदि मुख्य हैं। आइए, हम पहले *जनपदों* के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

जनपद, जिसका शाब्दिक अर्थ है ''जहाँ लोग अपने पैर रखते हैं'', इस युग में ग्रंथों में अक्सर उल्लेखित है। आपको *जन* का अर्थ याद होगा। वैदिक समाज में इसका अर्थ होता था ''एक कुल के सदस्य''। आरंभिक वैदिक काल में *जन* के सदस्य पशु-पालक समूह होते थे जोकि चारागाहों की तलाश में विचरण किया करते थे। लेकिन उत्तरकालीन वैदिक चरण में *जन* सदस्यों ने खेती करना आरंभ किया और स्थायी रूप से बसने लगे। यह खेतिहर बस्तियाँ

जनपद कहलाती थीं। आरंभिक चरणों में इन बस्तियों का नाम क्षेत्रों में बसे प्रभुत्ववान क्षत्रिय वंशों के नाम पर रखा जाता था। उदाहरण के लिए दिल्ली एवं ऊपरी उत्तर प्रदेश कुरु एवं पांचाल *जनपद* कहे जाते थे, जो प्रभुत्ववान क्षत्रिय वंशों के नाम थे। उनके एक स्थान पर बस जाने पर खेती का विस्तार, विशेषकर लोहे की कुल्हाड़ियों एवं हल के फलों के इस्तेमाल द्वारा आरंभ हो जाता था। इन लोहे के औज़ारों से पूर्व-शताब्दियों के किसानों के ताम्र एवं पत्थर की कुल्हाड़ियों की अपेक्षा अब अधिक सुविधा से जंगलों की सफाई की जा सकती थी तथा खुदाई अधिक गहरी हो सकती थी। मध्य गांगेय घाटी, जो कि प्रयागराज के पूर्व की ओर का क्षेत्र है, धान की फसल के लिए उपयुक्त थी। धान की प्रति एकड़ की उपज की दर गेहूँ की तुलना में कहीं अधिक है। इसके कारण धीरे-धीरे खेती एवं जनसंख्या में बढ़ोत्तरी अवश्यंभावी थी। वंशों के मुखियाओं के पास एक-दूसरे से युद्ध के दौरान बचाव तथा लूट-पाट के लिए काफी कुछ था। अब पशु धन के अतिरिक्त खेतिहर उत्पादन भारी मात्रा में मौजूद था। बलि समारोहों को भव्य रूप देने के उद्देश्य से भी लूट-खसोट की उनकी इच्छाएँ तीव्र होने लगीं थीं। कृषि विस्तार, युद्ध तथा विजया की प्रक्रिया में वैदिक जनजातियाँ एक दूसरे के तथा अनार्य जनसंख्या के सम्पर्क में आईं। इसके कारण विस्तृत क्षेत्रीय इकाइयों का गठन आरंभ हो गया। उदाहरण के लिए पांचाल पाँच छोटी-छोटी जनजातियों के विलय का प्रतिनिधित्व करते थे।

कुछ *जनपद* छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक आते-आते *महाजनपदों* के रूप में विकसित हो गए। यह *जनपदों* की आंतरिक सामाजिक-राजनैतिक संरचना में होने वाले निरंतर परिवर्तनों का परिणाम था। इनमें से एक मुख्य परिवर्तन खेतिहर समुदायों का फैलाव था। इसकी जानकारी इस तथ्य से प्राप्त होती है कि समकालीन ग्रंथों में खेतिहर जमीन को महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति बताया गया है। इन ग्रंथों में चावलों की किस्मों पर उतने ही विस्तार से व्याख्या की गई है, जितने विस्तार से वैदिक ग्रंथों में गाय की किस्मों पर की गई है। आइए अब हम इन परिवर्तनों की ओर दृष्टिपात करें।

10.9 नए समूहों का उदय

एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन समाज में नई श्रेणियों एवं समूहों का उदय था। आइए इसे विस्तार से देखें।

10.9.1 *गहपति*

गहपति भूसम्पन्न पारिवारिक इकाई का मालिक होता था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण *गहपति* के पास इतनी ज़मीन थी कि उसे ज़मीन की जुताई के लिए पाँच सौ हलों की आवश्यकता होती थी। उत्तर वैदिक समाज में *"विश"* खेतिहर गतिविधियाँ सम्पन्न करता था। भूमि कुल की सामूहिक सम्पत्ति होती थी। खेतिहर समाज के उदय के साथ ज़मीन सम्पत्ति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गई। क्षत्रिय एवं ब्राह्मणों के शासक कुलों ने इसे अपने नियंत्रण में कर लिया। इन समूहों से *गहपति* का उदय हुआ जो कि सामूहिक मिलकियत के बिखराव और व्यक्तिगत भूस्वामी के उदय का प्रतीक था। गहपति अपनी ज़मीन पर फसल उगाने का काम *दास, कर्मकार* तथा शूद्रों द्वारा करवाते थे। युद्ध के दौरान बंदी बनाए गए लोग दास बना लिए जाते थे। जनजातियों के गरीब सदस्य भी मज़दूर *(कर्मकार)* बन जाते थे। अशिक्षित मजदूरों का प्रयोग एक ऐसे वंचित वर्ग के उदय का सूचक था जिसका श्रम अतिरिक्त खाद्य उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता था। खेतिहर उत्पादन *शूद्र* अथवा *दास* को न मिल कर *गहपति* को मिलता था।

10.9.2 व्यापारी

एक महत्त्वपूर्ण व्यापारी वर्ग का उदय संभवतः *गहपति* वर्ग से ही हुआ। उत्पादनों को बेचकर इन्होंने कुछ धन इकट्ठा कर लिया, जिसे व्यापार के लिए इस्तेमाल किया गया। बौद्ध स्रोतों

में व्यापारियों के लिए एक शब्द, जिसका बार-बार प्रयोग किया गया है, वह *''सेठी'' है* जिसका अर्थ ''जिसके पास सर्वोत्तम हो'' है। इससे यह सिद्ध होता है कि धन का लेन-देन करने वाले व्यक्तियों को समाज में काफी प्रतिष्ठा एवं शक्ति प्राप्त हो गई थी। ब्राह्मणों के ग्रंथों में सामान्यतः व्यापारियों एवं वैश्यों, जोकि व्यापारी वर्ग था, को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। छठी शताब्दी तक व्यापार एवं वाणिज्य आर्थिक गतिविधियों का एक स्वतंत्र क्षेत्र बन चुका था। व्यापारी शहरों में रहते थे। इनके उदय को इस काल में कस्बों एवं शहरों के उदय से जोड़ा जा सकता है। यह व्यापारी काफी विस्तृत क्षेत्र में अपना व्यापार फैलाए हुए थे। विभिन्न प्रदेशों में व्यापार फैलाकर इन्होंने यह संभावना तैयार कर दी कि राजा व्यापारियों द्वारा घूमे गए क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में करने का प्रयास करें। इस प्रकार छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक किसानों एवं व्यापारियों का एक मुक्त वर्ग अस्तित्व में आ गया था। इन्होंने पूर्व स्थिति के विपरीत, स्वयं को कुल के अन्य सदस्यों के साथ अधिशेष खाद्य अथवा धन बाँटे जाने की बाध्यता से मुक्त कर लिया। इस काल में खेती में प्रयुक्त होने वाले मवेशियों, भूमि तथा उसके उत्पादन के रूप में निजि सम्पत्ति एक शक्तिशाली आर्थिक वास्तविकता बन गई।

10.9.3 शासक एवं शासित

सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में विकास के साथ-साथ *महाजनपदों* के राजनैतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। पूर्व काल में *राजा* शब्द का प्रयोग कुल के मुखिया के लिए होता था। उदाहरण के लिए, राम जिनकी किंवदंतियाँ इस युग से जोड़ी जाती हैं, बहुधा *रघुकुल* के राजा कहे जाते हैं जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जो *रघु कुल* अथवा वंश पर शासन करता हो। इसी प्रकार, युधिष्ठिर कुरु राजा कहे जाते हैं। वे अपने वंशों पर शासन करते थे, किन्तु किसी क्षेत्र पर शासन की संकल्पना अभी तक नहीं उभरी थी। जातियों अथवा नातेदारों से कर वसूली सामान्यतः स्वैच्छिक आधार पर सम्पन्न होती थी। राजा एक उदार पिता-तुल्य व्यक्ति समझा जाता था, जिसका कर्त्तव्य वंश की सम्पन्नता सुनिश्चित करना था। उसके पास स्वतंत्र कर वसूली की व्यवस्था अथवा सेना नहीं होती थी। इसके विपरीत, छठी शताब्दी बी.सी.ई. के स्रोतों में राजाओं का उल्लेख राजा के विशिष्ट क्षेत्र में शासन करने, नियमित कर वसूली की व्यवस्था तथा सेना होने के साथ होता है। किसानों (कृषक) जो राजा को कर देते थे तथा एक सेना का उल्लेख मिलता है। जब किसान तथा सेना किसी भी रूप में राजा के सगोत्र नहीं होते थे। अब राजा तथा प्रजा के बीच भिन्नता स्पष्ट हो चुकी थी। प्रजा में गैर-वंशी समूह भी होते थे। सेना के मौजूद होने का अर्थ स्थानीय किसानों पर बलपूर्वक नियंत्रण तथा पड़ोसी राजाओं एवं जनता से निरंतर झगड़े होते रहना था। पूर्वकालीन मवेशियों के लिए छापामारी के स्थान पर अब संगठित धावे बोलकर क्षेत्रों को हड़प लेना तथा किसानों एवं व्यापारियों से बलपूर्वक कर वसूल करना आरंभ हो चुका था। कर वसूली के लिए नियुक्त कर्मचारियों का उल्लेख बार-बार मिलता है। खेतिहर उत्पादन से *भाग* वसूली के लिए *भगदुघ* नाम से एक कर्मचारी होता था। खेतिहर भूमि के सर्वेक्षण के लिए *रज्जुगहक* नाम से एक अन्य कर्मचारी होने का उल्लेख मिलता है। *जातकों* में राजा के अनाज गोदाम में भेजने के लिए राजकर्मियों द्वारा अनाज तोलने का उल्लेख मौजूद हैं। अधिकतर स्थानों पर *महाजनपदों* का नामकरण क्षत्रिय कुल के नाम के आधार पर नहीं होता था। उदाहरण के लिए कोशल, मगध, अवंती तथा वत्स क्षत्रिय वंश के नाम पर आधारित नहीं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक एक नए प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था पनप चुकी थी। पहले जनजाति का मुखिया शत्रु क्षेत्रों पर आक्रमण करके लूट का माल अपने साथियों में बाँट लेता था, लेकिन अब इसके स्थान पर एक राजा आसीन था जिसके पास जाति स्वामिभक्ति से अप्रभावित एक सेना थी। सेना को वेतन किसानों से वसूले गए राजस्व द्वारा किया जाता था। वैदिक मुखियाओं की गौरव एवं बलिदान की इच्छा ने उन्हें वंश परम्परा से अलग कर दिया। जनजातियाँ सुदूर क्षेत्र में युद्ध नहीं कर सकती थी तथा सेना की

आवश्यकता हेतु नियमित कर देना उनके लिए मान्य न होता। राजा के लिए गौरव तथा शक्ति की दृष्टि से यह सब कुछ आवश्यक था। राजा की शक्ति जनजाति के अपने साथियों के बीच धन के बंटवारे पर आधारित नहीं थी। अब राजा की शक्ति संबद्ध वंश समूहों को तोड़ने तथा धनोत्पादन में सक्षम व्यक्तियों एवं समूहों को मान्यता देने पर आधारित थी। इस धन का कुछ हिस्सा कर स्वरूप उत्पादनकर्त्ता से ले लिया जाता था। वंश आधारित समाज में जहाँ कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का संबंधी समझा जाता था, इस प्रकार मुखिया द्वारा मनमाने ढंग से धन ले लेना स्वीकार न किया जाता। अब मुखिया के स्थान पर आसीन राजा किसानों एवं व्यापारियों से कर वसूल करता था तथा उन्हें आंतरिक एवं बाह्य हमलों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 2

1) छठी शताब्दी बी.सी.ई. की भौतिक संस्कृति के विषय में इतिहासकारों ने कि प्रकार पुरातात्विक तथा साहित्यिक प्रमाणों को संयोजित किया है? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) इस युग में उभरने वाले प्रत्येक नए समूह पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (X) का चिह्न लगाइए :

i) छठी शताब्दी बी.सी.ई. के लोग लोहे के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थे।

ii) समकालीन ग्रंथों के अनुसार उस काल के समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो रहे थे।

iii) *जनपद* मूलतः खेतिहर बस्तियाँ थीं, जिनका नामकरण उक्त क्षेत्र के क्षत्रिय वंशों के नाम पर होता था।

iv) कुछ *महाजनपद* शीघ्र *जनपद* के रूप में विकसित हो गए।

10.10 बस्तियों के प्रकार-II : *महाजनपद*

नई राजनैतिक-भौगोलिक इकाइयाँ, जिनमें *गहपति* व्यापारी तथा शासक एवं शासित के बीच संबंध के नए प्रतिमान दिखाई पड़े, *महाजनपद* कहलाए। *महाजनपद* का तात्पर्य मगध, कोशल आदि के विशाल *जनपदों* से था जिनपर शक्तिशाली राजा अथवा गणसंघ वर्ग राज करते थे। दरअसल छठी शताब्दी बी.सी.ई. में कई *महाजनपद* पूर्व काल में स्वायत्त *जनपदों* को मिलकर बने। उदाहरण के लिए कौशल *महाजनपद* में शाक्य, काशी तथा मगध *महाजनपद* में इसके

साम्राज्य बनने से भी पहले अंग, वज्जी आदि *जनपद* शामिल हो चुके थे। समकालीन बौद्ध ग्रंथों में नए समाज का प्रतिबिंबन जीवक की कथा में देखा जा सकता है। इतिहासकार इन कथाओं को उस युग के मानवों की आशाओं, अभिलाषाओं, संबंधों तथा सामाजिक माहौल को समझने के लिए पढ़ते हैं।

10.10.1 जीवक की कथा

प्रसिद्ध वैद्य जीवक की कथा हमें बुद्ध के समय से प्राप्त होती है। राजगृह (राजगीर, आज का पटना) शहर में अभय नामक राजकुमार रहता था। उसने सड़क पर एक परित्यक्त शिशु देखा। वह उसे घर ले आया और दाई को बच्चे की देखभाल करने का आदेश दिया। बच्चे का नाम जीवक पड़ा।

जब जीवक बड़ा हुआ तो उसने सोचा कि जीविका के लिए उसे क्या करना चाहिए। उसने वैद्य बनने का निर्णय लिया। उन दिनों तक्षशिला शिक्षा का प्रसिद्ध केंद्र हुआ करता था। जीवक ने आयुर्वेद सीखने के लिए वहाँ जाने का निर्णय लिया।

जीवक तक्षशिला में सात वर्षों तक रहा। वहाँ उसने प्रसिद्ध आयुर्वेदविद् की देख-रेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा के अन्त में उसके गुरु ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। उसने जीवक से कहा कि वह तक्षशिला के चारों ओर घूमकर कुछ ऐसी जड़ी-बूटियाँ लाए जोकि दवाओं के किसी काम की न हो। जीवक ने जाकर बड़ी सावधानीपूर्वक ऐसी जड़ी-बूटियाँ ढूंढ़नी शुरू की, जो कि दवाओं की दृष्टि से बेकार हो। उसके वापस आने पर उसके गुरु ने उससे पूछा, ''तुम्हें कितनी जड़ी-बूटियाँ मिलीं?'' जीवक ने कहा, ''श्रीमान मुझे एक भी ऐसी जड़ी-बूटी नहीं मिली जो किसी औषधि के काम न आ सके।'' गुरु अति प्रसन्न हुए और कहा कि उसकी शिक्षा अब पूरी हो गई है।

जीवक राजगृह की ओर चल पड़ा। अभी वह रास्ते तक ही पहुँचा था कि उसका सारा धन समाप्त हो गया। वह काम खोजने में लग गया। उसे पता चला कि एक धनी व्यापारी की पत्नी पिछले सात वर्षों से काफी बीमार है। जीवक ने उसे ठीक कर दिया। व्यापारी ने जीवक को काफी सारा धन दिया। इस प्रकार जीवक राजगृह पहुँचा। राजगृह में राजा बिम्बसार का निजी वैद्य बन गया। बिम्बसार जीवक की विद्या से इतना प्रभावित हुआ कि वह जीवक को बुद्ध के इलाज के लिए भेजने लगा। इस प्रकार जीवक बुद्ध के संपर्क में आया। उसने बौद्ध भिक्षुओं को काफी भेंट दी।

अब आप इस कथा-सार को आरंभिक वैदिक समाज के घटनाक्रम से तुलना कीजिए। मवेशी पालने, बलि चढ़ाने तथा पुरोहितों का कहीं उल्लेख नहीं है। कहानी विकसित शहरी बस्तियों की ओर संकेत करती है तथा कथा के मुख्य पात्र हैं एक बच्चा जो कि वैद्य बनना पसंद करता है, व्यापारी *(श्रेष्ठिन)*, एक राजा (बिम्बसार) तथा नए दर्शन का प्रवक्ता बुद्ध। आप भौगोलिक क्षेत्र पर दृष्टि डालें तो पाएँगे कि आरंभिक वैदिक आर्य चारागाहों की तलाश में पंजाब के मैदानों में भटक रहे थे। जीवक बिहार से लेकर उत्तर-पश्चिमी पंजाब की सीमा तक यात्रा करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आयुर्वेद विद्या सीखने के लिए उसने दो हज़ार किलोमीटर से अधिक रास्ता तय किया। नई बस्तियाँ, नए व्यवसाय तथा नए मार्ग परिवर्तित ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रतिमान हैं।

जीवक बस्तियों की एक नई व्यवस्था, शहर में रहा। शहर सम्पन्न गाँवों के आधार पर उदित हुए। गाँव *महाजनपदों* के सामाजिक-राजनैतिक संगठन की मूल इकाई थे। अतः आइए अब हम छठी शताब्दी बी.सी.ई. के गाँवों पर एक दृष्टि डालें।

10.10.2 गाँव

महाजनपदों में मूल बस्तियों की इकाइयाँ गाँव थी (जो कि पाली एवं प्राकृत में संस्कृति के *ग्राम* शब्द का समानार्थी है और इसका अर्थ भी गाँव है)। आपको आरंभिक वैदिक युग के ग्राम याद होंगे। यह ग्राम लोगों की चलती-फिरती इकाइयाँ होती थीं और जब दो गाँव पास पहुँच जाते थे तो संग्राम (जिसका शाब्दिक अर्थ गाँवों का एक दूसरे के पास आना है) अथवा युद्ध होता था। चलती-फिरती इकाइयाँ होने के कारण जब दो शत्रुता रखने वाले ग्राम मिलते थे तो एक-दूसरे के मवेशी छीनने के प्रयास करते थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई. के गाँव ऐसी मानवीय बस्तियाँ थीं, जहाँ के लोग खेती करते थे (यह पशुपालन से खेतिहर समुदाय में परिवर्तन की ओर संकेत करता है)। गाँव छोटे और बड़े, दोनों ही प्रकार के होते थे, जहाँ एक परिवार भी बस सकता था और कई परिवार एक साथ भी। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार एक ही गोत्र से जुड़े होते थे और सारा गाँव एक-दूसरे से नातेदारी से जुड़ा होता था। किन्तु बड़े पैमाने पर ज़मीन रखने वाले परिवारों के उदय तथा उनके दास, *कर्मकार* तथा *पोरिस* रखने के साथ ही गैर-सगोत्री गाँव अस्तित्व में आए। भूस्वामित्व एवं विभिन्न प्रकार के काश्तकारी अधिकार के भी उल्लेख मिलते हैं। *कसक* तथा *क्षत्रिका* शब्दों का प्रयोग *शूद्र* जाति के आम किसानों के लिए होता था। ग्राम नेता *गामिणी* कहे जाते थे। सिपाहियों, हाथियों तथा अश्व प्रशिक्षकों एवं मंच प्रबंधकों को भी गामिणी कहा जाता था। शिल्प में विशेषज्ञता में वृद्धि के प्रमाण गाँवों के पशु-पालकों, लोहारों तथा लकड़हारों के गाँवों के उल्लेखों से प्राप्त होते हैं। कृषि के अतिरिक्त अन्य कलाओं में गाँवों द्वारा विशिष्ट कौशल प्राप्त करना बढ़ते हुए व्यापार तथा सम्पन्न अर्थव्यवस्था का सूचक है। इसका कारण यह है कि जो ग्रामीण स्वयं अन्न नहीं उगाते थे, वे अन्य ग्रामीणों से अन्न प्राप्त करते रहे होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुओं का परस्पर विनिमय जन-साधारण के आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। कलाओं में उनकी विशिष्ट दक्षता से भी इस दिशा में संकेत मिलता है कि उन शिल्पकारों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की काफी माँग रही होगी।

10.10.3 कस्बे और शहर

इस काल में कई प्रकार की बस्तियों के रूप में राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा नियंत्रित किन्तु विजातीय जनसंख्या वाले कस्बों एवं शहरों का उदय हुआ। यह इकाइयाँ *पुर, निगम* तथा *नगर* के रूप में अलग-अलग प्रकार से उल्लेखित की जाती रही हैं। इन बस्तियों के बीच अंतर स्पष्ट नहीं है। यह कस्बे और शहर गाँवों की अपेक्षा काफी बड़े हुआ करते थे। समकालीन साहित्य में अयोध्या तथा वाराणसी जैसे शहरों का उल्लेख मिलता है, जिनका क्षेत्रफल तीस वर्ग किलोमीटर से पचास वर्ग किलोमीटर के बीच बताया गया है। यह तथ्य बढ़ा-चढ़ाकर बताए गए हैं क्योंकि इन शहरों की खुदाई से इस काल में साधारण बस्तियाँ होने की जानकारी मिलती है। किसी भी काल में यह क्षेत्रफल पाँच वर्ग किलोमीटर से अधिक नहीं था। इतिहास के इस चरण को उत्तर काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड जैसे उत्कृष्ट बर्तनों का इस्तेमाल करने वाली इन बस्तियों से है। इन बस्तियों में व्यापार तथा जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होती रही। कौशाम्बी, उज्जैनी, राजघाट (वाराणसी) तथा राजगीर शहरों के चारों ओर सख्त किलेबंदी के प्रमाण मिले हैं। साहित्य में मिले उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शहरों का उदय शक्ति के केंद्र तथा *महाजनपद* पर नियंत्रण के रूप में परिलक्षित हुआ। राजा शहरों से शासन करते थे। नवोदित व्यापारी वर्ग, विशेषकर सिक्के का प्रयोग आरंभ होने के बाद, इन्हीं केंद्रों में रहकर व्यापार नियंत्रित करते थे।
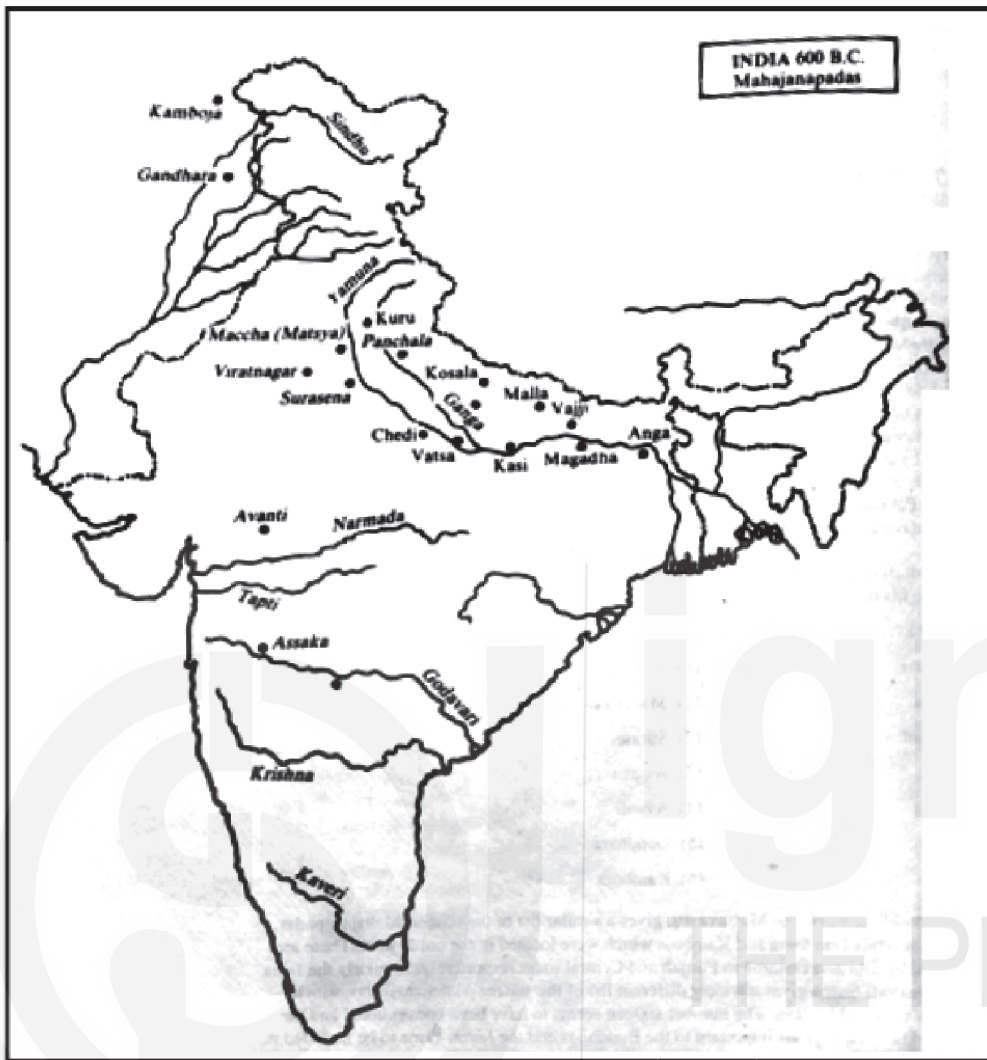
10.11 सोलह *महाजनपद*

महाजनपद। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4, इकाई-14।

पिछले उप-भाग में हमने छठी शताब्दी में विद्यमान बस्तियों की मूल इकाईयों के साहित्यिक तथा पुरातात्विक प्रमाणों पर चर्चा की। अब हम प्राचीन साहित्य में सोलह *महाजनपदों* के उल्लेखों की चर्चा करेंगे। बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के समय में सोलह *महाजनपदों* के मौजूद होने के उल्लेख मिलते हैं। बौद्ध ग्रंथों में जहाँ भी बुद्ध का उल्लेख आता है वहाँ बार-बार इन *महाजनपदों* की मुख्य बस्तियों का भी उल्लेख मिलता है। इतिहासकारों में बुद्ध के जीवन-काल की तिथियों के प्रति अभी भी मतभेद है। तथापि, यह माना जाता है कि बुद्ध छठी तथा पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. की दोनों शताब्दियों के कुछ भाग में जीवित थे। इसीलिए बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के जीवनकाल के उल्लेखों को इस युग के समाज के प्रतिबिंबन के उद्देश्य से देखा जाता है। *महाजनपदों* की सूची हर ग्रंथ में अलग है। इन विभिन्न सूचियों से हमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों की राजनैतिक एवं आर्थिक दशा पर काफी जानकारी प्राप्त होती है। यह *महाजनपद* हज़ारों गाँव और कुछ शहरों के विलय का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह सोलह *महाजनपद* उत्तरी-पश्चिमी पाकिस्तान से लेकर पूर्वी बिहार तक तथा हिमालय के तराई क्षेत्रों से दक्षिण में गोदावरी नदी तक फैले हुए थे।

बौद्ध ग्रंथ *अंगुत्तर निकाय* जो कि *सुत्त पिटक* का एक भाग है, बुद्ध के समय निम्नलिखित *महाजनपद* होने का उल्लेख करता है :

1)	काशी	7)	चेदि	12)	सुरसेन
2)	कोशल	8)	वत्स	13)	अस्सक
3)	अंग	9)	कुरू	14)	अवंति
4)	मगध	10)	पाँचाल	15)	गंधार
5)	वज्जि	11)	मच्छ (मत्स्य)	16)	कंबोज
6)	मल्ल				

एक अन्य बौद्ध स्रोत, *महावस्तु* में सोलह *महाजनपदों* की ऐसी ही सूची मिलती है। लेकिन इसमें गंधार तथा कंबोज, जो कि उत्तर-पूर्व में स्थित थे, का नाम नहीं है। इसके स्थान पर पंजाब में सिबी तथा मध्य भारत में दर्शन के नाम जोड़े गए हैं। इसी प्रकार जैन ग्रंथ *भगवती सूत्र* सोलह *महाजनपदों* की भिन्न सूची का उल्लेख करता है जिसमें वंग तथा मलय शामिल हैं। सोलह की संख्या पारंपरिक प्रतीत होती है तथा सूची में भिन्नता का कारण यह है कि बौद्ध और जैनों ने अपने-अपने महत्त्व के क्षेत्रों को सूची में शामिल किया होगा। सूचियों से पता चलता है कि मध्य गांगेय घाटी धीरे-धीरे केंद्रीयता प्राप्त कर रही थी क्योंकि अधिकतर *महाजनपद* इन्हीं क्षेत्रों में स्थित थे। आइए इन *महाजनपदों* के इतिहास एवं भूगोल पर एक दृष्टि डालें।

1) काशी

सोलह *महाजनपदों* में से काशी आरंभ में सबसे शक्तिशाली *महाजनपद* प्रतीत होता है। आज के वाराणसी जिले में तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित इस *महाजनपद* की राजधानी वाराणसी को, जो गंगा तथा गोमती के *संगम* पर स्थित है, भारत का सबसे मुख्य शहर बताया है।

यहाँ की भूमि अत्यधिक उपजाऊ थी। काशी सूती कपड़ों तथा घोड़ों के बाजार के लिए विख्यात था। बनारस के रूप में पहचाने गए राजघाट स्थान की खुदाई में छठी शताब्दी बी.सी.ई. में शहरीकरण के कोई प्रभावपूर्ण प्रमाण नहीं मिले हैं। एक मुख्य नगर के रूप में इसका उदय 450 बी.सी.ई. के आस-पास हुआ होगा। फिर भी बौद्ध भिक्षुओं के गेरुए वस्त्र जिन्हें संस्कृत में काशय कहा जाता था, काशी में बनाए जाते थे। इससे बुद्ध के समय में काशी के कपड़ा उत्पादक केंद्र और बाजार के रूप में उदित होने का संकेत मिलता है।

काशी के कई राजाओं द्वारा कौशल एवं अन्य राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उल्लेख मिलते हैं। रुचिकर प्रसंग यह है कि राम की कहानी का प्राचीनतम् वृतांत *"दशरथ जातक"* दशरथ, राम आदि को अयोध्या के बजाए काशी का राजा उल्लिखित करता है। जैन सम्प्रदाय के तेइसवें गुरु (तीर्थंकर) पार्श्व के पिता को बनारस का राजा बताया गया है। बुद्ध ने अपना पहला उपदेश बनारस के निकट सारनाथ में दिया। इस प्रकार, प्राचीन भारत के तीनों मुख्य धर्म अपना सम्बन्ध बनारस से जोड़ते हैं। लेकिन बुद्ध के काल तक कोशल ने काशी *महाजनपद* पर कब्जा कर लिया था और काशी, मगध एवं कोशल के बीच युद्ध का कारण बना हुआ था।

2) कोशल

कोशल *महाजनपद* पश्चिम में गोमती से घिरा हुआ था। इसके पूर्व में सदनीर नदी बहती थी, जो इसे विदेह *जनपद* से अलग करती थी। इसके उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ तथा दक्षिण में स्यनदिका नदी बहती थी। साहित्यिक प्रमाण बताते हैं कि कोशल का उदय कई छोटी-छोटी इकाइयों एवं वंशों के सामंजस्य से हुआ। उदाहरण के लिए हम जानते हैं कि कपिलवस्तु के शाक्य कौशल के नियंत्रण में थे। *मझिम निकाय* में बुद्ध स्वयं को कोशल का निवासी बताते हैं। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि कोशल के राजा विदुधब ने शाक्यों

को नष्ट कर दिया था। जिसका अर्थ यह हुआ कि शाक्य वंश कोशल के नाममात्र नियंत्रण में था। नवोदित राजतंत्र ने केंद्रीकृत नियंत्रण स्थापित करके शाक्यों की स्वायत्तता नष्ट कर दी थी। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में मगध के शासकों में जिन राजाओं का उल्लेख है वे हिरण्यनभ, महाकोशल, प्रसेनजित तथा सुद्रोदन हैं। इन राजाओं के बारे में अयोध्या, साकेत, कपिलवस्तु अथवा श्रावस्ती से शासन करने का अनुमान है। संभवतः छठी शताब्दी बी.सी.ई. के आरंभ में कोशल का नियंत्रण कई छोटे-छोटे कबीलायी सरदारों के हाथ में था जो छोटे-छोटे कस्बों में शासन करते थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई. के अंतिम वर्षों में प्रसेनजित तथा विदुधब जैसे राजाओं ने सभी अन्य कबीलाई सरदारों को अपने नियंत्रण में कर लिया। ये श्रावस्ती से शासन करते थे। इस प्रकार तीन बड़े शहरों – अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती – को अपने नियंत्रण में लेकर कोशल एक सम्पन्न राज्य हो गया। कोशल ने काशी तथा उसके क्षेत्र पर भी कब्जा कर लिया। कोशल के राजा ब्राह्मणवाद तथा बौद्ध मत, दोनों को प्रोत्साहन देते थे। राजा प्रसेनजित बुद्ध का समकालीन तथा मित्र था। परवर्ती चरण में कोशल उदीयमान मगध साम्राज्य का सबसे कट्टर शत्रु बन गया।

3) अंग

अंग में दक्षिण बिहार के भागलपुर तथा मुंगेर जिले शामिल थे। संभव है कि इसका विस्तार उत्तर की ओर कोसी नदी तक हुआ हो और इसमें पुर्णिया जिले के कुछ भाग भी जुड़ गए हों। वह मगध के पूर्व तथा राजमहल पहाड़ियों के पश्चिम में स्थित था। अंग की राजधानी चम्पा थी। यह गंगा तथा चम्पा नदी के *संगम* पर स्थित थी। चम्पा छठी शताब्दी बी.सी.ई. के छः महान नगरों में से एक था। यह अपने व्यापार एवं वाणिज्य के लिए विख्यात था तथा व्यापारी यहाँ से सुदूर पूर्व गंगा पार करके जाते थे। छठी शताब्दी के मध्य में अंग को मगध ने हड़प लिया। भागलपुर के निकट चम्पा में खुदाई के दौरान उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्‌भाण्ड भारी मात्रा में मिले हैं।

4) मगध

मगध दक्षिणी बिहार में पटना तथा गया कि निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित था। इसके उत्तर तथा पश्चिम में क्रमशः सोन तथा गंगा नदियाँ थीं। पूर्व में यह छोटा नागपुर के पठार तक फैला हुआ था। इसके पूर्व की ओर चम्पा नदी बहती थी, जो इसे अंग से अलग करती थी। इसकी राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह कहलाती थी। राजग्रह पाँच पहाड़ियों से घिरा अमेध शहर था। राजगृह की दीवारें भारत के इतिहास में किलेबंदी का प्राचीनतम उदाहरण है। पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. के आस-पास राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर दी गई। इन पर आरंभिक मगध राजाओं की शक्ति की छाप है। ब्राह्मणीय ग्रंथों में मगध की जनता को मिश्रित तथा हीन श्रेणी का बताया गया है। इसका कारण संभवतः यह है कि पूर्व ऐतिहासिक युग में यहाँ के निवासी *वर्ण* व्यवस्था तथा ब्राह्मणीय अनुष्ठान के अनुयायी नहीं थे। इसके विपरीत, इस क्षेत्र में बौद्ध मत का काफी महत्त्व था। बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति इसी क्षेत्र में हुई। राजगृह बुद्ध के प्रिय पड़ाव स्थलों में से एक था। मगध के राजा बिम्बिसार तथा अजातशत्रु उनके मित्र तथा शिष्य थे। तराई चावल की खेती के लिए उपयुक्त उपजाऊ खेतिहर ज़मीन, दक्षिणी बिहार में कच्चे लोहे के भंडारे पर नियंत्रण तथा अपेक्षाकृत खुली सामाजिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि ने मगध को उत्तरकालीन इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण राज्य के रूप में प्रस्तुत किया है। गंगा, गंडक तथा सोन नदी के व्यापार मार्गों पर इसके नियंत्रण के कारण इसे काफी राजस्व प्राप्त हो जाता था। कहा जाता है कि मगध के राजा बिम्बिसार ने 80,000 गाँवों के *गामिनियों* की एक सभा बुलाई थी। हो सकता है कि संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई हो, लेकिन इससे यह पता लगता है कि बिम्बिसार के प्रशासन में गाँव संगठन की इकाई के रूप में उभर आए थे। *गामिनी* उसके नातेदार नहीं बल्कि गाँवों के मुखिया तथा प्रतिनिधि थे। इस प्रकार उसकी शक्ति उसके संबंधियों की कृपा पर आधारित नहीं थी। अजातशत्रु ने सिंहासन

पर कब्ज़ा करके बिम्बिसार को यातना देकर मार डाला। वैशाली के वज्जि पर मगध के नियंत्रण का विस्तार होने के साथ एक साम्राज्य के रूप में मगध की सम्पन्नता बढ़ती गई। इसकी परिणति चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में मौर्य साम्राज्य के रूप में हुई।

5) **वज्जि**

बिहार के वैशाली जिले के आस-पास बसा वज्जि (जिसका शाब्दिक अर्थ पशु-पालक समुदाय है) गंगा के उत्तर में स्थित था। यह *महाजनपद* उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। गंडक नदी इसे कोशल से अलग करती थी। पूर्व उल्लेखित *महाजनपदों* के विपरीत वज्जियों का राजनैतिक संगठन भिन्न था। समकालीन ग्रंथों में उन्हें गणसंघ कहा जाता था। जिसकी व्याख्या गणतंत्र या कुल तंत्रीय राज्य के रूप में की गई है। इस युग के गणसंघ किसी एक सर्वशक्तिमान राजा द्वारा शासन का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे बल्कि यह शासन क्षत्रिय सरदारों द्वारा संयुक्त रूप से होता था। यह शासक वर्ग, जिसके सदस्य राजा कहे जाते थे, अब गैर-क्षत्रिय समूहों से पृथक् हो गए।

वज्जि आठ कबीलों के संगठन का प्रतीक थे, जिनमें विदेह, लिच्छवी, ज्ञनात्रिक मुख्य हैं। विदेहों की राजधानी मिथिला थी। इसे नेपाल का आधुनिक जनकपुर माना जाता है। यद्यपि रामायण में इसे राजा जनक के साथ जोड़ा गया है, बौद्ध स्रोतों में इसे कबीलायी परंपरा से जोड़ा गया है। प्राचीन भारतीय गणसंघों में सर्वाधिक विख्यात, लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। वैशाली के एक विशाल एवं सम्पन्न शहर होने का अनुमान है। एक अन्य कबीले के रूप में ज्ञनात्रिक वैशाली के उपनगरों की बस्तियों में रहते थे। इसी कबीले में जैन गुरु महावीर का जन्म हुआ। संगठन के अन्य समुदाय उग्र, भोग, कौरव तथा ऐक्षावक थे। वैशाली संभवतः पूरे संगठन का केंद्र था। वे अपने मामले आपसी सभाओं में तय करते थे। एक *जातक* कथा के अनुसार वज्जियों पर अनेक वंशों के सरदार शासन करते थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में यह *महाजनपद* एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बना हुआ था। लेकिन इनके पास न तो सेना थी और न ही इनके पास कृषि राजस्व प्राप्त करने की कोई व्यवस्था थी। माना जाता है कि मगध के राजा अजातशत्रु में इस संगठन को नष्ट कर दिया था। अपने मंत्री वस्सकर की सहायता से उसने वंश के सरदारों में बैर का बीज बोया और उसके बाद लिच्छिवियों पर आक्रमण कर दिया।

6) **मल्ल**

प्राचीन ग्रंथों में उल्लेखित मल्ल एक अन्य क्षत्रिय वंश थे। यह एक गणसंघ था। इस वंश की विभिन्न शाखाएँ थीं, जिनमें से दो का मूल स्थान पावा तथा कुशीनगर था। कुशीनगर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में कसिया क्षेत्र को माना गया है। पावा के क्षेत्र के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। मल्ल का क्षेत्र शाक्य क्षेत्र के दक्षिण पूर्व तथा पूर्व की ओर स्थित था। अनुमान है कि मल्लों पर पाँच हज़ार कबीलायी सरदारों का शासन रहा होगा। बुद्ध की मृत्यु कुशीनगर के निकट हुई और मल्लों ने ही उनका अंतिम संस्कार किया।

7) **चेदि**

चेदि क्षेत्र आधुनिक बुंदेलखंड के पूर्वी भागों के आस-पास था। संभव है इसका विस्तार मालवा पठार तक हो गया हो। कृष्ण का प्रसिद्ध शत्रु शिशुपाल चेदियों का शासक था। महाभारत के अनुसार, चेदि चंबल के पार मत्स्य, बनारस के काशियों तथा सोन नदी की घाटी में करूषों के निकट संपर्क में थे। इसकी राजधानी सोथीवती (सुक्तिमति) संभवतः उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में स्थित थी। इस क्षेत्र के अन्य मुख्य नगर सहजति तथा त्रिपुरी थे।

8) **वत्स**

वत्स, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी, छठी शताब्दी बी.सी.ई. का सबसे शक्तिशाली केंद्र था।

प्रयागराज के निकट यमुना के तट पर बसा कौशाम्बी आधुनिक कोसम के रूप में जाना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वत्स आधुनिक प्रयागराज के आस-पास बसे होंगे। *पुराणों* के अनुसार, पांडवों के वंशज निचंक्षु ने हस्तिनापुर का बाढ़ में बह जाने के बाद अपनी राजधानी कौशाम्बी में बना ली। नाटककार भास ने अपने नाटकों के द्वारा वत्सों के एक राजा, उदयन को अमर बना दिया। यह नाटक उदयन तथा अवंति की राजकुमारी वासवदत्ता के बीच प्रेम संबंध की कहानी पर आधारित है। इनमें मगध, वत्स और अवंती जैसे शक्तिशाली राज्यों के बीच टकराव का भी उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन *संघर्षों* में वत्स की पराजय हुई क्योंकि बाद के ग्रंथों में वत्स को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया।

9) कुरू

ऐसा विश्वास है कि कुरु के राजा युधिष्ठिर के परिवार से संबंध रखते थे। वे दिल्ली-मेरठ के आस-पास स्थित थे। *अर्थशास्त्र* तथा अन्य ग्रंथों में उन्हें राजशब्दोपजिविनह अर्थात् राजा की पदवी रखने वालों की संज्ञा दी गई है। इससे कबीलायी वंशों को विसरित संरचना की ओर संकेत मिलता है। क्षेत्र में इनके संपूर्ण एकाधिकार की अनुपस्थिति के प्रमाण इसी क्षेत्र में कई राजनैतिक केंद्रों के उल्लेख से भी मिलते हैं। हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ, इशुकर में से प्रत्येक कुरूओं की राजधानी के रूप में उल्लेखित किए गए हैं। इनमें से प्रत्येक का अपना शासक था।

हम कुरुओं के विषय में महाकाव्य महाभारत के द्वारा परिचित हैं। यह पाण्डवों तथा कौरवों के बीच उत्तराधिकार के युद्ध की गाथा है। प्रेम, युद्ध, शड्यंत्र, घृणा तथा मानवीय अस्तित्व के बहुत दार्शनिक मुद्दों पर अपने उत्कृष्ट विवरणों के कारण यह महाकाव्य पीढ़ियों से भारतीय जन-साधारण को रोमांचित करता रहा है। इतिहासकार इस महाकाव्य को घटनाओं के वास्तविक विवरण के बजाय एक साहित्यिक महाकाव्य के रूप में देखते हैं। बड़े पैमाने पर युद्ध *महाजनपदों* के उदय के बाद ही आरंभ हुए। इससे पूर्व के चरण में यह केवल मवेशी हाँक ले जाने तक सीमित था। महाभारत में यूनानियों का भी उल्लेख है जो कि भारत के संपर्क में पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. के बाद ही आए। अतः यूनानियों के साथ युद्ध की संभावना केवल लगभग प्रथम सताब्दी बी.सी.ई. में ही हो सकती थी। सहस्राब्दी संभवतः महाभारत की कहानी दो क्षत्रिय वंशों के आपसी युद्ध की कहानी है, जो कि भाटों की गायन परंपरा का एक हिस्सा बन गयी। आरंभिक ऐतिहासिक युग की शुरुआत के साथ *महाजनपदों* में आपस में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सम्पर्क बढ़ा। भाटों तथा ब्राह्मणों ने भारत के प्रत्येक क्षेत्र को महाभारत की कथा में शामिल कर लिया। इससे राजे-रजवाड़े यह सोचकर गर्व का अनुभव कर सकते थे कि उनके पूर्वज महाभारत युद्ध में लड़े थे। इस प्रकार यह महाकाव्य ब्राह्मणीय धार्मिक व्यवस्था के विस्तार का साधन बन गया। इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि महाभारत के प्राक्कथन में कहा गया है कि 24,000 छन्द वाला एक पूर्व मूल पाठ अभी भी सामयिक है, जबकि वर्तमान महाकाव्य में एक लाख छन्द हैं।

10) पांचाल

पांचाल *महाजनपद* रूहेलखंड तथा मध्य दोआब के कुछ भागों (मोटे तौर पर बरेली, पीलीभीत, बदायूँ, बुलंदशहर, अलीगढ़ आदि) ने स्थित था। प्राचीन ग्रंथों में पंचालों के दो वंशों : उत्तर पांचाल तथा दक्षिणी पांचाल, जिन्हें भागीरथी नदी पृथक करती थी, का उल्लेख मिलता है। उत्तरी पांचालों की राजधानी उत्तर प्रदेश के बरेली ज़िले में अहिच्छत्र में स्थित थी। दक्षिणी पांचालों की राजधानी कांपिल्य थी। संभवतः वे कुरुओं से निकट संपर्क रखते थे। यद्यपि एक या दो पांचाल शासकों का उल्लेख मिलता है, लेकिन हमारे पास उनके विषय में बहुत कम जानकारी है। वे भी *संघ* कहे जाते थे। छठी शताब्दी तक वे लुप्त हो चुके थे।

11) मत्स्य

मत्स्य राजस्थान के जयपुर-भरतपुर-अलवर क्षेत्र में स्थित थे। उनकी राजधानी विराट नगर थी, जोकि पांडवों के छिपने के स्थान के रूप में विख्यात है। यह क्षेत्र पशु-पालन के लिए उपयुक्त था। इसीलिए महाभारत कथा में जब कौरवों ने विराट पर आक्रमण किया तो वे मवेशियों को हाँक कर ले गए। स्वाभाविक है कि स्थायी कृषि पर आधारित शक्तियों से मत्स्य मुकाबला न कर सका। मगध साम्राज्य ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। अशोक के कुछ सर्वाधिक आदेश-पत्र प्राचीन विराट, बैरात (जिला जयपुर) में पाए गए हैं।

12) सुरसेन

सुरसेन की राजधानी यमुना तट पर मथुरा में थी। महाभारत और *पुराण* में मथुरा के शासक वंश को यदु कहा गया है। यादव वंश कई छोटे-छोटे वंशों जैसे अंधक, वृष्णि, महाभोज आदि में बंटा हुआ था। इनकी राज व्यवस्था भी *संघ* व्यवस्था थी। महाकाव्यीय नायक कृष्ण इन्हीं शासक परिवारों से संबंधित है। मथुरा दो विख्यात प्राचीन भारतीय व्यापार मार्ग – उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के बीच में स्थित था। इसका कारण यह था कि मथुरा स्थायी कृषि वाले गांगेय मैदानों और विकीर्ण जनसंख्या वाले चारागाहों, जो मालवा पठार तक पहुँचते थे, अंतर्वर्ती क्षेत्रों के बीच स्थित था। इसीलिए मथुरा एक महत्त्वपूर्ण नगर बन गया। लेकिन खंडित राजनैतिक संरचना तथा प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण इस क्षेत्र के शासक इसे शक्तिशाली राज्य न बना सके।

13) अस्सक

अस्सक महाराष्ट्र में आधुनिक पैठण के निकट गोदावरी के तट पर फैला हुआ था। पैठण को अस्सकों की राजधानी, प्राचीन प्रतिष्ठान माना जाता है। दक्षिणापथ प्रतिष्ठान को उत्तरी शहरों से जोड़ता था। अस्सकों के राजाओं के अस्पष्ट उल्लेख अवश्य मिलते हैं। किन्तु अभी तक हमारे पास इस क्षेत्र की जानकारी काफी सीमित है।

14) अवंति

अवंति छठी शताब्दी बी.सी.ई. के सबसे शक्तिशाली *महाजनपदों* में से एक था। इस राज्य का मुख्य क्षेत्र मोटे तौर पर मध्य प्रदेश के उज्जैन जिले से लेकर नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। इस राज्य में एक अन्य महत्त्वपूर्ण नगर महिस्मति था जिसे अक्सर इसकी राजधानी के रूप में माना जाता है। अवंति क्षेत्र में कई छोटे बड़े कस्बे का उल्लेख मिलता है। *पुराणों* में अवंति की आधारशिला रखने का श्रेय यदुओं के हैहय वंश को दिया गया हैं। कृषि के लिए उपजाऊ भूमि पर स्थित होने तथा दक्षिणी ओर होने वाले व्यापार पर नियंत्रण होने के फलस्वरूप यदुओं ने यहाँ एक केंद्रीकृत राज्य की स्थापना कर ली। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में एक शक्तिशाली राजा प्रद्योत अवंति का शासक था। संभवतः उसने वत्स पर विजय प्राप्त की थी। यही नहीं, अजातशत्रु भी उससे भय खाता था।

15) गांधार

गांधार भारत के उत्तर पश्चिम में काबुल और रावलपिंडी के मध्य का क्षेत्र था। संभव है कि इसमें कश्मीर का भी कुछ भाग रहा हो। यद्यपि वैदिक युग में यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था, किन्तु ब्राह्मणीय और बौद्ध परंपरा के उत्तरकालीन चरणों में इसके महत्त्व में कमी आयी। इसकी राजधानी तक्षशिला एक महत्त्वपूर्ण शहर था, जहाँ सभी *जनपदों* के लोग शिक्षा तथा व्यापार के उद्देश्य से जाते थे। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में गांधार पर पुक्कुसती नामक राजा शासन कर रहा था। यह बिम्बिसार का मित्र था। छठी शताब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में गांधार पर फारसियों ने विजय प्राप्त कर दी। आधुनिक तक्षशिला की खुदाई से पता चलता है कि इस स्थान पर 1000 बी.सी.ई. में ही लोग बस चुके थे और बाद के दिनों में नगर का उदय

हुआ। छठी शताब्दी बी.सी.ई तक आते-आते गांगेय घाटी के शहरों के समरूप यहाँ भी एक शहर का उदय हुआ।

16) **कंबोज**

कंबोज गांधार के निकट, संभवतः आज के पुंच क्षेत्र में स्थित था। सातवीं शताब्दी बी.सी.ई. में ही कंबोजों को ब्राह्मणीय ग्रंथों में असभ्य लोगों की संज्ञा दी गई थी। *अर्थशास्त्र* में इन्हें वर्त-शास्त्रोपाजीविन, अर्थात् कृषकों, चरवाहों, व्यापारियों तथा योद्धाओं का संगठन कहा गया है।

बोध प्रश्न 3

1) यदि आप इतिहासकार होते तो आप जीवक कथा से क्या निष्कर्ष निकालते? लिखिए।

....

....

....

....

....

2) शहरों के संबंध में साहित्यिक प्रमाणों से प्राप्त जानकारी को पुरातात्विक प्रमाण कैसे सुधारते हैं? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3) शासकों को उनसे संबंधित *महाजनपदों* के क्रम में लिखिए।

i)	अजातशत्रु	अ)	कोशल
ii)	प्रद्योत	ब)	मगध
iii)	उदयन	स)	अवंति
iv)	प्रसेनजित	द)	वत्स

4) *महाजनपदों* को उनसे संबंधित राजधानी के क्रम में रखिए :

i)	काशी	अ)	वैशाली
ii)	अंग	ब)	वाराणसी
iii)	वज्जि	स)	कौशाम्बी
iv)	वत्स	द)	चम्पा

10.12 समाज

इससे पहले कि हम छठी सदी बी.सी.ई. से चौथी सदी बी.सी.ई. तक होने वाले सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के मुख्य आयामों के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा करें, यह अनिवार्य है कि प्रस्तावना के रूप में उन बिन्दुओं का संक्षेप में विवरण करें जिनके विषय में पिछली इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं।

प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में कृषि अर्थव्यवस्था के ठोस आधार ग्रहण करने के साथ-साथ नये भौगोलिक क्षेत्र अर्थात् ऊपरी मध्य गंगा घाटी क्षेत्र की ओर वैदिक प्राचीन संस्कृति का फैलाव हो गया था। दूसरे, समाज में शासकों और एक ऐसे वर्ग का उदय होना था जो स्वयं किसी प्रकार का उत्पादन नहीं करता था, बल्कि समाज के अन्य वर्गों द्वारा किए गए उत्पादन का उपभोग करता था। समाज में असमानता को संस्थागत रूप दे दिया गया था। संस्थागत असमानता का तात्पर्य राज्य और उसकी व्यवस्था की स्थापना होना था। इसी के साथ समाज को चार वर्णों में विभाजित करने वाले सिद्धांत का और अधिक कड़ा होना था क्योंकि *वर्ण* सिद्धान्त ने यह स्पष्ट किया कि समाज के विभिन्न वर्ग किस प्रकार अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकते थे।

हमारे पास ऐसे विभिन्न प्रकार के साहित्यिक ग्रंथ हैं जो छठी सदी बी.सी.ई से चौथी सदी बी.सी.ई. तक के समाज एवं अर्थव्यवस्था के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। ऐसे बहुत से ब्राह्मणिक ग्रंथ हैं जो दिन-प्रतिदिन के संस्कारों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के तरीके लोगों को बताते हैं। उनको *गृह्य-सूत्र, श्रौत सूत्र* और *धर्म सूत्र* कहा जाता हैं इनमें से कुछ ग्रंथ जैसे कि *अपस्तंब ग्रंथ* इस काल से संबंधित हैं। पाणिनी की व्याकरण में इस समय के बहुत से सम्प्रदायों के संक्षिप्त संदर्भ मिलते हैं। फिर भी, इस काल की सूचना के लिए हमारे लिए बौद्ध धर्म से संबंधित प्राथमिक स्रोत हैं। इनको पाली भाषा में लिखा गया है। प्रारंभिक बौद्ध धार्मिक विहित साहित्य को छठी सदी बी.सी.ई से चौथी सदी बी.सी.ई. के मध्य में लिखा गया। उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भाण्डों से संबंधित पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन इस काल के समाज को काफी जानकारी प्रदान करते हैं।

छठी सदी बी.सी.ई का समाज एक ऐसा समाज था जो अति-महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। समाज में प्रचारक, राजकुमार और व्यापारी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। यह वह काल था जबकि ऐतिहासिक भारत में प्रथम बार नगर अस्तित्व में आते हैं। यह वह समय भी था जब साक्षर परंपरा का प्रारंभ हुआ। इस काल के अंत तक समाज में लेखन की कला को जान लिया गया था। प्राचीन भारत की प्रारंभिक लिपि को *ब्राह्मी* लिपि कहा जाता है। लिखने की जानकारी ने बड़े स्तर पर ज्ञान का विस्तार किया। इससे पहले समाज में ग्रहण किए गए ज्ञान को कंठस्थ कराके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता था। जिसमें यह संभावना बनी रहती थी कि कुछ समय बाद कुछ तथ्यों को भुला दिया जाएगा या परिवर्तित कर दिया जाएगा। लिखाई की कला की जानकारी प्राप्त हो जाने का तात्पर्य था कि ज्ञान को बिना तोड़-मरोड़े संग्रहित किया जा सकता था। इस तथ्य ने परिवर्तन की चेतना को और प्रबल बनाया क्योंकि सामाजिक व्यवस्था तथा विश्वासों में समय के परिवर्तन निहित थे। जब एक बार चीजों को लिख दिया गया तो बाद के काल में विचारों एवं विश्वासों में होने वाले परिवर्तन लोगों को साफ दिखाई दिए और पता चल सका कि परिवर्तन कब और क्यों हुए। आइये, अब समाज के उन वर्गों के विषय में पढ़ें जिनको परिवर्तन के प्रवाह ने प्रभावित किया।

10.12.1 *क्षत्रिय*

तत्कालीन साहित्य में क्षत्रिय लोग समाज के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली वर्ग के रूप में प्रकट होते दिखाई पड़ते हैं। बुद्ध और महावीर समाज के इसी समूह से संबंधित थे। ब्राह्मणिक ग्रंथों में क्षत्रियों की समानता योद्धा जाति के साथ की गई है। *वर्ण* व्यवस्था के अंतर्गत क्षत्रियों को दूसरे स्तर की जाति के रूप में स्थान है। उनको समाज का शासक वर्ग माना जाता था। किन्तु, बौद्ध साहित्य में क्षत्रियों का दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया गया है। उनके विवाह के नियम दृढ़ एवं कठोर नहीं थे, जो किसी जाति की एक विशेषता होती है। उनकी वैशाली एवं कपिलवस्तु जैसे गण संघों के सत्तारूढ़ वंश के रूप में प्रस्तुत किया

गया है जैसे शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि। ये ऐसे सामाजिक समूह थे जो संयुक्त रूप से भूमि के स्वामी थे। उनकी भूमि पर खेती का कार्य गुलामों एवं मजदूरों द्वारा किया जाता था, जिनको दास तथा कर्मकार कहा जाता था। ऐसा लगता है कि वे ब्राह्मणिक अनुष्ठानों को भी नहीं करते थे। बौद्ध साहित्य में गण *संघ* के केवल दो सामाजिक समूहों के विषय में ही लिखा गया है और वे उच्च जाति एवं निम्न जाति हैं। इन गण संघों के क्षेत्र में समाज का विभाजन ब्राह्मणिक जातीय व्यवस्था के अनुसार चार भागों में होने के स्थान पर केवल दोहरा था। ब्राह्मण और *शूद्र* इस विभाजन में नहीं थे। इन क्षत्रिय जातियों में बहुत-सी वैवाहिक प्रथाओं का प्रचलन था, जिसमें चचेरे भाई-बहन का आपस में विवाह भी सम्मिलित है। विवाह किसके साथ करे या किसके साथ न करें, इसके लिए वे बड़े सजग थे। ऐसा समझा जाता है कि शाक्य लोग इसी कारण समाप्त हो गए। एक कहानी के अनुसार प्रसनजित नामक कौशल के राजा ने किसी शाक्य लड़की से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। शाक्य लोग इस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सके। इसलिए उन्होंने एक शाक्य दास लड़की को कौशल नरेश के पास भेज दिया और जिसके साथ राजा ने विवाह कर लिया। इस कन्या से उत्पन्न होने वाली सन्तान राजसिंहासन की उत्तराधिकारी बनी। जिस समय राजा को शाक्यों की इस चालाकी का पता लगा तो उसने क्रोध में उनको नष्ट कर दिया। यद्यपि कौशल का राजा और शाक्य दोनों क्षत्रिय थे, परन्तु उनके बीच वैवाहिक संबंधों की प्रथा नहीं थी। इससे संकेत मिलता है कि जिस रूप में हम जाति व्यवस्था को समझते हैं क्षत्रिय उस रूप में जाति नहीं थे। क्षत्रिय लोग अपने स्तर एवं वंशावली के लिए बड़ा अभिमान करते थे। शाक्य, लिच्छवि, मल्ल और इसी प्रकार के अन्य गण अपनी सभाओं में भाग लेने के अधिकार को पूर्ण सजगता के साथ सुरक्षित रखते थे परन्तु इन स्थानों पर अन्य लोगों को भाग लेने की आज्ञा नहीं देते थे। ये सभाएँ उनके समाज की अधिकतर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के विषय में निर्णय करती थीं। वे न तो भूमि कर देते थे और न ही उनके पास संगठित सेना होती थी। युद्ध के समय पूरा समाज हथियार लेकर युद्ध करता था।

कोसल, काशी आदि के राजाओं का कई स्त्रोतों में क्षत्रिय के रूप में विवरण आता है। ब्राह्मणिक ग्रंथों से भिन्न बौद्ध साहित्यिक ग्रंथ चार वर्णीय जातीय संरचना में क्षत्रियों को प्रथम स्तर पर रखते हैं। एक प्रवचन में महात्मा बुद्ध कहते हैं – ''अगर क्षत्रिय सबसे निम्न स्तर तक पतित हो जाता है, वह तब भी सबसे अच्छा है और उसकी तुलना में ब्राह्मण निम्न है।''

कुछ क्षत्रियों को विद्वान अध्यापकों एवं विचारकों की श्रेणी में रखा गया है। कुछ ने व्यापारिक व्यवसाय अपनाया। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि क्षत्रियों के विषय में ब्राह्मणों की योद्धा जाति की अवधारणा को केवल ऊपरी व मध्य गंगा घाटी के कुछ राजतंत्र परिवारों के विषय में लागू किया जा सकता था। वे विभिन्न प्रकार के कार्यों को करते थे, जैसे कि धर्म प्रचारक का कार्य, व्यापार एवं खेती की देख-भाल करने के कार्य आदि। विशेषकर पूर्वी भारत में क्षत्रियों का अस्तित्व जाति के रूप में नहीं था। बल्कि वहाँ पर विभिन्न सामाजिक समूह स्वयं को क्षत्रिय कहते थे।

10.12.2 *ब्राह्मण*

समकालीन साहित्य में ब्राह्मणों के विषय में जो संदर्भ मिलते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक जाति समूह के रूप में थे। जो कोई ब्राह्मण परिवार में जन्म लेता, वह सदैव ब्राह्मण ही रहता था। वह अपना व्यवसाय परिवर्तित कर सकता है, परन्तु वह सदैव ब्राह्मण ही रहता था। ब्राह्मणिक ग्रंथों में उनको विशेषाधिकार दिया गया है कि वे ईश्वर व आदमी के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं। बलि यज्ञों को सम्पूर्ण करने के लिए पूर्ण अधिकार उनके पास थे। यह गुट इस चेतना से ग्रस्त था कि वे ही सर्वश्रेष्ठ जाति के थे। वे ऐसे नियमों का पालन करते थे, जिससे कि अपवित्र भोजन एवं निवास स्थान से बचा जा सके। तत्कालीन ब्राह्मण

ग्रंथ *शतपथ ब्राह्मण* में ब्राह्मणों के चार लक्षणों का उल्लेख है। ब्राह्मण कुल, उचित आचरण और व्यवहार, प्रसिद्धि की प्राप्ति और मनुष्य को शिक्षित करना। ऐसा करने से वे कुछ विशेषाधिकारों का उपयोग करते थे। उनका सम्मान किया जाता था, उनको भेंट दी जाती थी और उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था। बहुत से ब्राह्मणों ने संन्यासी एवं शिक्षक का जीवन व्यतीत किया। बौद्ध ग्रंथ सामान्यतः ब्राह्मण वर्ग के आलोचक हैं। विशेषकर जो धार्मिक नैतिक जीवन से विमुख हो गए थे। उन्होंने आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों के लालचीपन की भी आलोचना की। बहुत से ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। इसलिए ऐसा पाया गया था कि महात्मा बुद्ध के प्रारंभिक अनुयायियों में सबसे अधिक संख्या ब्राह्मणों की थी। किन्तु पाली साहित्य में ऐसे विवरण भी हैं जिनसे पता लगता है कि ब्राह्मणों ने भी अन्य व्यवसायों को अपनाया। *दस ब्राह्मण जातक* में एक कहानी का विवरण है जो हमें ब्राह्मणों के प्रति बौद्ध लोगों का दृष्टिकोण बताती है। कहानी इस प्रकार है, ''प्राचीन काल में कुरू राज्य की राजधानी इंद्रपट्ट थी और कुरू परिवार का राजा युधिटथिल था। उसको सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों पर सलाह देने के लिए उसका एक मंत्री विधुर था।'' उसको बैठने के लिए स्थान देते हुए राजा ने कहा, ''विधुर एक ऐसा ब्राह्मण खोजो जो सदाचारी एवं विद्वान हो, वह इन्द्रीय सुख का परित्याग कर चुका हो, उसको मैं उपहार भेंट करूंगा। ओ मित्र, वह जहाँ भी हो उसकी खोज करो, उसको जो भी दिया जाएगा, उससे अति आनन्द की प्राप्ति होगी।''

''ऐ राजन, ऐसे ब्राह्मणों को खोज पाना अति कठिन है, जो सदाचारी एवं विद्वान हो, जो इन्द्रीय सुखों का परित्याग कर, आपके द्वारा दिए गए उपहारों से आनन्द ले सके।''

''ऐ राजन, ब्राह्मणों के दस वर्ग हैं, वे विभिन्न प्रकार के हैं। उनको गुणों एवं वर्गीकरण के आधार पर इस प्रकार पाया जाता है। वे जड़ी-बूटियों को एकत्रित करते हैं, स्नान करते और श्लोकों का उच्चारण करते रहते हैं। ऐ राजन, वे स्वयं को ब्राह्मण कहते हुए भी एक चिकित्सक की भांति कार्य करते हैं, आप उनको जानते हैं। ऐ महान राजा। हम उनके पास जायेंगे।''

''कुरू कुल के राजा ने उत्तर दिया, क्या वे भटक गये हैं?'' 'वे छोटी घंटियाँ लिए आपके समक्ष आते हैं, जिससे वे अपना सन्देश देते हैं, और वे नौकरों की भांति चार पहियों की गाड़ियों को भी खींचना जानते हैं।

''वे एक जल का बर्त्तन और घुमावदार बेंत लेकर चलते हैं, राजाओं की पीठ पीछे वे लोगों की भांति गाँव और देश के नगरों में विचरण करते हुए कहते हैं, अगर हमको कुछ न दिया गया तो हम गाँव या जंगल को नहीं छोड़ेंगे। वे कर इकट्ठा करने वालों के अनुरूप हैं.''

''शरीर पर लंबे बालों व लंबे नाखूनों के साथ, गंदे दांत, गंदे बाल, धूल और गंदगी से लथपथ, वे भिखारियों की भांति घूमते हैं। वे लकड़ी काटने वालों के अनुरूप हैं.।''

''वे आंवला, आम और कटहल आदि फलों, मिश्री, सुगंधित वस्तुएँ, शहद, उबटन और विभिन्न प्रकार की विक्रय-सामग्रियों को बेचते हैं। ऐ महाराज, वे व्यापारी के अनुरूप हैं.।''

''वे खेती व व्यापार, दोनों करते हैं, वे बकरियों एवं भेड़ों को पालते हैं, अपनी कन्याओं को धन के लिए बेचते हैं, वे बेटी और बेटों के विवाहों का आयोजन करते हैं। वे अम्बभट्ट वर्स के अनुरूप हैं.।''

''कुछ पुरोहित बाहर से लाये हुए भोजन का सेवन करते हैं, बहुत से लोग उनसे पूछते हैं (शकुन के लिए), वे पशुओं को बधिया करते हैं और शकुन के चिन्हों को तैयार करते हैं। वहाँ पर भेड़ों को काटा जाता है (पुरोहितों के घरों में), वे भैंस, सुअर एवं बकरी काटने वालों के अनुरूप हैं.'।

''तलवार को हथियार के रूप में धारण किए और चमकती कुल्हाड़ी को हाथ में लिए, वे वर्स की सड़क (व्यापार वाली सड़क) पर खड़े रहते हैं, वे काफिलों का नेतृत्व करते चलते हैं (उबड़-खाबड़ सड़कों पर से)। वे खालें एवं निषादों के अनुरूप हैं.।''

''वे जंगल में झोपड़ियाँ बनाते हैं, वे ऐसे जालों को निर्मित करते हैं जिनसे हिरणों, बिल्लियों, छिपकलियों, मछलियों और कछुओं का वे वध करते हैं। वे शिकारी हैं.।''

''राजा के पलंग के नीचे ही वे धन के लिए झूठ बोलते हैं, सोमरस की प्रस्तुति होने पर राजा उनके ऊपर स्नान करते हैं। स्नान कराने वालों के अनुरूप हैं.।''

(व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम और उच्चारण मूल स्रोत पर आधारित हैं।)

यह कहानी ब्राह्मण के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यकलापों का चित्रण प्रस्तुत करती है। यह हमें समकालीन समाज में होने वाले विभिन्न व्यवसायों की भी एक झलक प्रदान करती है। वे अपने व्यवसायों में परिवर्तन करने के बावजूद भी अकाट्य रूप से ब्राह्मण समझे जाते थे। वे अपनी जातीय पहचान को नहीं खाते थे। ऐसे विवरण मिलते हैं जिनके अनुसार विद्वान ब्राह्मण अद्वितीय थे। ऐसे भी विवरण हैं, जिनके अनुसार ब्राह्मण कृषक थे, जो अपनी खेती स्वयं करते थे या गुलामों तथा नौकरों की मदद से कराते थे। किन्तु, उनकी मुख्य पहचान एक दिव्य जाति के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी।

10.12.3 *वैश्य* और *गहपति*

ब्राह्मणिक *वर्ण* व्यवस्था में *वैश्य* अनुष्ठानिक क्रम में तीसरे स्थान की जाति थे। उनका मुख्य कार्य पशुओं को पालना, कृषि करना तथा व्यापार करना था। दूसरी ओर, बौद्ध साहित्य में *गहपति* शब्द का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया गया है। *गहपति* का शाब्दिक अर्थ है कि घर का स्वामी। यह समुदाय भूमि का स्वामी था और ये परिवार श्रम, दासों और नौकरों के श्रम से अपनी भूमि पर खेती करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में वर्णित *राजन्य* और *विश* गुटों से हुई थी। उनकी उत्पत्ति सम्पत्ति पर परिवार एवं व्यक्तिगत स्वामित्व के उद्भव की ओर संकेत करती है। इससे पहले के काल में सम्पत्ति पर सम्पूर्ण कबीले का संयुक्त स्वामित्व था। बौद्ध साहित्य में *गहपति* शब्द के अतिरिक्त अनेकों प्रकार के व्यवसायों और व्यापारियों का विवरण मिलता है, जिसका वर्गीकरण ब्राह्मणिक ग्रंथों में वैश्यों के रूप में किया गया। उनमें से प्रत्येक अपने कुटुम्बीय समूह से निकटता से संबंधित था और वे अंतर्जातीय विवाह नहीं करते थे। उनकी पहचान को उनके द्वारा किए जाने वाले व्यवसायों एवं उनकी स्थानीय भौगोलिकता के आधार पर ही निर्धारित किया जाता था। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों में जिस प्रकार से *वैश्य* जाति का चित्रण किया गया है, उस रूप में वह जाति कभी भी विद्यमान नहीं थी। इसकी अपेक्षा बहुत से समूह जातियों के रूप में बन गए। अब हम उन समूहों का अध्ययन करेंगे।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि *गहपति* भू-स्वामियों के एक मुख्य वर्ग के रूप में थे। विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि यह गण संघों में बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वहाँ पर भूमि का स्वामित्व क्षत्रिय वंश के पास था। इनका विवरण प्रचुरता के साथ मध्य गंगा घाटी के राजतंत्रों में मिलता है। वे कृषि संसाधनों का मुख्य उपभोग करने वाले थे और राजाओं के लिए लगान के स्रोत थे। *गहपतियों* में वे धनी लोग भी सम्मिलित थे जो बढ़ईगिरी, दवाई आदि के व्यवसायों से जुड़े थे। पाली ग्रंथों में एक दूसरे शब्द *कुटुम्बिका* का प्रयोग परिवार *(कुटुम्ब)* के स्वामी के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। उनको धनी भू-स्वामी, साहूकार या अनाज का व्यापार करते हुए दिखाया गया है।

यह धनी-भू-स्वामियों का ही वर्ग था जिनमें से कुछ धनी व्यापारियों का विकास हुआ।

गहपतियों का विवरण व्यापारिक नगरों में भी किया गया है। सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व और ब्राह्मणवाद के कमज़ोर प्रभाव के कारण *गहपतियों* ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग व्यापार में किया। पश्चिम गंगा घाटी में इस सम्पत्ति का उपयोग बलि यज्ञों के लिए किया जाता होगा। भू-स्वामी और व्यापार की इस तरह की दो शाखाएँ हो जाने से *सेठी* वर्ग की उत्पत्ति हुई। *सेठी* का शब्दिक अर्थ है ''वह व्यक्ति जिसके पास सर्वश्रेष्ठ है'' *सेठी-गहपति अनाथपिण्डिका*, जिसने श्रावस्ती में बुद्ध को जेतवन दिया। ऐसा ही अमीर सेठी था। बनारस के एक *सेठी* का विवरण मिलता है जो व्यापार करता था और उसके पास 500 गाड़ियों का काफिला था। सिक्कों के प्रचलन के साथ उनका साहूकारी का पेशा ज़ोर-शोर से चला। समकालीन साहित्य में शतमाण, कर्षपण आदि नाम के सिक्कों का विवरण मिलता है। पुरातात्विक खुदाई से भी पता चलता है कि उस समय सिक्के प्रचलन में आ चुके थे। दूर-दराज के क्षेत्रों के साथ व्यापार के भी विवरण मिलते हैं।

बड़े व्यापारियों और भू-स्वामियों के अतिरिक्त छोटे व्यापारियों का भी विवरण मिलता है। इनमें फुटकर, व्यापारी, फेरी करके बर्तन बेचने वाले, बढ़ई, हाथी दांत की वस्तुएँ बनाने वाले, माला बनाने वाले और धातू का काम करने वाले आदि शामिल हैं। इन लोगों ने अपने व्यावसायिक *संघ* बना लिये थे। परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त कोई भी वह व्यवसाय नहीं कर सकता था। कार्यों का यह स्थानीय विभाजन और व्यवस्यों के अनुवांशिक परम्परा ने इन्हें व्यावसायिक श्रेणियों या शिल्पी संघों का रूप दिया। इन संघों का एक मुखिया होता था जो उनके हितों की देखभाल करता था। राजा का यह कर्त्तव्य समझा जाता था कि वह श्रेणी संघों के नियमों को स्वीकार करे और उनकी रक्षा करे। श्रेणी संघों का मुखिया होता था जो उनके हितों की देखभाल करता था। राजा का यह कर्त्तव्य समझा जाता था कि वह श्रेणी संघों के नियमों को स्वीकार करे और उनकी रक्षा करे। श्रेणी ग्रंथों का संगठित रूप यह बताता है कि व्यापार और उद्योग काफी विकसित थे। इससे यह भी पता चलता है कि आर्थिक व्यवसायों पर आधारित कुछ समूह अस्तित्व में आ गए थे और अपने व्यवसायों से ही पहचाने जाते थे। यह समूह एक जाति की ही भांति थे। समूहों के अंदर ही विवाह संबंध किए जाते थे। समूह के नियम भी नहीं बदले जा सकते थे।

10.12.4 *शूद्र*

ब्राह्मणिक व्यवस्था में *शूद्र* सबसे निम्न स्तर पर समझे जाते थे। अन्य तीनों वर्गों की सेवा करना ही उनका कर्त्तव्य था। गैर-ब्राह्मणिक ग्रंथों के बहुत से ऐसे गरीब और दलित समूहों की चर्चा करते हैं जो *शूद्र* कहे जाते थे। पाली साहित्य में बहुधा दास और कर्मकार (मजदूरी पाने वाले) लोगों का विवरण आता है। दलिद्द शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के लिए होता है जो बहुत गरीब थे और जिनके पास खाने के लिए या तन ढंकने के लिए कुछ नहीं होता था। इस तरह पहली बार हमें विलासिता में रहने वाले धनी और अत्यंत गरीब, दोनों के बारे में विवरण मिलता है। समाज के कुछ समूहों का अत्यंत गरीब होना तथा *शूद्र वर्ण* के अस्तित्व में आने का कारण शायद यह था कि समाज के धनी और शक्तिशाली वर्ग ने भूमि और अन्य संसाधनों पर अधिकार कर लिया था। सभी तरह के संसाधनों के अभाव में *शूद्र* वर्ग के लोग दूसरों की सेवा और धनी लोगों की भूमि पर काम करने के लिए मजबूर थे। सामान्यतः कारीगर और दस्तकार भी शूद्रों की श्रेणी में मान लिए जाते थे। अधिकतर धर्मसूत्र शूद्रों के विभिन्न समूहों के उदय के लिए संकीर्ण जाति की अवधारणा को उत्तरदायी मानते हैं। यह संकल्पना के अनुसार अगर कोई अंतर्जातीय विवाह करेगा तो उसके वंशज निम्न जाति के होंगे। कर्मकाण्डों के लिए यह लोग सामाजिक व आर्थिक स्तर में किसानों, दासों और कारीगरों की तरह थे। वैदिक समाज के कुटुम्बीय संबंधों के ह्रास से यह *वर्ण* सबसे अधिक हानि में रहा।

समकालीन साहित्य में दस्यु का काफी विवरण मिलता है। यह ऐसे दास थे, जिनकी कोई वैधता नहीं थी। *शूद्र* मजदूर अधिकांशतया युद्धबंदी होते थे अथवा ऐसे लोग थे जो ऋण वापस नहीं कर पाते थे। धनी लोगों की भूमि पर उनसे जबरदस्ती काम कराया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में दास, कर्मकार तथा कसक (कृषक) मजदूरों के प्रमुख स्रोत थे। नगरों के अस्तित्व में आने से अमीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ गई।

उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त शुद्र के काल की सामाजिक श्रेणियों की सूची बहुत लम्बी है। घुमक्कड़ नाचने और गाने वाले, जो एक गाँव से दूसरे गाँव घूमते फिरते थे, अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इनके अतिरिक्त करतब और हाथ की सफाई दिखाने वाले, मसखरे, हाथी के करतब दिखाने वाले, सूत्रधार, सैनिक, लेखक, धनुर्धारी, शिकारी और नाई आदि कुछ ऐसे सामाजिक समूह हैं जिनके विषय में हमें जानकारी मिलती है। इनको समकालीन जातीय श्रेणियों में रख पाना कठिन है। शायद यह *वर्ण* व्यवस्था के बाहर थे। इनमें से अधिकतर कृषि पर आधारित नये समाज के प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे। सामान्यतः उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। कभी-कभी यह समूह विद्रोह भी करते थे। *जातक* कथाओं में युद्धों के विवरण भरे पड़े हैं। गरीब शूद्रों के शहर के बाहर निवास करने का विवरण मिलता है। इसका सीमा प्रभाव यह पड़ा कि छुआछूत अस्तित्व में आया। चाण्डाल अलग गाँवों में रहते थे। उन्हें अत्यधिक अछूत माना जाता था। यहाँ तक कि एक सेठी की लड़की को चाण्डाल देखने पर अपनी आंखे धोनी पड़ी। इसी प्रकार एक ब्राह्मण इस बात से चिन्तित था कि चाण्डाल के शरीर को छूने वाली हवा अगर उसे छू गई तो वह (ब्राह्मण) अपवित्र हो जाएगा। चाण्डाल लोग केवल मरे हुए आदमी के शरीर से उतारे वस्त्र पहन सकते थे और टूटे हुए बर्तनों में खाना खा सकते थे। पुक्कुस, निषाद और वेण इसी प्रकार के अन्य घृणित समूहों में आते थे। राजा के शासक के रूप में रहने का समर्थन यह कहकर किया जाता था कि वह लूटमार करने वालों कबीलाइयों से जन-मानस की रक्षा करता था। यह वह पिछड़े हुए शुद्र थे जो जंगलों में रहते थे और वहाँ से खदेड़े जाते थे। वे या तो दास बन जाते थे या डाकू। समकालीन साहित्य में डाकुओं के गाँवों का भी वर्णन आता है।

10.12.5 घुमक्कड़ सन्यासी

इस काल का एक प्रमुख समूह परिब्राजक और *श्रवण* का था। यह वह लोग थे जिन्होंने अपने घर त्याग दिये थे। वह लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे और जीवन के अर्थ, समाज और आध्यात्मिकता पर चर्चा करते थे। महावीर और बुद्ध इसी प्रकार के लोगों में थे।

10.12.6 स्त्रियों की दशा

छठी शताब्दी बी.सी.ई. के समाज और अर्थव्यवस्था के परिवर्तनों ने स्त्रियों की स्थिति को भी प्रभावित किया। चूंकि पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार प्राप्त होता था। इसलिए व्याभिचार रोकने पर बहुत ज़ोर दिया जाता था। समकालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि राजा के दो प्रमुख कर्त्तव्य हैं – सम्पत्ति और परिवार की मर्यादा का उल्लंघन करने वालों को दंड देना। आज्ञाकारी दास की भांति रहने वाली पत्नी को आदर्श पत्नी कहा जाता था। परन्तु यह बात मुख्यतः अमीर लोगों की पत्नियों पर लागू होती थीं। उनके लिए पत्नी वैध सन्तान को जन्म देने का साधन मात्र थी। परन्तु साथ ही ऐसी महिलाओं की संख्या भी बहुत बड़ी थी जो अपने स्वामी और स्वामिनियों की सेवा करने में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती थीं। महिलाओं को आदमियों की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने किसी भी सामान्य सभा में बैठने के योग्य नहीं समझा जाता था। स्त्रियों को हमेशा पिता, भाई अथवा पुत्र के नियंत्रण में रहना होता था। *संघ* (बौद्ध) में भी उन्हें पुरुषों से नीचा समझा जाता था।

10.13 अर्थव्यवस्था

हमने देखा कि राज्य तंत्र की स्थापना और समाज में श्रेणीबद्धता, दोनों प्रक्रियाएँ पहली सहस्राब्दि बी.सी.ई. के मध्यतक काफी महत्त्वपूर्ण स्थान ले चुकी थीं। यह दोनों प्रक्रियाएँ, जो आपस में संबंधित थीं, इसलिए अस्तित्व में आई क्योंकि नई कृषि व्यवस्था न केवल कृषकों को जीवन यापन के साधन प्रदान कर सकी। बल्कि उस वर्ग को भी, जो सीधे कृषि से जुड़ा हुआ नहीं था। छठी-पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. की आर्थिक दशा पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उस काल के बढ़े हुए कृषि उत्पादन की पुष्टि करते हैं (इन स्रोतों का उल्लेख पहले इस इकाई में किया गया है)। इसके अतिरिक्त

1) पूर्णतया दान-दक्षिणा पर आधारित मठ-व्यवस्थाओं का विकास भी अधिक कृषिक उत्पादन को दर्शाता है।

2) अगर कृषि उत्पादन इतना न होता कि समाज के अन्य वर्गों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाता व सोलह *महाजनपद*, उनके महत्त्वपूर्ण नगर और स्थायी सेनाओं का अस्तित्व संभव नहीं होता।

3) साथ ही इस काल में ऐसे प्रमुख नगर बन चुके थे जो व्यापार मार्गों पर स्थित थे तथा जिनमें विविध प्रकार के उच्च स्तर के व्यवसाय थे। नदी घाटियों के विशाल मैदानी क्षेत्रों में ऐसे नगरों का होना भी कृषि द्वारा अधिक खाद्य उत्पादन का सबूत है।

आइए, इस कारण के आर्थिक जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर दृष्टि डालें।

10.13.1 खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण

आइए पहले यह देखें कि इस बढ़े हुए कृषक और खाद्य उत्पादन के लिए कौन से तत्व उत्तरदायी थे। समकालीन स्रोतों का अध्ययन निम्न कारकों को दर्शाता है :

1) छठी शताब्दी बी.सी.ई. के बाद के काल में लोहे के औज़ारों ने गंगा के मैदानों में जंगलों को साफ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र के बड़े भूभाग में धान, गेहूँ, जौ और बाजरे की खेती होती थी।

2) बौद्ध लोग पशुओं की रक्षा पर बहुत बल देते थे। *सुत्त पिटक* के अनुसार पशुओं को नहीं मारना चाहिए क्योंकि वह अनाज प्रदान करते हैं। इस प्रकार, कृषि कार्यों के लिए पशुओं की रक्षा करने पर बल दिया जाता था।

3) उत्तर वैदिक काल की तुलना में शुद्र के काल में अधिक अनाज के उत्पादन का एक कारण रोपाई द्वारा धान की पैदावार करना था।

4) धान अथवा चावल का उत्पादन करने वाली अर्थव्यवस्था की कमी की पूर्ति के लिए पशु-पालन और शिकार किया जाता था। वह उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख साधन और जीवन यापन का स्रोत था। अनेकों पुरातात्विक स्थलों से मवेशी, भेड़, बकरी, घोड़े और सुअर की हड्डियाँ बड़ी मात्रा में प्राप्त हुई हैं। पशुओं का उपयोग केवल हल चलाने और सामान ढोने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि अनाज का एक वर्ग संभवतः माँसाहारी भी था।

10.13.2 ग्रामीण अर्थव्यवसथा

आंतरिक इलाकों की उपजाऊ भूमि की अधिक उपज के कारण व्यापार भी विकसित हुए। भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का बाज़ार की अर्थव्यवस्था में संक्रमण हो रहा था।

सिक्कों के प्रचलन ने इस प्रक्रिया में बहुत योगदान किया। इसने अधिक गतिशीलता तथा व्यवसायों और व्यापार को विकास प्रदान किया तथा एक बड़े क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक जटिल ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

बहुत से समकालीन साहित्यिक स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि बहुत से ग्रामीण केंद्रों की अर्थव्यवस्था का अपना एक रूप था। यह किसान स्वामित्व की ग्राम समुदायों की एक प्रणाली पर आधारित था। पाली साहित्य में तीन प्रकार के गाँवों का विवरण मिलता है :

1) ऐसे गाँव जिनमें विभिन्न जातियों व समुदायों के लोग रहते थे। इस प्रकार के गाँव अधिक थे।

2) अर्द्ध-शहरी गाँव एक प्रकार के शिल्प गाँव थे। यह अन्य गाँवों के लिए एक बाज़ार का काम करते थे और शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच सम्पर्क के रूप में कार्य करते थे।

3) सीमावर्ती गाँव जिसमें शिकारी तथा बहेलिये (चिड़िया पकड़ने वाले) आदि शामिल थे जो एक साधारण जीवन जी रहे थे।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास अधिक आबादी वाले क्षेत्रों से अधिशेष आबादी को स्थानांतरित करके, और साथ ही क्षयकारी गाँवों के पुनर्वास के द्वारा नई बस्तियों की स्थापना के माध्यम से हुआ। नये स्थानों पर बसने के लिए राज्य द्वारा पशु, बीज, घन और सिंचाई के ऐसे विषयों में साधन प्रदान कराए जाते थे। इन लोगों को करों में छूट और अन्य सुविधाएँ भी दी जाती थीं। अवकाश प्राप्त अधिकारियों और पुरोहितों को भी नये क्षेत्रों में भूमि प्रदान की जाती थी। इन क्षेत्रों की भूमि को बेचना, गिरवती रखना और उत्तराधिकार में देना मना था। चरागाहों पर सबका समान अधिकार था। इन गाँवों की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण क्षेत्रों का प्रमुख व्यवसाय खेती करना था। गाँवों की अतिरिक्त उपज शहरों में पहुँचती थी तथा शहर आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ गाँवों तक पहुँचाते थे।

खेती के प्रमुख व्यवसाय होने के साथ-साथ पशु-पालन, खेती से संबंधित छोटे कारीगर उत्पादन, जंगल और स्थानीय आवश्यकता के लिए पशुओं की आपूर्ति ग्रामीण अर्थव्यवसथा की अन्य विशेषताएँ थीं।

10.13.3 शहरी अर्थव्यवस्था

शहरी अर्थव्यवस्था पर उन व्यापारियों तथा कारीगरों का प्रभाव था जो एक विस्तृत क्षेत्र के लिए वस्तुओं का भारी मात्रा में उत्पादन और विनिमय करते थे। शहरी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए निम्न चीजें आवश्यक थीं :

- अतिरिक्त अन्न उत्पादन (जिसकी पूर्ति पास के गाँवों से होती थी)
- विशिष्ट कारीगर उत्पादन
- व्यापारिक विनिमय के केंद्र
- धातु मुद्रा का प्रचलन
- कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली राजनैतिक व्यवस्था
- पढ़ा-लिखा सामाजिक वर्ग।

हमारी अर्थव्यवस्था मुख्यतः दो कारक पर निर्भर थी :

क) ऐसा औद्योगिक उत्पादन जिसमें बहुत प्रकार के व्यवसायी और कारीगर लगे हुए थे।

ख) शहर का आंतरिक तथा अन्य शहरों के साथ व्यापार।

हम प्रत्येक का अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

प्राचीन शहर के बाजार की चित्रकार की परिकल्पना। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4, इकाई-16।

10.13.4 शहरी व्यवसाय

शहरी व्यवसायों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहले वह जो उत्पादन की किसी न किसी प्रक्रिया से जुड़े थे और दूसरे वह जिनका किसी प्रकार के उत्पादन से कोई संबंध नहीं था। द्वितीय वर्ग मुख्यतः प्रशासनिक अधिकारियों का था और इसका अर्थव्यवस्था पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता था। यह सेवाओं की श्रेणी में आता था। व्यापारी वर्ग भी इस श्रेणी में आता था, परंतु वह वस्तुओं के वितरण और विनिमय द्वारा अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। उत्तरी भारत में अनेक स्थलों की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तन (विशेषकर उत्तरी काली पॉलिश वाले), पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियाँ और खेल तथा मनोरंजन की वस्तुएँ, हड्डी और हाथी दांत की वस्तुएँ; सिक्के व शीशे की वस्तुएँ, मनके, तांबे और लोहे की वस्तुएँ आदि अनेक प्रकार के कारीगर उत्पादन के साक्षी हैं। यह कारीगर उत्पादन निम्न वर्गों में बाँटे जा सकते हैं :

1) मिट्टी के बर्तन बनाना, जिनमें पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियाँ और ईंटें सम्मिलित हैं।
2) बढ़ईगिरी और लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण।
3) धातु कला
4) पत्थर तराशने की कला
5) कांच निर्माण कला
6) हड्डियों और हाथी दांत की वस्तुओं की कला
7) अन्य मिश्रित प्रकार के उद्योगों में माला बनाना, तीर व धनुष बनाना, कंघी, टोकरियाँ, इत्र, तेल व वाद्य यंत्र थे।

10.13.5 व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग

विशिष्ट कारीगर उत्पादन के साथ व्यापार का विकास भी जुड़ा हुआ है। उस काल में देश के अंदर और विदेशों से व्यापार काफी फल-फूल रहा था। अनेक व्यापारी अनेकों वस्तुओं के व्यापार से समृद्ध हो रहे थे। रेशम, मलमल, हथियार, सुगंधित द्रव्य, हाथी दांत, हाथी दांत की वस्तुएँ तथा जेवरात इत्यादि थे।

सिक्कों पर बने हुए चिह्न। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-16।

यह व्यापारी पूरे देश में नदी मार्गों से यात्रा करते थे और पूर्व में ताम्लुक और पश्चिम में भड़ौच से समुद्री यात्राओं से विदेशों में श्रीलंका और बर्मा तक जाते थे। देश के अंदर यह लोग कुछ निश्चित मार्गों का प्रयोग करते थे। इनमें से एक मार्ग श्रावस्ती से प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठण जो महाराष्ट्र में है) तक था, दूसरा मार्ग श्रावस्ती को राजगृह से जोड़ता था, तीसरा मार्ग हिमालय की तलहटी से घूमता हुआ, तक्षशिला को श्रावस्ती से जोड़ता था, चौथा प्रमुख मार्ग काशी को पश्चिमी तटों से मिलाता था। नगर ही दूरस्थ व्यापार के प्रमुख केंद्र थे। क्योंकि यह उत्पादन और वितरण के प्रमुख केंद्र थे और अधिक सुरक्षित थे।

वस्तु-विनिमय के समय का अंत हो रहा था। अब वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए *कहपण* (*कर्षपण*) नामक सिक्का प्रचलन में आ गया था। यह चांदी और तांबे का सिक्का था जिस पर व्यापारी अथवा शिल्पी *संघ* की छाप रहती थी, जो इन सिक्कों के मानदंड का प्रतीक थी। बैंकों की परिकल्पना भी नहीं थी। अतिरिक्त धन से तो सोने के ज़ेवर आदि खरीदे जाते थे या इस धन को बर्तनों में रखकर ज़मीन में दबा कर रखा जाता था या किसी मित्र के पास सुरक्षित रख देते थे।

बोध प्रश्न 4

1) *दस ब्राह्मण जातक* की कथा से आप क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? पाँच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

2) ब्राह्मणों और क्षत्रियों में क्या असमानताएँ थीं?

....

....

....

....

....

3) शूद्रों की पतनशील दशा के कारण बताइए।

....

....

....

....

....

4) वह कौन-से प्रमुख कारक थे जिन्होंने 600 बी.सी.ई. में कृषि के विकास को प्रभावित किया?

....

....

....

....

....

5) ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ?

....

....

....

....

....

6) इस इकाई के अध्ययन काल के प्रमुख व्यापार मार्ग कौन-कौन से थे?

....

....

....

....

....

10.14 सारांश

हमने छठी शताब्दी बी.सी.ई. के भारत में विद्यमान राजनैतिक परिस्थितियों की समीक्षा की। नए सामाजिक-राजनैतिक विकासों से गुजर रहे क्षेत्रों के रूप में उदित हुए *महाजनपद* विशिष्ट

भौगोलिक क्षेत्रों में स्थित थे। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये सात *महाजनपद* – अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, काशी, कोशल तथा वत्स – मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। यह चावल उत्पादन का क्षेत्र है, जबकि ऊपरी गांगेय घाटी गेंहू उत्पादक क्षेत्र है। ऐसा महसूस किया गया है कि भारत में परंपरागत कृषि प्रणाली में चावल की उपज गेंहू की उपज से अधिक रही है। चावल उत्पादक क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व भी अधिक था। *महाजनपदों* के पास धातु जैसे महत्त्वपूर्ण साधन भी मौजूद थे। इन तथ्यों को मध्य गांगेय घाटी के राजनैतिक-आर्थिक शक्ति के केंद्र बनने का कारण माना जा सकता है। इस क्षेत्र में कई *महाजनपदों* के एक-दूसरे के निकटस्थ होने से यह भी संभावना बराबर बनी रहती थी कि कोई महत्त्वाकांक्षी शासक संपन्न पड़ोसी क्षेत्र को हड़पने का प्रयास कर सकता था। साथ ही पड़ोसी क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखना भी आसान था। पंजाब और मालवा के *महाजनपदों* के शासकों को संपन्न क्षेत्रों में पहुंचने के पूर्व रिक्त भौगोलिक क्षेत्रों को पार करना पड़ा होगा। इस प्रकार मध्य गांगेय घाटी के शासकों को अपनी शक्ति सुदृढ़ बनाने में सपाट मैदानी भूभाग तथा घनी बस्तियों ने काफी सहायता की। फिर वह स्वाभाविक ही है कि इस क्षेत्र की शक्ति, मगध, बाद के काल में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरा।

नगर की उत्पत्ति दो निर्णायक प्रक्रियाओं का परिणाम थी जिसमें प्रथम है मनुष्य की प्रकृति के साथ रिश्ता अर्थात् लोहे का उपयोग और धान की रोपाई की तकनीक की जानकारी हो जाना जिसके कारण गंगा घाटी के क्षेत्र में लोगों ने कृषि पैदावार बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली। दूसरी प्रक्रिया थी, छठी शताब्दी बी.सी.ई. में समाज की आंतरिक संरचना में परिवर्तन होना। इसका तात्पर्य यह था कि शासक जातियाँ जैसे कि क्षत्रिय और ब्राह्मण गहपति के साथ मिलकर अतिरिक्त खाद्य उत्पादन और अन्य सामाजिक उत्पाद पर अधिकार प्राप्त कर लेते थे। जिन स्थानों पर घनी व ताकतवर लोग रहते थे, उनको शहर या नगर कहा जाता था। यह निश्चित है कि इन लोगों की उपस्थिति का अर्थ था कि उन स्थानों पर बड़ी संख्या में गरीब लोगों की उपस्थिति होना। इसी कारणवश कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति इस नगरीय दरिद्रता के कारण हुई थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में नगरों पर, पट्टन व नगर जैसे विभिन्न शब्दो के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी साहित्य में नगरों के शान-शौकत एवं आकार के लिए जो विवरण मिलता है, वह अतिरंजित प्रतीत होता है। प्राचीन नगर स्थलों की खुदाई से भी लगता है कि यह साहित्यिक विवरण अतिरंजित है।

इस इकाई में आपने जो अध्ययन किया वह अधिकतर प्रारम्भिक पाली ग्रंथों और उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों के काल के पुरातात्विक स्त्रोतों के आधार पर लिखा गया है। इसी कारण में राज्य के गठन और सामाजिक श्रेणीबद्धता की प्रक्रिया अस्तित्व में आई और पहली सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के मध्य तक इसने काफी महत्त्व प्राप्त कर लिया। समाज में चारों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, *वैश्य* और *शूद्र* के सामाजिक कार्य कलापों पर नये सिरे से बल दिया गया। उत्तर वैदिक काल अथवा सलेटी रंग के मृद्भाण्डों की संस्कृति, जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय मुख्य भूमिका निभाते थे, में कई परिवर्तन हुये। यह परिवर्तन विशेष कर व्यापारी या *वैश्य* वर्गों के कारण थे, जिन्होंने बढ़ते व्यापार से काफी धन कमा लिया था। शूद्रों पर तरह-तरह के नियंत्रण लगाये जा रहे हैं। खाद्यान्न का उत्पादन काफी बढ़ गया था। उत्पादन में वृद्धि के प्रमुख कारण लोहे के औज़ारों का प्रयोग, रोपाई द्वारा धान की खेती तथा धार्मिक आधार पर पशुओं की रक्षा करना था। सामान्य भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का स्थान अब बाजार अर्थव्यवस्था ने ले लिया था। व्यापार तथा धातु के सिक्कों के प्रचलन ने शहरी अर्थव्यवस्था का विकास किया। जहाँ एक ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार पशु पालन और भूमि, वन और पशु पालन से सम्बन्धित साधारण कारीगर उत्पादन था दूसरी ओर शहरी अर्थव्यवस्था बड़ी संख्या में पेशेवरों और शिल्पकारों का वर्चस्व था जो व्यापक प्रसार और अधिक खपत के लिए उत्पादन करते थे। इससे बड़ी गतिशीलता पैदा हुई व व्यापार और

व्यापारिक मार्गों का विस्तार हुआ और एक जटिल ग्रामीण व शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

10.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग

2) (i) X (ii) ✓ (iii) X (iv) ✓

3) आपने अपने उत्तर में बहुत से शब्दों की व्यवस्था करनी चाहिए (जैसे कि *पुर, दुर्ग, निगम, नगर*) इनका प्रयोग साहित्य में किया गया है और इनके अंतर भी बताईये।

4) आपको नये प्रकार की मिट्टी के बर्तनों के दृष्टांत देने चाहिए। (उत्तर काली पॉलिश वाले बर्तन)। सिक्कों का प्रारंभ, और घरों के लिए पक्की ईंटों का उपयोग। यह भी बताइए कि साहित्य में किस प्रकार से नगरों का चित्रण बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है और उसकी पुरातात्विक साक्ष्य ने कैसे पुष्टि की है।

5) (i) ✓ (ii) ✓ (iii) X (iv) ✓

बोध प्रश्न 2

1. आप अपने उत्तर में यह दर्शाइए कि विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों के प्रति साहित्यिक उल्लेख किस प्रकार पुरातत्वशास्त्रियों को इस युग के नगरों की खुदाई में सहायता करते हैं। भाग 10.5 देखिए।

2. भाग 10.9 देखिए।

3) (i) ✓ (ii) X (iii) ✓ (iv) ✓

बोध प्रश्न 3

1. एक इतिहासकार के रूपमें आपको (अ) व्यापारियों तथा असनातनी सम्प्रदायों जैसे नए समूहों के उदय (ब) नई बस्तियों के उदय, तथा (स) जन-साधारण द्वारा की गई लम्बी यात्राओं का उल्लेख करना चाहिए।

2) उपभाग 10.10.3 देखिए।

3) (i) ब (ii) स (iii) द (iv) अ

4) (i) ब (ii) द (iii) अ (iv) स

बोध प्रश्न 4

1) उपभाग 10.12.2 देखें। अपने उत्तर में आपको यह बताना चाहिए कि *जातक* के अनुसार कैसे ब्राह्मणों ने अपना व्यवसाय चुनने की छूट थी और वे कौन-कौन से व्यवसायों में संलग्न थे।

2) उपभाग 10.12.1 देखें। आपके उत्तर में दोनों समूहों की वह भूमिका सम्मिलित होनी चाहिए जो समकालीन साहित्य में मिलती है इनके द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रिया कलापों पर भी ध्यान दीजिए।

3) देखें उपभाग 10.12.4। आपको अपने उत्तर में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार

शक्तिशाली वर्गों द्वारा भूमि पर अधिकार, ऋणबद्धता, कानूनी अधिकार का अभाव, उच्च *वर्ण* के लोगों के जन्म की पवित्रता और शूद्रों के जन्म की अपवित्रता आदि शूद्रों की गिरती हुई दशा के लिए उत्तरदायी थे।

4) उपभाग 10.13.1 देखें। आप के उत्तर में बढ़े हुये कृषि उत्पादन के लिए उत्तरदायी तत्वों जैसे लोहे के औज़ारों का प्रयोग कृषि के लिए पशुधन की रक्षा और रोपाई द्वारा धान की खेती आदि तथ्य सम्मिलित होने चाहिए।

5) उपभाग 10.13.2 देखें। आप अपने उत्तर में यह दिखाएँ कि नई बस्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ।

6) उपभाग 10.3.5 देखें। आप अपने उत्तर में तमलूक और भड़ौच से बर्मा और श्रीलंका के मार्गों की चर्चा करें साथ ही देश के चार आंतरिक प्रमुख मार्गों – श्रावस्ती से प्रतिष्ठान, श्रावस्ती से राजगृह, तक्षिला से श्रावस्ती और काशी से पश्चिमी घाटों तक के विषय में भी लिखें।

10.16 शब्दावली

असनातनी सम्प्रदाय : छठी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान उभरा आंदोलन जिसने वैदिक धर्म को चुनौती दी।

शहरी बस्तियाँ : वे स्थान जहाँ की काफी बड़ी जनसंख्या खाद्योत्पादन न करके अन्य गतिविधियों से जुड़ी होती हैं।

पाली : मगध तथा कौशल के क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा। बौद्ध साहित्य इसी भाषा में रचा गया है।

प्राकृत : अशोक के काल में मगध में बोली जाने वाली भाषा। ऐतिहासिक भारत में प्रथम लिखित सामग्री इसी भाषा में मिली है।

पेरिस : बौद्ध साहित्य में नीची जाति के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

भीतरी प्रदेश : वह क्षेत्र जो शहर के प्रभाव के अंतर्गत आता है और दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

टैक्स (कर) : वह धन जिसको शासक, व्यक्तियों या गुटों से शक्ति के बल पर स्थायी आधार पर प्राप्त करते हैं।

नज़राना : परतंत्रता का बोध कराने के लिए कभी-कभी दिया जाने वाला कर।

राज्य-समाज : ऐसा समाज जिसमें शासक और शक्ति, अमीर और गरीब की उपस्थिति हो।

रोपाई द्वारा खेती : इस विधि के अनुसार, धान के पौधे को एक जगह पर उठाया जाता है और वहाँ से उखाड़ कर उसको पानी भरे खेतों में लगा दिया जाता है। जहाँ पर वह बढ़ता है और फसल देता है। चावल की शुष्क खेती में बीज खेतों में बिखरा कर बोये जाते हैं। रोपाई द्वारा धान की खेती से उपज अधिक होती है।

वेस्स : पाली भाषा में 'वैश्य' के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

जेतावन : बुद्ध को एक व्यापारी द्वारा दान में दी गई वाटिका।

पुक्कुस, निषाद, वेन : तीन अछूत जातियाँ।

सुत्त पिटक : एक बौद्ध ग्रंथ।

***जातक* कथाएँ** : बुद्ध के पिछले जन्मों से जुड़ी हुई कहानियों का संग्रह।

दस ब्राह्मण जातक : *जातक* कथाओं की एक पुस्तक का नाम।

10.17 संदर्भ ग्रंथ

गौंडा, जे. (1969) *ऐशिएँट इंडियन किंगशिप फ्रॉम द रिलिजियस प्वाईंट ऑफ व्यू*, लाईडेन।

लाल, माखन (1984) *सेट्टलमेंट हिस्ट्री एण्ड द राईज ऑफ सिविलाइजेशन इन गंगा-यमुना दोआब फ्रॉम 1500 बी.सी.-300 ए.डी.* तक, दिल्ली।

लॉ, बी.सी. (1973) *ज्योग्राफी ऑफ अली बुद्धिस्म*। रिप्रिंट, वाराणसी।

रॉय, कुमकुम (1994) *द इमरजैंस ऑॅ मोनार्की इन नोर्थ इंडिया*, दिल्ली।

शर्मा, आर. आस. (1983) *मैटिरियल कल्चर एण्ड सोशियल फॉर्मेशन्स इन ऐंशियंट इण्डिया*, दिल्ली।

शर्मा, आर. एस. (1991) *ऐस्पैक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीच्यूशंस इन ऐशियंट इण्डिया*। उरा एडिशन, दिल्ली।

थापर, रोमिला (1996) *फ्रॉम लिनियेज टू स्टेट, दूसरा संस्करण*, दिल्ली।

इकाई 11 बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा अन्य धार्मिक विचार*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप यह जान पाएँगे :

- कि लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में नये धार्मिक विचारों के उदय की पृष्ठभूमि क्या थी;
- कि बौद्ध मत और जैन मत्तों का उद्भव और विकास कैसे हुआ;

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-4 से ली गई है।

- कि इन धर्मों के मुख्य सिद्धान्त क्या थे;
- कि इन धर्मों का समकालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा;
- कि लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में प्रचलित अन्य विधर्मिक विचार क्या थे; और
- इन धार्मिक आंदोलनों का महत्त्व क्या था।

11.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी बी.सी.ई. का बड़ा महत्त्व है क्योंकि यह काल नये धर्मों के विकास से सम्बद्ध है। हम पाते हैं कि इस काल में ब्राह्मणों के अनुष्ठानिक रूढ़िवादी विचारों का विरोध बढ़ रहा था। फलतः बहुत सारे भिन्न मत वाले धार्मिक आंदोलनों का उद्‌भव हुआ। इनमें से बौद्ध मत एवं जैन मत संगठित तथा लोकप्रिय धर्मों के रूप में विकसित हुए। इस इकाई में इन नये धार्मिक विचारों के उद्‌भव और महत्त्व को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई में सबसे पहले, विधर्मिक विचारों के उद्‌भव तथा फैलाव के लिए उत्तरदायी कारणों को विश्लेषित किया गया है। फिर यह बताया गया है कि बुद्ध तथा महावीर ने किस प्रकार से मानव के दुःख का समाधान खोजने के लिए अपने तरीके से प्रयास किए। क्योंकि दोनों धर्मों के उद्‌भव के कारणों में समानता है, इसलिये दोनों धर्मों के कुछ सिद्धांत भी समान हैं। परन्तु इनके कुछ मूल सिद्धान्तों में भिन्नता भी है। इन्हीं मुद्दों पर इस इकाई में विवेचन किया गया है।

इस इकाई में लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उभरे अन्य विधर्मिक विचारों के विषय में भी बताया गया है। अन्त में इस तथ्य का विवेचन किया गया है कि इन नये धार्मिक आंदोलनों का तात्कालिक आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा।

11.2 नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव

नये धार्मिक विचारों का उद्‌भव उस युग की प्रचलित सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अंतर्गत निहित था। अब हम उन आधारभूत कारणों का विवेचन करेंगे जिन्होंने इनके उद्‌भव में भूमिका अदा की।

i) इस काल के नये समाज के संदर्भ में वैदिक धर्म पद्धति जटिल तथा अर्थ-विहीन हो गयी थी। बलि एवं अनुष्ठान अक्सर बड़े पैमाने पर आयोजित किए जाने लगे। बड़े समुदाय के बिखरने के साथ-साथ आयोजनों में लोगों की भागीदारी कम हो गई और समाज के कई समूहों के लिए अर्थहीन हो गई।

ii) बलि-यज्ञों तथा अनुष्ठानों के बढ़ते महत्त्व ने समाज में *ब्राह्मण* समुदाय के प्रभुत्व को स्थापित किया। वे पुजारी तथा अध्यापक, दोनों का कार्य करते थे और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन पर अपने एकाधिकार के कारण वे चार *वर्णों* में विभाजित समाज में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

iii) समकालीन आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नए सामाजिक समुदायों के उद्‌भव में मदद की। ये समुदाय आर्थिक रूप से सम्पन्न थे। शहर में रहने वाले व्यापारियों तथा अमीर खेतिहर समुदायों के पास प्रचुर सम्पत्ति थी। *क्षत्रिय* समुदाय, चाहे वे राजतंत्र में हो अथवा गणतंत्र में, के हाथ में अब पहले से अधिक राजनीतिक शक्ति थी। ये सामाजिक समुदाय उस सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर रहे थे, जो ब्राह्मणों ने वंश के आधार पर निर्धारित की थी। बौद्ध मत तथा जैन मत ने जन्म के आधार पर सामाजिक

व्यवस्था की अवधारणा को कोई महत्त्व नहीं दिया जिसके कारण *वैश्य* इन सम्प्रदायों की ओर आकर्षित हुए। इसी तरह से ब्राह्मणों के प्रभुत्व से क्षत्रिय समुदाय अर्थात् शासक वर्ग भी नाराज़ था। संक्षेप में समाज में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता ने असंतोष उत्पन्न किया और इसी ने नवीन धार्मिक विचारों के उदय में सामाजिक सहयोग प्रदान किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों बुद्ध तथा महावीर *क्षत्रिय* समुदाय से थे। मगर जटिल सामाजिक समस्याओं से जूझते हुए वे जन्म द्वारा निर्धारित सीमाओं को पार कर गए। जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उस समय के समाज में इनके विचार कितने लोकप्रिय हुए तो हम पाते हैं कि राजाओं, बड़े व्यापारियों, अमीर गृहस्थों, ब्राह्मणों तथा वेश्याओं ने भी उनके विचारों के प्रति उत्साह दिखाया।

वे सभी उस नए समाज का प्रतिनिधित्व करते थे जो लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उभर रहा था। तथा बुद्ध, महावीर एवं उस समय के अन्य विचारकों ने अपने-अपने तरीके से एक नई सामाजिक व्यवस्था की समस्याओं का जवाब दिया। इस नई सामाजिक व्यवस्था के लिए वैदिक कर्मकांडी प्रथाओं की प्रासंगिकता समाप्त हो रही थी।

हालांकि प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायों की आलोचना करने वालों में बुद्ध एवं महावीर ही पहले नहीं थे। उनसे पहले दूसरे धार्मिक उपदेशकों जैसे कपिल गोसल, मक्रवलि अजिता केशकेबलिन और पकुघ कच्चायन ने वैदिक धर्म में सुधार के लिए उसकी बुराइयों को उजागर किया था। उन्होंने भी ईश्वर एवं जीवन के विषय में नवीन चिन्तन प्रस्तुत किए। नये दर्शनों को भी प्रचारित किया गया। परन्तु बुद्ध और महावीर ने नये वैकल्पिक धर्मों की व्यवस्था को प्रस्तुत किया।

यह वह पृष्ठभूमि थी जिसमें लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में नवीन धार्मिक व्यवस्थाओं की उत्पत्ति और स्थापना हुई। इन सभी नवीन धार्मिक सम्प्रदायों में बौद्ध सम्प्रदाय तथा जैन सम्प्रदाय सबसे अधिक लोकप्रिय और अच्छी तरह से संगठित थे। अब हम बौद्ध मत और जैन मत के उद्भव तथा विकास का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

11.3 गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति

बौद्ध मत की स्थापना गौतम बुद्ध ने की थी। उनके माता-पिता ने उनका नाम सिद्धार्थ रखा था। और उनके पिता शुद्धोधन शाक्य गण के मुखिया थे तथा उनकी माँ का नाम माया था जो कोलिया गण की राजकुमारी थीं। उनका जन्म नेपाल की *तराई* में स्थित लुम्बिनी (आधुनिक रुमिन्दी) नामक स्थान पर हुआ था। यह जानकारी हमें अशोक के एक स्तम्भ लेख के द्वारा मिलती है। बुद्ध की वास्तविक जन्म तिथि वाद-विवाद का विषय है परन्तु अधिकतर विद्वानों द्वारा इसको लगभग 566 बी.सी.ई. माना गया है। यद्यपि उनका जीवन शाही ठाठ-बाट में व्यतीत हो रहा था। लेकिन यह गौतम के मस्तिष्क को आकर्षित करने में असफल रहा। पारम्परिक स्रोतों के अनुसार एक बूढ़े आदमी, एक बीमार व्यक्ति, एक मृत शरीर तथा एक संन्यासी को देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। मानव जीवन के दुखों ने गौतम पर गहरा प्रभाव डाला। मानवता को दुखों से मुक्त कराने की खोज में उन्होंने 29 वर्ष की आयु में अपने घर, पत्नी तथा बेटे का परित्याग कर दिया। गौतम ने संन्यासी की भांति घूम-घूमकर छः वर्ष व्यतीत किए। उन्होंने वैशाली के अलारा कालमा से ध्यान करने और उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की। परन्तु उनकी यह शिक्षा गौतम को अन्तिम मुक्ति के लिए राह न दिखा सकी, तो उन्होंने पांच ब्राह्मण संन्यासियों के साथ उनका भी परित्याग कर दिया।

गांधार (पाकिस्तान) की ग्रीको-बौद्ध कला में बुद्ध का प्रतिनिधित्व, पहली-दूसरी शताब्दी सी.ई., टोक्यो राष्ट्रीय संग्रहालय, जापान। श्रेय : वर्ल्ड इमेजिंग (टॉक), 2004। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Gandhara_Buddha_(tnm).jpeg)।

बुद्ध ने कठोर संयम को अपनाया और सत्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कठोर यातनाएँ सहन कीं। अंततः इन सबका त्याग करके वे उरूवेला (आधुनिक बोध गया के पास निरंजना नदी के किनारे) गये और एक पीपल के वृक्ष (बौद्ध वृक्ष) के नीचे ध्यान मग्न हो गये। यहाँ अपनी ध्यान अवस्था के उनचासवें दिन उन्हें ''सर्वोच्च ज्ञान'' की प्राप्ति हुई। तब से उनको ''बुद्ध'' (ज्ञानी पुरुष) या ''तथागत'' (वह जो सत्य को प्राप्त करे) कहा जाने लगा। यहाँ से प्रस्थान करके वे वाराणसी के पास सारनाथ में एक हिरन उद्यान पहुँचे जहाँ पर उन्होंने अपना पहला धर्मोपदेश दिया जिसको *''धर्मचक्र प्रवर्तन''* (धर्म के चक्र को घुमाना) के नाम से जाना जाता है। अश्वजित, उपालि, मोगल्लान सारिपत्र और आनन्द – ये बुद्ध के पहले पांच शिष्य थे। बुद्ध ने बौद्ध *संघ* का सूत्रपात किया। उन्होंने अपने अधिकतर धर्मोपदेश श्रावस्ती में दिए। श्रावस्ती का धनी व्यापारी अनथपिण्डिक उनका शिष्य हुआ और उसने बौद्ध मत के लिए उदार दान दिया।

बाएँ : सारनाथ के हिरण उद्यान में बुद्ध अपना पहला उपदेश देते हुए। प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई। श्रेयः ए. के. एस. 1955। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gautama_Buddha_first_sermon_in_Sarnath.jpg)।

दाएँ : तुषिता स्वर्ग में बुद्ध उपदेश। अमरावती, तेलंगाना में सातवाहन काल (लगभग दूसरी शताब्दी सी.ई.) की कलाकृति। इंडियन म्यूजिम, कलकत्ता में संरक्षित। श्रेय : जी. 41 एम.8। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Buddha_Preaching_in_Tushita_Heaven._Amaravati,_Satavahana_period,_2d_century_AD._Indian_Museum,_Calcutta.jpg)।

जल्द ही उन्होंने अपने धर्म प्रवचन के प्रचार के लिए बहुत से स्थानों का भ्रमण करना शुरू कर दिया। वे सारनाथ मथुरा, राजगीर, गया और पाटलिपुत्र गये। बिम्बिसार, अजातशत्रु (मगध), प्रासेनजीत (कोसल) और उदयन (कौशाम्बी) के राजाओं ने उनके सिद्धान्तों को स्वीकार किया तथा वे उनके शिष्य बन गये। वह कपिलवस्तु भी गये और उन्होंने अपनी धाय माता व बेटे राहुल को भी अपने सम्प्रदाय में परिवर्तित किया।

मल्ल गणों की राजधानी कुसि नगर (उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में स्थित कसिया) में 80 वर्ष की आयु में (486 बी.सी.ई.) बुद्ध की मृत्यु हो गई।

कुशीनगर का स्तूप जहाँ बुद्ध के अस्थि अवशेष रखे हैं। श्रेय : प्रिंस रॉय। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Buddha%27s_cremation_stupa,_Kushinagar.jpg)।

आइए अब बुद्ध की उन शिक्षाओं का विवेचन करें जो लोकप्रिय हुईं और जिन्होंने उस समय के धार्मिक विचारों को नवीन दिशा प्रदान की।

11.4 बुद्ध के उपदेश

बाएँ : *अभय-मुद्रा* में बैठे बुद्ध, कुषाण काल (पहली-तीसरी शताब्दी सी.ई.), मथुरा संग्रहालय, उत्तर प्रदेश। श्रेय : बिस्वरूप गांगुली। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Inscribed_Seated_Buddha_Image_in_Abhaya_Mudra_-_Kushan_Period_-_Katra_Keshav_Dev_-_ACCN_A-1_-_Government_Museum_-_Mathura_2013-02-24_5972.JPG)।

मध्य : बुद्ध, लगभग चौथी शताब्दी सी.ई., अमरावती पुरातत्व संग्रहालय, तेलंगाना। श्रेय : बिस्वरूप गांगुली। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Buddha_-_Limestone_-_Circa_4th_Century_AD_-_Amravati_-_Archaeological_Museum_-_Amravati_-_Andhra_Pradesh_-_Indian_Buddhist_Art_-_Exhibition_-_Indian_Museum_-_Kolkata_2012-12-21_2342.JPG)।

दाएँ : उपदेश देते हुए बुद्ध (गुप्त काल)। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4, इकाई-17।

बुद्ध के मूलभूत उपदेश निम्नलिखित में संकलित हैं :

क) चार पवित्र सत्य, और

ख) *अष्टांगिक मार्ग*

क) निम्नलिखित चार पवित्र सत्य हैं :

i) संसार दुःखों से परिपूर्ण है।

ii) सारे दुःखों का कोई न कोई कारण है। इच्छा, अज्ञान और मोह मुख्यतः दुःख के कारण हैं।

iii) इच्छाओं का अन्त मुक्ति का मार्ग है।

iv) मुक्ति (दुःखों से छुटकारा पाना) *अष्टांगिक मार्ग* द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

ख) *अष्टांगिक मार्ग* में निम्नलिखित सिद्धांत समाहित हैं :

i) सम्यक् दृष्टि : इसका अर्थ है कि इच्छा के कारण ही इस संसार में दुःख व्याप्त है। इच्छा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

ii) सम्यक् संकल्प : यह लिप्सा और विलासिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य मानवता को प्रेम करना और दूसरों को प्रसन्न रखना है।

iii) सम्यक् वाचन अर्थात् सदैव सच बोलना।

iv) सम्यक् कर्म : इसका तात्पर्य है स्वार्थरहित कार्य करना।

v) सम्यक जीविका : अर्थात् व्यक्ति को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।

vi) सम्यक प्रयास : इससे तात्पर्य है कि किसी को भी बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कोई भी मानसिक अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छाओं एवं मोह को नष्ट कर सकता है।

vii) सम्यक् स्मृति : इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही सांसारिक बुराइयों से छुटकारा पाया जा सकता है।

vii) सम्यक् समाधि : इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध मत ने *कर्म* के सिद्धान्त पर बल दिया, जिसके अनुसार वर्तमान निर्णय भूतकाल के कार्य करते हैं। किसी व्यक्ति की इस जीवन और अगले जीवन की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। अपने कर्मों को भोगने के लिए हम बार-बार जन्म लेते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नहीं करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस प्रकार बुद्ध के उपदेशों का अनिवार्य तत्व या सार "*कर्म-दर्शन*" है। बुद्ध ने *निर्वाण* का प्रचार किया। उनके अनुसार यही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अंतिम उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दुःखों का अन्त जिससे अन्ततः पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी *निर्वाण* पा सकता है। इसलिए बुद्ध ने उपदेश दिया कि इच्छा को समाप्त करना ही वास्तविक समस्या है। पूजा और बलि इच्छा को समाप्त नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार वैदिक धर्म में होने वाले अनुष्ठानों एवं यज्ञों के विपरीत बुद्ध ने व्यक्तिगत नैतिकता पर बल दिया। बुद्ध ने न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा और न ही नकारा। यह व्यक्ति और उसके कार्यों के विषय में अधिक चिन्तित थे। बौद्ध मत ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया।

इनके अतिरिक्त बुद्ध ने अन्य पक्षों पर भी बल दिया :

- बुद्ध ने प्रेम की भावना पर बल दिया। *अहिंसा* का अनुसरण करके प्रेम को सभी प्राणियों पर अभिव्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि *अहिंसा* के सिद्धांत को बौद्ध मत में अच्छी तरह से समझाया गया था, परन्तु इसको इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना कि जैन मत में।

- व्यक्ति को मध्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। कठोर संन्यास एवं विलासी जीवन दोनों से बचना चाहिए।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा ने उस समय के ब्राह्मणवादी विचारों के सामने एक गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की।

i) बुद्ध के उदार व लोकतांत्रिक विचारों ने सभी समुदायों के लोगों को शीघ्रता से आकर्षित किया। जाति व्यवस्था और पुजारियों की सर्वोच्चता पर बुद्ध के द्वारा किये गये प्रहारों का समाज की नीची जाति के लोगों ने स्वागत किया। सभी जाति तथा लिंग के लोग

बौद्ध सम्प्रदाय को अपना सकते थे। बौद्ध मत के अनुसार व्यक्ति की मुक्ति उसके अच्छे कार्यों के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए, निर्वाण अर्थात् जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किसी पुजारी या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती।

ii) बुद्ध ने *वेदों* की सर्वोच्चता के सिद्धान्त तथा पशु-बलि का विरोध किया। उन्होंने अर्थ-विहीन तथा व्यर्थ अनुष्ठानों का बहिष्कार किया। उन्होंने कहा कि देवताओं को बलि देने से पापों को नहीं धोया जा सकता और न ही किसी पुजारी के पूजा करने से किसी पापी को लाभ होता है। इस प्रकार बुद्ध ने सामाजिक समानता के सिद्धान्तों पर बल दिया।

बौद्ध धर्म का थोड़े ही समय में एक संगठित धर्म के रूप में उद्‌भव हुआ और बुद्ध के उपदेशों को संग्रहीत किया गया। बौद्ध धर्म के इस संग्रहीत साहित्य (उपदेशों का संग्रह-पिटक) को तीन भागों में बांटा गया है :

i) *सुत्त-पिटक* में पांच *निकाय* हैं जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बुद्ध के संवाद संकलित हैं। पांचवें *निकाय* में *जातक* कथायें (बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बद्ध कहानियाँ) हैं।

ii) *विनय पिटक* में भिक्षुओं के अनुशासन से संबंधित नियम हैं।

iii) *अभिधम्म-पिटक* में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है। इन्हें प्रश्न-उत्तर के रूप में लिखा गया है।

11.5 बौद्ध मत का विकास

अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिन्होंने बौद्ध मत के विकास में योगदान दिया और उसको एक लोकप्रिय धर्म बनाया।

11.5.1 बौद्ध मत का विस्तार

अशोक के शासनकाल के दौरान बौद्ध दूत-कर्मों का नक्शा। श्रेय : जेवियर एफ.वी. 1212। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Asoka%CC%A0_Buddhist_Missions.png)।

इसके संस्थापक के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगों ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए मगध, कोसल और कौशाम्बी की जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। शाक्य, वज्जि और मल्ल *जनपदों* की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक

एवं कनिष्क ने बौद्ध मत को राज्य धर्म बनाया और यह मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में भी फैला।

बौद्ध मत जनता के बड़े हिस्सों में लोकप्रिय होने के निम्नलिखित कारण थे :

- व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की समस्याओं का सहज स्वीकृत समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध मत की ओर आकर्षित किया।
- बौद्ध धर्म में संकलित सामाजिक समानता के विचारों के कारण साधारण जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया।
- अनथपिण्डिक जैसे व्यापारी और आम्रपाली जैसी देवदासी ने इस मत को स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इस धर्म में उचित सम्मान प्राप्त किया।
- विचारों को व्यक्त करने के लिए लोकप्रिय भाषा *पाली* के प्रयोग ने भी धर्म के विस्तार में मदद दी। संस्कृत का प्रयोग करने के कारण ब्राह्मण धर्म सीमा में बंध गया था क्योंकि यह जन-भाषा नहीं थी।
- राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी के साथ हुआ। उदाहरण के लिए, ऐसी धारणा है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संगमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और *संघ* के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया।
- बौद्ध मत को प्रभावशाली ढंग से फैलाने में *संघ* की संस्था ने संगठित रूप से योगदान दिया।

सामान्य जन बुद्ध-पादों (बुद्ध के पदचिह्नों) की पूजा करते हुए। लगभग दूसरी शताब्दी सी. ई.। अमरावती पुरातत्व संग्रहालय, गुंटूर, जिला, तेलंगाना। श्रेय : कृष्ण चैतन्य वेलगा। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Worship_scenes_stone_at_ASI_Museum,_Amaravathi.jpg)।

11.5.2 बौद्ध-*संघ* (संस्था के रूप में)

एक प्रारंभिक बौद्ध त्रय। बाएँ से दाएँ : एक कुषाण भक्त, *बोधिसत्व* मैत्रेय, बुद्ध, *बोधिसत्व* अवलोकिटेश्वर और एक बौद्ध भिक्षु। दूसरी-तीसरी शताब्दी, गांधार। श्रेय : कोई पठनीय अपलोड प्रदान नहीं किया गया। विश्व इमेजिंग माना गया (प्रतिलिप्याधिकार/सत्त्वाधिकार दावों के आधार पर)। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:BuddhistTriad.JPG)।

संघ बौद्ध मत की धार्मिक अवस्था थी। यह एक अच्छे प्रकार से संगठित एवं शक्तिशाली संस्था थी और इसने बौद्ध को लोकप्रिय बनाया। 15 वर्ष से अधिक की आयु वाले सभी नागरिकों के लिए इसकी सदस्यता खुली थी चाहे वे किसी भी जाति के हों। किन्तु अपराधी, कुष्ठ रोगी तथा संक्रामक रोग से पीड़ित लोगों को *संघ* की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को *संघ* का सदस्य बनाने के पक्ष में नही थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं उनकी धाय माँ महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पर उन्होंने उनको *संघ* में प्रवेश दिया।

भिक्षुओं को प्रवेश लेने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले या गेरुए रंग का लिबास पहनना पड़ता था। उनसे आशा की जाती थी कि वे नित्य बौद्ध मत के प्रचार के लिए जायेंगे और भिक्षा प्राप्त करेंगे। वर्षा ऋतु के चार महीनों के दौरान वे एक निश्चित निवास स्थान बनाते थे और ध्यान करते थे। इसको आश्रय या वास कहा जाता था। *संघ* लोगों को शिक्षा देने का भी काम करता था। ब्राह्मणवाद के विपरीत बौद्ध मत में समाज के सभी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। स्वाभाविक रूप से जिन लोगों को ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई।

संघ का संचालन जनतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहाँ पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए एक आचार-संहिता थी और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को *संघ* दण्डित कर सकता था।

11.5.3 बौद्ध मत की सभायें

अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के कुछ समय बाद 483 बी.सी.ई. में राजगृह के पास सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध मत की प्रथम सभा हुई। इस सभा की अध्यक्षता, महाकस्यप ने की। बुद्ध की शिक्षा को *पिटकों* में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार हैं :

क) *विनय-पिटक* और

ख) *सुत्त-पिटक*

विनय-पिटक की रचना उपाली के नेतृत्व में की गई और *सुत्त-पिटक* की रचना आनन्द के नेतृत्व में की गई।

प्रथम बौद्ध परिषद। नव जेटावन मंदिर, श्रावस्ती, उत्तर प्रदेश में भित्ति चित्र। श्रेय : फोटो धर्म। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Nava_Jetavana_Temple_-_Shravasti_-_013_First_Council_at_Rajagaha_(9241729223).jpg)।

दूसरी सभा का आयोजन 393 बी.सी.ई. में वैशाली में हुआ। पाटलीपुत्र तथा वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों की कौशाम्बी व अवन्ति के भिक्षुओं के द्वारा बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल घोषित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी समझौता कराने में सभा असफल रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्थायी तौर पर दो बौद्ध सम्प्रदायों-*स्थविरवादी* व *महासंघिक* में हुआ। पहले सम्प्रदाय ने *विनय-पिटक* में वर्णित रूढ़िवादी विचारों को अपनाया और दूसरे ने नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें परिवर्तन किए।

तीसरी सभा का आयोजन अशोक के शासनकाल में मोग्गालिपुततित्स्स की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में किया गया। इस सभा में सिद्धान्तों की दार्शनिक विवेचना को संकलित किया गया तथा इसको *अभिधम्म-पिटक* के नाम से जाना जाता है। इस सभा में बौद्धमत को असंतुष्टों एवं नये परिवर्तनों से युक्त कराने का प्रयोग किया गया। 60,000 ''पथभ्रष्ट'' भिक्षुओं को बौद्ध मत से इस सभा द्वारा निष्कासित कर दिया गया। सप्त उपदेशों के साहित्य को परिभाषित किया गया तथा आधिकारिक तौर पर विघ्न पैदा करने वाली प्रवृत्तियों से भी निपटा गया।

चौथी सभा का आयोजन कश्मीर में कनिष्क के शासन काल में हुआ। इस सभा में उत्तरी भारत के *हीनयान* सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन *पिटकों* पर तीन टीकाओं (भाष्यों) का संकलन इस सभा द्वारा किया गया। इसने उन विवादग्रस्त मतभेद वाले प्रश्नों का निपटारा किया जो श्रीवस्तीवादियों एवं कश्मीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो गये थे।

11.5.4 बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

वैशाली में आयोजित दूसरी सभा में, बौद्ध धर्म का निम्न दो सम्प्रदायों में विभाजन हुआ :

क) *स्थविरवादी*

ख) *महासंघिक*

स्थविरवादी धीरे-धीरे ग्यारह सम्प्रदायों और *महासंघिक* सात सम्प्रदायों में बंट गये थे।

अठ्ठारह सम्प्रदाय *हीनयान* मत में संगठित हुए। *स्थविरवादी* कठोर भिक्षुक जीवन और मूल निर्देशित कड़े अनुशासित नियमों का अनुसरण करते थे। वह समूह जिसने संशोधित नियमों को माना, वह *महासंघिक* कहलाया।

महायान सम्प्रदाय का विकास चौथी बौद्ध सभा के बाद हुआ। *हीनयान* सम्प्रदाय, जो बुद्ध की रूढ़िवादी शिक्षा में विश्वास करता था। इनका जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये विचारों को स्वीकार किया, वे लोग *महायान* सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बुद्ध की प्रतिमा बनायी और ईश्वर की भांति उसकी पूजा की। लगभग प्रथम सदी सी.ई. में कनिष्क के शासन काल के दौरान कुछ सैद्धांतिक परिवर्तन किए गए।

बोध प्रश्न 1

1) *निर्वाण* एवं *कर्म* के बौद्धवादी दर्शन की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बौद्ध धर्म के विकास के लिए उत्तरदायी कारण क्या थे?

....

....

....

....

....

3. निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए :

i) बढ़ते व्यापार एवं वाणिज्य ने विधर्मिक विचारों के उद्भव में मदद की। ( )

ii) बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश बोध गया में दिया। ( )

iii) बुद्ध ने कठोर संन्यासी जीवन का प्रचार किया। ( )

iv) बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते थे। ( )

v) बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे। ( )

11.6 जैन धर्म की उत्पत्ति

जैन श्रुतियों के अनुसार, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिए 24 तीर्थंकर उत्तरदायी थे। इनमें से पहली बाईस की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। परन्तु अन्तिम तीर्थंकर पार्श्वनाथ और महावीर की ऐतिहासिकता को बौद्ध ग्रंथों ने भी प्रमाणित किया है।

11.6.1 पार्श्वनाथ

जैन श्रुतियों के अनुसार 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ बनारस के राजा अश्वसेन एवं रानी वामा के पुत्र थे। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिंहासन का परित्याग कर दिया और वे संन्यासी हो गए। 84 दिन की तपस्या के उपरान्त उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनकी मृत्यु महावीर से लगभग 250 वर्ष पहले सौ वर्ष की आयु में हुई। वह ''पदार्थ'' की अनन्ता में विश्वास करते थे। वह अपने पीछे अपने समर्थकों की काफी बड़ी संख्या छोड़ गए। उनके शिष्य सफेद वस्त्रों को धारण करते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महावीर से पूर्व भी किसी न किसी रूप में जैन धर्म का अस्तित्व था।

11.6.2 महावीर

बाएँ : वर्धमान महावीर की मूर्ति, कीजाकुइलकुडी, मदुरै, तमिलनाडु। श्रेय : फ्रांसिस हैरी रॉय एस। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Vardhaman_Keezhakuyilkudi.jpg)।

दाएँ : हवा में मँडराते और मालाएँ भेंट करते **देवों (स्वर्ग के प्राणियों) के साथ महावीर। स्रोत : ''द जैन स्तूप एण्ड अदर एँटीक्यूटीज ऑफ मथुरा (https://archive.org/details/cu31924012251140)। श्रेय : वी.ए. स्मिथ। चित्र सौजन्य : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Vardhaman.jpg)।**

24वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर थे। उनका जन्म कुण्डग्राम (वासुकुण्ड), वैशाली के पास (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) में 540 बी.सी.ई. में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ *शात्रक क्षत्रिय* गण के मुखिया थे। उनकी माता लिच्छिवी राजकुमारी थी, जिनका नाम त्रिशाला था। वर्धमान ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की और उनका विवाह यशोदा के साथ हुआ। उससे उन्हें एक पुत्री थी। 30 वर्ष की आयु में महावीर ने अपने घर का परित्याग किया और वह संन्यासी हो गये। पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी 13 मास के उपरान्त परित्याग कर दिया तथा बाद में वे ''नग्न भिक्षु'' की भांति भ्रमण करने लगे। घोर तपस्या करते हुए 12 वर्ष तक उन्होंने एक संन्यासी का जीवन व्यतीत किया। अपनी तपस्या के 13वें वर्ष में 42 वर्ष की आयु में उनको ''सर्वोच्च ज्ञान'' (केवालिन्) की प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि ''महावीर (सर्वोच्च योद्धा)'' या *जिन* (विजयी) के नामों से हुई। उनको *निग्रंथ* (बन्धनों से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था। अगले 30 वर्षों तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मगध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विचरण करते थे और वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत

करते। वह अक्सर बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के दरबारों में भी जाते थे। उनकी मृत्यु 72 वर्ष की आयु में पटना के समीप पावा नामक स्थान पर 486 बी.सी.ई. में हुई।

11.7 महावीर की शिक्षायें

महावीर ने पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित किए गए धार्मिक विचारों को ही अधिकतर स्वीकार किया। तथापि उन्होंने उनमें कुछ संशोधन किया और कुछ जोड़ा।

पार्श्वनाथ ने निम्नलिखित चार सिद्धांतों का प्रचार किया था :

क) सत्य

ख) अहिंसा

ग) किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति न रखना,

घ) स्वेच्छा से नहीं दी गई किसी भी वस्तु को ग्रहण न करना।

इसी में महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना भी जोड़ दिया। उनका विश्वास था कि आत्मा (*जीव*) व पदार्थ (*अजीव*) अस्तित्व के दो मूलभूत तत्व हैं। जिनके अनुसार पूर्व जन्मों की इच्छाओं के कारण आत्मा दासत्व की स्थिति में है। लगातार प्रयासों के माध्यम से आत्मा की मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यही आत्मा की अन्तिम मुक्ति (*मोक्ष*) है। मुक्त आत्मा फिर ''पवित्र/शुद्ध आत्मा'' बन जाती है।

जैन धर्म के अनुसार मानव अपने भाग्य का स्वयं रचयिता है और वह पवित्र, सदाचारी एवं आत्म-त्यागी जीवन का अनुसरण करके ही *मोक्ष* को प्राप्त कर सकता है। निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों (तीन गुणव्रत) का अनुसरण करके *मोक्ष (निर्वाण)* प्राप्त किया जा सकता है :

i) उचित विश्वास

ii) उचित ज्ञान, और

iii) उचित कार्य

निर्वाण अर्थात् आध्यात्मिकता की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए उन्होंने घोर वैराग्य और कड़ोर तपस्या पर ज़ोर दिया। उनका विश्वास था कि सृष्टि की रचना किसी सर्वोच्च शक्ति के द्वारा नहीं की गयी। उत्थान-पतन के अनादि नियमों के अनुसार सृष्टि कार्य करती है। उनका विचार था कि सभी चेतन या अवचेतन वस्तुओं में आत्मा का वास है। उनका विश्वास था कि वे सभी पीड़ा अथवा चोट के प्रभाव को महसूस करते हैं। उन्होंने *वेदों* के प्रभुत्व का तिरस्कार किया और वैदिक अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का भी विरोध किया। गृहस्थों एवं भिक्षुओं, दोनों के लिए आचार-संहिता को अनुसरणीय बताया। बुरे कर्मों से बचने के लिए एक गृहस्थ को निम्नलिखित पांच व्रतों का पालन करना चाहिए :

i) परोपकारी होना,

ii) चोरी न करना,

iii) व्याभिचार से बचना

iv) सत्य वचन, और

v) आवश्यकता से अधिक धन संग्रह न करना।

उन्होंने यह निर्देशित किया कि प्रत्येक गृहस्थ को जरूरतमंदों को प्रत्येक दिन पका हुआ भोजन खिलाना चाहिए। उन्होंने प्रचारित किया कि उनके अनुयायियों को कृषि कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि इस कार्य में पेड़-पौधे एवं जन्तुओं का विनाश हो जाता है। एक भिक्षु को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था। उसको सभी सांसारिक चीजों का परित्याग करना होता था। उसको अपने सिर के प्रत्येक बाल को अपने हाथों से उखाड़ना होता था। वह केवल दिन के समय ही चल सकता था जिससे कि किसी भी प्रकार से जीव हत्या न हो या उनको कोई भी हानि न पहुँचे। उनको स्वयं को इस प्रकार से प्रशिक्षित करना होता था कि वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कर सकें। जैन धर्म का विश्वास था कि *मोक्ष* प्राप्ति के लिए एक भिक्षु का जीवन अनिवार्य था। और एक गृहस्थ इसको प्राप्त नहीं कर सकता था।

अनुश्रुतियों के अनुसार महावीर द्वारा शिक्षित किए गए मूल सिद्धान्तों को 14 ग्रंथों में संकलित किया गया था, जिनको *पूर्व* के नाम से जाना जाता है। पाटलिपुत्र के प्रथम सभा में स्थूलभद्र ने जैन धर्म को 12 *अंगों* में विभाजित किया इनको *श्वेताम्बर* सम्प्रदाय ने स्वीकार किया। परन्तु *दिगम्बर* सम्प्रदाय के लोगों ने यह कहकर इसे मानने से इंकार कर दिया कि सभी पुराने धर्म ग्रंथ खो चुके हैं। दूसरी सभा का आयोजन वल्लभि में हुआ और इसमें *उपंगों* के नाम से नयी श्रुतियों को जोड़ा गया। 12 *अंगों* में *आचारंग सूत्र* और *भगवती सूत्र* सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहले में उन नियमों का वर्णन है जिनका जैन भिक्षुओं को अनुसरण करना चाहिए, दूसरे में जैन धर्म के सिद्धान्तों का व्यापक रूप से वर्णन किया गया है।

11.8 जैन धर्म का विकास

महावीर की शिक्षाएँ जनता के बीच बड़ी लोकप्रिय हुई और समाज के विभिन्न तबके इसकी ओर आकर्षित हुए। बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। अब हम देखेंगे कि इस धर्म के विस्तार में किन कारकों ने योगदान दिया और क्या विकास हुए?

11.8.1 जैन धर्म का विस्तार

महावीर के 11 शिष्य थे जिनको *गणधर* अर्थात् सम्प्रदायों का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सुधर्मा अकेला ऐसा *गणधर* था जो महावीर की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम *थेरा* अर्थात् उपदेशक हुआ। उसकी मृत्यु महावीर की मृत्यु के 20 वर्ष पश्चात् हुई। राजा नन्द के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो *थेरों* (आचार्यों) द्वारा किया गया था:

i) सम्भूताविजय, और

ii) भद्रबाहु

छठे *थेरा* (आचार्य) भद्रबाहू मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन थे। धीरे-धीरे महावीर के समर्थक संपूर्ण क्षेत्र में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की कृपा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय जैन भिक्षुओं को सिन्धु नदी के किनारे पाया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म का अनुयायी था और उसने भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर प्रवास किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया। पहली सदी सी.ई. में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रभाव केंद्र बने।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर लोकप्रिय प्राकृत का प्रयोग किया। जैन धार्मिक साहित्य को अर्धमगधी में भी लिखा गया। जनता के लिए सरल एवं घरेलू निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया। जैन धर्म को राजाओं के द्वारा संरक्षण दिये जाने के कारण भी लोगों के मस्तिष्क में इसका स्थान बना।

11.8.2 जैन सभायें

चन्द्रगुपत मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। यह 12 वर्षों तक चला। भद्रवाहु और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में ऋवणबेलगोल की ओर विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलभद्र के नेतृत्व में मगध में ही रह गए। उन्होंने पाटलिपुत्र में 300 बी.सी.ई के आस-पास सभा का आयोजन किया जिसमें इस सभा में महावीर की पवित्र शिक्षाओं को 12 *अंगो* में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन सभा का आयोजन 512 सी.ई. में गुजरात में वल्लमी नामक स्थान पर देवर्धि क्षेमासरमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य पवित्र ग्रंथों को एकत्र एवं उनको पुनः क्रम से संकलित करना था। किन्तु प्रथम सभा में संकलित बारहवां *अंग* इस समय खो गया था। शेष बचे हुए *अंगों* को *अर्धमगधी* में लिखा गया।

11.8.3 सम्प्रदाय

जैन धर्म में फूट पड़ने का समय लगभग 300 बी.सी.ई. माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने को लेकर मतभेद स्पष्ट होने लगे थे। श्रवणबेलगोल से मगध वापस लौटने के बाद भद्रबाहु के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानने से इंकार कर दिया कि 14 *पर्व* खो गये थे। मगध में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढ़ते ही गये। मगध में ठहरने वाले सफेद वस्त्रों को धारण करने के अभ्यस्त हो चुके थे और वे महावीर की शिक्षाओं से दूर होने लगे, जबकि पहले वाले नग्न अवस्था में रहते और कठोरता से महावीर की शिक्षाओं का अनुसरण करते। अतः जैन धर्म का प्रथम विभाजन *दिगम्बर* (नग्न रहने वालों) और *श्वेताम्बर* (सफेद वस्त्र धारण करने वालों) के बीच हुआ।

अगली शताब्दियों में पुनः दोनों सम्प्रदायों में कई विभाजन हुए। इनमें महत्त्वपूर्ण वह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया और ग्रंथों की पूजा करने लगे। वे *श्वेताम्बर* सम्प्रदाय में *थेरापन्थी* कहलाए और *दिगम्बर* सम्प्रदाय में *समैयास* कहलाए। यह सम्प्रदाय छठी शताब्दी सी.ई. के आसपास अस्तित्व में आया।

11.9 अन्य विधर्मिक विचार

इस काल में वैदिक धर्म से भिन्न दूसरे अन्य विचार भी प्रचलित थे। बाद में यह छोटे सम्प्रदायों के रूप में सामने आये। उनमें *आजीवक* सम्प्रदाय के अनुयाइयों की संख्या काफी अधिक थी और ये भली-भांति संगठित थे।

11.9.1 *आजीवक* संप्रदाय
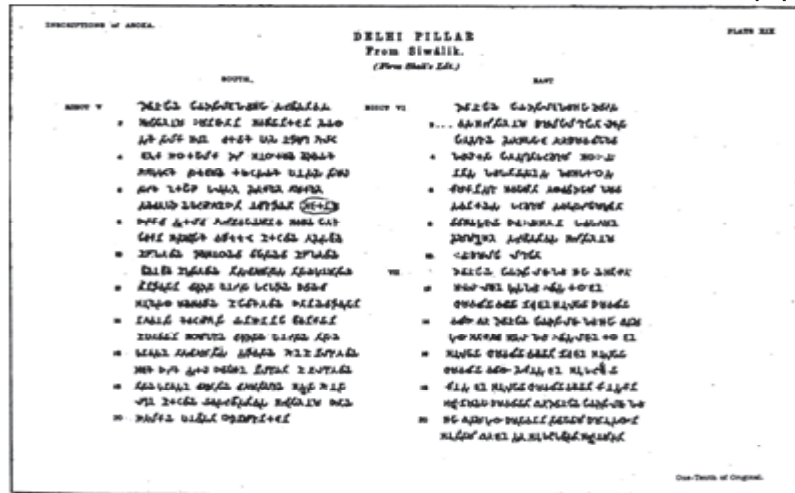
बाएँ : संभवतः *आजीवक* संन्यासियों को दर्शाता खपरा/खपरैल, लगभग चौथी शताब्दी, जम्मू और कश्मीर से प्राप्त/लॉस ऐंजिल्स काउंटी मयूजियम ऑफ आर्ट, कैलिफोर्निया में संरक्षित। स्रोत : http://collections.lacma.org/sites/default/files/remote_images/piction/ma-31397564-O3.jpg। चित्र सौजन्य : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Tile_with_Ajivaka_(%3F)_Ascetics_LACMA_M.82.152.jpg)।

दाएँ : *आजीवक* संप्रदाय का विवरण देता अशोक का सातवां स्तम्भ अभिलेख, लगभग तीसरी शताब्दी बी.सी.ई। स्रोत : https://archive.org/details/inscriptionsaso00hultgoog। श्रेय : अशोक, अलेक्जेंडर कनिंघम, यूजेन हॉल्ट्ज़्च। चित्र : सौजन्य विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashoka_pillar_delhi2.png)।

आजीवकों के विषय में कहा जाता है कि वे *शूद्र* संन्यासी थे। ऐसा कहा जाता है कि इस सम्प्रदाय का संस्थापक नन्द वच्च था। जिसका अनुसरण किस संकिच्च के द्वारा किया गया। तीसरा धार्मिक प्रमुख मक्खलि गोसल अथवा मंथलिपुत्र गोशाल था, जिसने इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाया। उसने *कर्म* की अवधारणा को नकारा और तर्क दिया कि मनुष्य *नियति* के अधीन है। *आजीवक* विश्वास करते थे कि किसी व्यक्ति के विचार एवं कार्य पहले ही निश्चित हो जाते हैं। (जन्म से पूर्व निश्चित होना)। वे विश्वास नहीं करते कि मानव के दुखों का कोई विशेष कारण है या फिर इन दुःखों से मुक्ति मिल सकती है। वे मानव के प्रयासों में भी विश्वास नहीं करते थे और उनका विचार था कि सभी प्राणी मात्र अपने भाग्य के समक्ष असहाय हैं। गोशाल ने कहा कि सभी को दुःखों से होकर गुजरना पड़ता है और इसका अन्त निश्चित चक्र को पूरा करने पर ही होगा। कोई भी मानव प्रयास समय की परिधि को न कम कर सकता है और न बढ़ा सकता है। उनके अनुयायी कोसल की राजधानी श्रावस्ती के आस-पास केंद्रित थे।

आजीवक भिक्षुओं का निवास-स्थान कही जाने वाली गुफाएँ, लगभग तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. (गया जिला, बिहार के समीप बाराबर में स्थित)। श्रेय : थॉमस फ्रेज़र पेप्पे। स्रोत : ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन। चित्र : विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Sudama_and_Lomas_Rishi_Caves_at_Barabar,_Bihar,_1870.jpg, https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Lomas_Rishi_entrance.jpg)।

11.9.2 अन्य विचार

चार्वाक सम्प्रदाय के लोग पूर्ण भौतिकवादी थे। उनका विचार था कि मनुष्य मिट्टी का बना है और मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए मानव जीवन का उद्देश्य भौतिक सुख का भोग करना होना चाहिए। *पुराण* कस्यप ने *अक्रिय* या क्रियाहीनता दर्शन का प्रचार किया। वह एक ब्राह्मण शिक्षक थे और उनका मुख्य सिद्धान्त था कि कार्य गुण दोष का निर्धारण नहीं करता। उनके अनुसार यदि कोई व्यक्ति सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं का वध कर दे तब भी वह किसी पाप का भागीदार नहीं होगा। इसी भांति वह कोई पुण्य नहीं प्राप्त करेगा चाहे वह कितने भी अच्छे कार्य करे यहाँ तक कि वह गंगा के किनारे भी खड़ा रहे। इसी प्रकार आत्म-नियंत्रण, दीनता और सत्यवादिता उसके लिए कोई भी गुण प्राप्त करने में सहायक नहीं होगी। अजित केशकंबलिन ने भी प्रचारित किया कि मृत्यु के प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाती है और मृत्यु के बाद आगे कोई जीवन नहीं होता। वह इस बात में कोई विश्वास नहीं करते थे कि कोई अच्छा या बुरा कार्य करता है या किसी के अधिकार में उच्च तथा अलौकिक शक्तियाँ हैं। इस सम्प्रदाय के अनुसार सांसारिक सुखों को भोगने में कोई बुराई नहीं है और वध करने में भी कोई पाप नहीं है। पकुध कच्चायन ने अशाश्वतवाद के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया जिसके अनुसार सात तत्व हैं जो स्थिर हैं और जो किसी भी प्रकार से दुःख या सुख में योगदान नहीं करते। शरीर अंततः इन सात तत्वों में विलीन हो जाता है।

11.10 नए धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

नये धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव एवं विकास ने समकालीन सामाजिक जीवन में कुछ विशेष परिवर्तन किए। उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं :

i) इस काल में सामाजिक समानता के विचार को लोकप्रिय किया गया। बौद्ध मतालम्बियों तथा जैनियों ने जाति-व्यवस्था को कोई महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने विभिन्न जातियों के लोगों को अपने धर्म में स्वीकृत किया। युगों से समाज में ब्राह्मणों के स्थापित प्रभुत्व को यह एक महान चुनौती थी। बौद्ध व्यवस्था में महिलाओं को स्वीकार करने का समाज पर एक विशेष प्रभाव हुआ क्योंकि इस कार्य ने महिलाओं को पुरुषों के समान स्थान समाज में प्रदान किया।

ii) ब्राह्मणिक साहित्य में व्यवसाय करने वाले लोगों को छोटा स्थान दिया गया था। समुद्र यात्रा की भी निंदा की गई थी। लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने जाति व्यवस्था को कोई महत्त्व नहीं दिया और न ही समुद्र यात्रा को गलत समझा। इसलिए इन नये धर्मों ने व्यापारिक समुदाय को काफी उत्साहित किया। इससे भी अधिक, इन दोनों धर्मों के द्वारा *कर्म* की अवधारणा पर भविष्य के जीवन के लिए बल देना अप्रत्यक्ष रूप से व्यापारी समुदाय की गतिविधियों के लिए अनुकूल था।

iii) नये धर्मों ने प्राकृत, पाली और *अर्ध-मगधी* जैसे भाषाओं को महत्त्व दिया। बौद्ध एवं जैन दर्शनों की इन भाषाओं में विवेचना की गई और बाद में धार्मिक पुस्तकों को स्थानीय भाषाओं में लिखा गया। इसने स्थानीय भाषाओं के साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जैनियों ने अपने धार्मिक उपदेशों को *अर्ध-मगधी* भाषा में लिखकर प्रथम बार साहित्य को मिश्रित भाषा में लिखने का स्वरूप प्रदान किया।

बोध प्रश्न 2

1) जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्त क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) *आजीवक* कौन थे? उनके विचार क्या थे? पांच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

3) निम्न कथनों में कौन-सा कथन (✓) सही है और कौन-सा गलत (×) निशान लगाइए।

i) पार्श्वनाथ के चार सिद्धान्तों में महावीर ने *ब्रह्मचर्य* का सिद्धान्त जोड़ा।

ii) महावीर सर्वोच्च रचयिता में विश्वास नहीं करते थे।

iii) *निर्वाण* की अवधारणा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म में एक ही है।

iv) महावीर के सिद्धान्तों के मूल ग्रंथों को *पूर्वों* के नाम से जाना जाता है।

v) विधर्मिक सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के कारण स्थानीय भाषाओं के साहित्य का विकास हुआ।

11.11 सारांश

इस इकाई में आपने लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तरी भारत में नवीन धार्मिक विचारों के उद्‌भव और स्थापित होने के विषय में पढ़ा। समकालीन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं ने इन नवीन धार्मिक विचारों के प्रादुर्भाव में विशेष योगदान दिया। इनमें से बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म अत्यधिक लोकप्रिय हुए। कुछ आपसी मतभेद होने के बावजूद दोनों धर्मों ने मानवता, नैतिक जीवन, *कर्म* और *अहिंसा* पर ज़ोर दिया। जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणिक प्रभुत्व, पशु-बलि और ईश्वर के विचार के दोनों ही कठोर आलोचक थे। स्थापित वैदिक धर्म के लिए यह सीधी चुनौती थी। इसके अतिरिक्त अन्य भिन्नमत सम्प्रदायों जैसे *आजीवकों* और उनके विचारों के विषय में भी आपने जाना। इन सबके कारण सामान्य जन के दृष्टिकोण में एक विशेष परिवर्तन हुआ और इसके परिणामस्वरूप उन्होंने युगों पुरानी ब्राह्मणिक धर्म की सर्वोच्चता के प्रभुत्व पर प्रश्न लगाना आरंभ कर दिया।

11.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको यहाँ लिखना है कि बुद्ध का *निर्वाण* व *कर्म* से क्या तात्पर्य था। देखिए भाग 11.4।

2) आपको अपने उत्तर में बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पक्ष, इसका सामाजिक समानता तथा लोकप्रिय भाषा पर बल आदि को सम्मिलित करना चाहिए। देखिए उपभाग 11.5.1।

3) i) ✓, ii) ×, iii) ×, iv) ✓, v) ×

बोध प्रश्न 2

1) आपको पांच सिद्धांतों अर्थात् सत्य, अहिंसा, कोई सम्पत्ति नहीं रखना, कुछ ग्रहण न करना, *ब्रह्मचर्य* का पालन करना – के बारे में बताना है और फिर उचित विश्वास, उचित ज्ञान और उचित कार्य जैसे सिद्धान्तों का अनुसरण करके कोई कैसे *निर्वाण* प्राप्त कर सकता है का भी विवेचन करना है। देखिए भाग 11.7।

2) नन्द वच्च ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की, उसको *शूद्र* संन्यासियों का सम्प्रदाय कहा जाता है। उनका विश्वास था कि व्यक्ति प्रकृति के नियमों के नियंत्रण में है। देखिए भाग 11.9।

3) i) ✓, ii) ✓, iii) ×, iv) ✓, v) ✓,

11.13 शब्दावली

अहिंसा : किसी की हत्या न करना और न ही हिंसा करना।

विधर्मिक : गैर रूढ़िवादी।

भौतिकवाद : भौतिक वस्तुओं पर अधिक बल देना।

पिटक : बौद्ध धर्म के धार्मिक ग्रंथ।

पूर्व : जैनियों के धार्मिक ग्रंथ।

सम्प्रदाय : मत एवं विश्वास के आधार पर लोगों या गुटों का एकीकरण।

तीर्थंकर : जैन धर्म के वे विद्वान या गुरु जिन्होंने सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति की।

11.14 संदर्भ ग्रंथ

ऑलचिन, ब्रिजेट तथा रेमंड (1988) *द राइज ऑफ सिविलाइजेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान*, नई दिल्ली।

घोष, ए. (1973) *द सिटी इन अर्ली हिस्टॉरिकल इंडिया*, शिमला।

कोसाम्बी, डी. डी. (1987) *द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एँशियंट इंडिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन*, नई दिल्ली।

सराओ, के. टी. एस. तथा जेफ़री, डी. लौंग (2017) *बुद्धिज़्म एण्ड जैनिज़्म*, नीदरलैंड।

शर्मा, आर. एस. (1983) *मटीरियल कल्चर्स एण्ड सोशल फॉरमेशंस इन ऐशियंट इंडिया*, नई दिल्ली।

शर्मा, आर. एस. (1995) *पर्सपेक्टिव इन सोशल एण्ड इकॉनोमिक हिस्टरी ऑफ एँशियंट इंडिया*, नई दिल्ली।

वाग्ले, एन. के. (1966) *सोसाइटी एट द टाइम ऑफ द बुद्धा*, बॉम्बे।

इकाई 12 सिकंदर का आक्रमण*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे:

- पश्चिमोत्तर भारत में अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण की जानकारी;
- अलेक्ज़ेंडर के बारे में विभिन्न स्रोतों और उनके महत्व;
- पोरस समेत भारत के विभिन्न गणराज्यों से अलेक्ज़ेंडर के युद्ध के बारे में;
- एरियन के *इंडिके* के विषय में;
- अलेक्ज़ेंडर के भारत पर आक्रमण के प्रभाव के बारे में;
- चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक (यूनानी) राजदूत मेगस्थनीज़ के बारे में; और
- भारत और ग्रीक (यूनानी) संसार के बीच उभरते सम्बन्धों के बारे में।

12.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में से एक इकाई में आपने लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तर भारत में उभरे *जनपदों* और *महाजनपदों* के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र की ओर ध्यान देंगें और जानेगें कि कैसे यह चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण से संबंधित घटनाओं के कारण जीवंत गतिविधियों का क्षेत्र बन गया।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. में भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र विभिन्न रियासतों के बीच *संघर्ष* का स्थल था। कंबोज, गांधार और मद्रास आपस में एक-दूसरे के साथ लड़ते रहे। चूँकि एक शक्तिशाली राज्य का अभाव था इसलिए पश्चिमोत्तर क्षेत्र की रियासतों को एक राज्य में

* डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली।

संगठित नहीं किया जा सका। इसी राजनीतिक अस्थिरता के कारण फ़ारस के एकेहमिनियन राजा इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए। 516 बी.सी.ई. में एकेहमिनियन (हखमनी) शासक डेरियस ने भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र पर आक्रमण किया और पंजाब, सिंध और सिन्धु नदी के पश्चिम भूभाग को जीत लिया। इस समय ईरान के पास कुल 28 *क्षत्रप* थे जिनमें से भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र बीसवाँ प्रांत था। भारतीय *क्षत्रपों* में सिन्धु नदी का पश्चिम भाग था जिसमें सिंध, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश और पंजाब का हिस्सा शामिल था। ईरान द्वारा एशिया क्षेत्र से प्राप्त राजस्व का एक तिहाई हिस्सा बहुमूल्य सोने के रूप में अकेले इसी क्षेत्र से आता था। लगभग पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. में ग्रीक (यूनानियों) के खिलाफ लड़ने वाली फ़ारसी सेनाओं में भारतीय प्रांतों ने अपने सैनिकों की सेवाएँ प्रदान कीं। 330 बी.सी.ई. में एलेक्ज़ेंडर के आक्रमण तक भारतीय क्षेत्र का यह हिस्सा ईरानी साम्राज्य का अंग बना रहा।

ईरानियों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप ईरान और उत्तर-पश्चिम भारत के बीच बहुत सारे सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए। ईरानी विद्वानों द्वारा एक नई लिपि की शुरुआत हुयी जिसे खरोष्ठी लिपि कहा जाता है। यह अरबी की तरह दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी। यह एकेहमिनियन (हखमनी) साम्राज्य की एरामाइक लिपि पर आधारित है। उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में प्राप्त फ़ारसी सिक्कों के आधार पर इन दो क्षेत्रों के बीच व्यापार के संकेत भी मिलते हैं।

12.2 स्रोत

विभिन्न स्रोतों द्वारा अलेक्ज़ेंडर के युग के इतिहास की जानकारी मिलती है। प्रारम्भिक तौर पर ये स्रोत प्रभावशाली और उल्लेखनीय लगते हैं। एरियन और कर्टियस रूफस द्वारा लिखा इस काल का लंबा इतिहास, प्लूटार्क द्वारा लिखी जीवनी, डायोडोरस सिरिकुलस की *बिब्लियोथिका* और स्ट्रैबो की *जियोग्राफ़ी* (*Geography*) के अंत के अनुभागों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। परन्तु ये सभी अनुवर्ती काल में लिखे गए इसलिए पर्याप्त होने के बावजूद इन प्राथमिक स्रोतों पर सवाल उठाया जाता है। उदाहरणतया, प्रथम सदी बी.सी.ई. की तीसरी तिमाही में डियोडोरस की रचनाओं को दिनांकित किया जाता है, एवं लगभग दूसरी शताब्दी में प्लूटार्क और एरियन की। इस प्रकार अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु और उसके शासनकाल से जुड़े प्रथम सारख्यानों के बीच दो-तीन शताब्दियों का अंतर है। इनमें से कुछ विवरणों पर काल्पनिक होने का आरोप लगाया गया है कि यह बयानबाज़ी, तुच्छ विवरणों से ओतप्रोत एवं अतिरंजित हैं, और अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त हैं। फिर भी भारत के संदर्भ में विद्वानों को विश्वसनीय और उपयोगी जानकारी उपलब्ध करने में ये स्रोत महत्वपूर्ण हैं। एरियन का वर्णन अलेक्ज़ेंडर के युग के सम्बन्ध में सबसे गंभीर व्याख्या है। एरियन एक आम सैनिक था जिसने अलेक्ज़ेंडर की याद में विश्वसनीय स्रोतों का चयन करके उन्हें ईमानदारी से पेश करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उसकी पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ अलेक्ज़ेंडर* टॉलेमी, एरिस्टोबुलस, नियरकस और एराटोस्थिनिस के विवरणों पर आधारित थी। टॉलेमी, एरिस्टोबुलस और नियरकस अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के प्रत्यक्षदर्शी और कभी-कभी सक्रिय भागीदार भी थे। एराटोस्थिनिस, मेगस्थनीज़ और नियरकस के स्रोतों पर आधारित *'इंडिके'* दक्षिणी महासागर में अलेक्ज़ेंडर के बेड़े की यात्रा का वर्णन करता है।

क्युन्ट्स कर्टियस रूफ़स (लगभग प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.) – वह अलेक्ज़ेंडर महान पर एकमात्र मौजूद *लैटिन* (*Latin*) *मोनोग्राफ* (विनिबंध) का लेखक है, जिसे आमतौर पर *हिस्टोरिया अलेक्जेंड्री मैगनी* कहा जाता है। यह एशिया में अलेक्ज़ेंडर के कारनामों का सबसे प्राचीन वर्णन है।

प्लूटार्क (जन्म 46 बी.सी.ई.) – प्लूटार्क एक यूनानी लेखक, मुख्यतः जीवनी लेखक था। इनकी रचनाओं ने 16वीं-19वीं शताब्दियों से यूरोप में इतिहास लेखन के विकास को काफी प्रभावित किया।
स्ट्रैबो (जन्म 64 बी.सी.ई.) – स्ट्रैबो एक यूनानी भूगोलशास्त्री और इतिहासकार था जिसका विख्यात *जियोग्राफ़ी* एक ऐसा कार्य है जो ऑगस्टस (27 बी.सी.ई. – 114 बी. सी.ई.) के शासनकाल के दौरान रोमन और ग्रीक (यूनानियों) को ज्ञात सभी प्रकार के लोगों और देशों की जानकारी समेटे हुए है।
कैसेंड्रेया के एरिस्टोबुलस – यह अलेक्ज़ेंडर के अभियानों में उसके साथ रहा। इसने एक वास्तुकार और सैन्य अभियन्ता के रूप में अलेक्ज़ेंडर को सेवाएँ प्रदान कीं।
डायोडोरस सैल्यूकस (प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.) – यूनानी इतिहासकार।
नियरकस (जन्म 312 बी.सी.ई.) – यह अलेक्ज़ेंडर की मैसेडोनियन सेना में सैन्य अधिकारी था। अलेक्ज़ेंडर के आदेश पर इन्होने पश्चिमी भारत में हाइडैस्पीस नदी से फ़ारस की खाड़ी तक और यूफ़्रेट्स से बेबीलोन तक का सफर तय किया।
एरैसटोसथिनिस (जन्म 276 बी.सी.ई.) – साइरेन के एरैसटोसथिनिस एक यूनानी वैज्ञानिक लेखक, खगोलशास्त्री और कवि थे।

12.3 मेसिडोनिया का अलेक्ज़ेंडर (सिकंदर)

प्राचीन यूनानी संसार में ओलम्पस पर्वत के दक्षिण में रहने वालों और इसके उत्तर में रहने वाले मैसेडोनियन लोगों के बीच अंतर था। उत्तर में रहने वाले लोगों को 'मकेडोन्स' कहा जाता था, यह मूल से एक यूनानी शब्द है। चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के अंत तक यूनानी लोगों ने उन्हें 'बर्बर लोगों' के रूप में देखा जो यह दर्शाता था कि वे लोग उन्हें यूनानियों के रूप में नहीं देखते थे।

मैसेडोनिया

मैसेडोनिया को कभी-कभी मैसेडोन भी कहा जाता है। यह प्राचीन काल में एक नृवंशतया रूप से मिश्रित क्षेत्र था, इसके दक्षिण में यूनानी राज्य और अन्य दिशाओं में आदिवासी राज्य थे। उत्तर और पश्चिम में बाल्कन के पहाड़ी क्षेत्र थे जबकि दक्षिणी क्षेत्र उपजाऊ जलोढ़ मैदान था। ये दोनों क्षेत्र आपस में *संघर्षरत* थे। पहली बार इन दोनों क्षेत्रों को अलेक्ज़ेंडर के पिता फिलिप ने एकजुट किया था। चौथी शताब्दी बी. सी.ई. में मैसेडोनियन और यूनानी नृवंश प्रतिद्वंद्विता में संलग्न थे। ये दोनों वर्ग एक-दूसरे से भिन्न एवं पृथक थे। फिलिप द्वितीय ने 337 बी.सी.ई. में यूनानियों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। अलेक्ज़ेंडर को अक्सर या गलती से यूनानी के रूप में जाना जाता है जो वह नहीं था। वह हमेशा यूनानियों से सावधान रहता था। मेसेडोनियन लोगों की उपेक्षा यूनानी अधिक परिष्कृत थे और इनकी सांस्कृतिक विरासत भी अलग थी।

अलेक्ज़ेंडर का जन्म जुलाई 356 बी.सी.ई. में हुआ। वह मैसेडोनिया के शासक फिलिप द्वितीय का बेटा था। 337 बी.सी.ई. तक फिलिप द्वितीय ने यूनानी राज्यों का *संघ* बनाकर यूनानी क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित किया जिसे *लीग ऑफ द कोरिन्थ* कहा जाता था। इस मेसीडोनियन शासक के अंतर्गत यह *संघ* एकजुट हुआ और लीग के प्रति निष्ठावान भी।

फ़ारस के युद्ध के दौरान आर्थेनियन लोगों की पीड़ा और उनके मंदिरों के विनाश का बदला लेने के लिए फिलिप ने फ़ारस पर आक्रमण की घोषणा की ताकि एशिया माइनर के यूनानी क्षेत्रों को मुक्त करवा सके। 336 बी.सी.ई. में उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु के बाद यूनानी राज्यों ने मैसेडोनियन शासन से विद्रोह कर दिया जिसे अलेक्ज़ेंडर द्वारा कुचल दिया गया। 334 बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर ने एक शक्तिशाली सेना के साथ फ़ारस पर आक्रमण किया और फ़ारस के राजा डेरियस को हराया।

ए. के. नारायण ने टार्न की कृति को आधार मानकर कहा है कि उस समय चूँकि भारत ईरानी साम्राज्य का हिस्सा था, इसलिए फ़ारसी साम्राज्य के अपने विजय अभियान में अलेक्ज़ेंडर की दिलचस्पी भारत के इस क्षेत्र में बढ़ गयी। हालाँकि एरियन ने अलेक्ज़ेंडर को इससे कहीं अधिक महत्वाकांक्षी माना है तथा उसे भारत पर अधिकार प्राप्त करने का इच्छुक बताया है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह सिंधु नदी पार नहीं करता, क्योंकि सिंधु नदी भारत और एरियाना के बीच की सीमा थी। उसमें भारत को जीतने का जोश था। एरियाना भारत के पश्चिम में स्थित क्षेत्र था जो फ़ारसियों के कब्ज़े में था। डेरियस प्रथम के साम्राज्य की पूर्वी सीमा सिन्धु नदी थी।

भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान अत्यधिक उल्लेखनीय हैं जिनमें कई विजय शामिल हैं। 327 बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर बेक्ट्रिया से हिंदुकुश पर्वत पार कर सिन्धु नदी के मैदान की ओर बढ़ा। उसकी सेना के एक हिस्से ने हिंदुकुश के संचार मार्ग पर अधिकार कर लिया और सेना के दूसरे हिस्से ने, जिसका नियंत्रण स्वयं उसके पास था, स्वात क्षेत्र में प्रवेश कर लिया। इसके लिए उसे इन पहाड़ी इलाकों के लोगों के साथ भयंकर लड़ाई लड़नी पड़ी। उसने स्वात को अपने अधीन कर लिया। 326 बी.सी.ई. में दोनों सेनाएँ सिंधु पर मिलीं और सिंधु को पार कर तक्षशिला तक पहुँच गई। भारतीय उत्तर-पश्चिम क्षेत्र की राजनीतिक स्थिति अलेक्ज़ेंडर के लिए उपयुक्त थी क्योंकि यह भूभाग छोटे स्वतंत्र राजशाही और आदिवासी गणराज्यों में विभाजित था। झेलम और चेनाब के मध्य क्षेत्र पर शासन करने वाले पोरस सबसे प्रसिद्ध राजा थे। पोरस और अलेक्ज़ेंडर की भिडंत और उनके बीच का संवाद इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। सिकंदर ने सिंध को पार किया और तक्षशिला के राजकुमार आम्भी से मिला। आम्भी और पोरस दोनों मिलकर अलेक्ज़ेंडर को हरा सकते थे लेकिन वे एक संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके। आम्भी ने अलेक्ज़ेंडर का विरोध नहीं किया बल्कि भव्य उपहारों के साथ उसका स्वागत किया। अलेक्ज़ेंडर ने आम्भी राज्य को कोई क्षति न पहुँचाते हुए वहाँ से शांतिपूर्व पलायन किया परन्तु फिलिप्स को वहाँ का *क्षत्रप* नियुक्त किया और अपना सैन्य दुर्ग निर्मित किया। वह झेलम (हाइडस्पिस) के लिए रवाना हुआ। वह पोरस से मिलने का इच्छुक था जिसने आत्मसमर्पण करने से मना कर दिया था। मौसम की स्थिति अनुकूल नहीं थी, पूरा क्षेत्र बर्फ से ढ़का हुआ था। इन कठिन परिस्थियों में भी वह झेलम को पार करने में कामयाब रहा और नदी के दूसरे तट पर तैनात पोरस की सेना पर हमला कर दिया। पोरस घायल होकर पीछे हट गया किन्तु वह पोरस के सैन्य कौशल और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और उसने पोरस को उसका क्षेत्र वापिस करने का फैसला किया। तत्पश्चात् वे सहयोगी बन गये। अलेक्ज़ेंडर की जीत महत्वपूर्ण थी, उसने अपनी जीत का उत्सव मनाने के लिए दो नगरों 'नैसिया' और 'ब्यूसेफला' की स्थापना की। उसने अपने प्रिय घोड़े ब्यूसेफला के नाम पर इस नगर का नाम रखा था जो युद्ध की थकान के कारण मर गया था।

भारत में अलेक्ज़ेंडर के विजयाभियान। स्रोतः द लोएब क्लासिकल लाइब्रेरी, एरियन "एनाबसिस ऑफ़ अलेक्ज़ेंडर'। चित्र सौजन्यः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:AlexanderConquestsInIndia.jpg).

'अलेक्ज़ेंडर और पोरस' : चार्ल्स ले ब्रुन (1673) द्वारा बनाई तस्वीर जिसमें हाइडस्पिस की लड़ाई में अलेक्ज़ेंडर और पोरस (पुरु) को दिखाया गया है। चित्र सौजन्यः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Le_Brun,_Alexander_and_Porus.jpg)।

एलेक्ज़ेंडर ने बेबीलोन में एक टकसाल से युद्ध के स्मरण में सिक्के भी जारी किये।

लगभग 322 बी.सी.ई. में भारतीय उपमहाद्वीप में अभियानों की स्मृति में बेबीलोन में मुद्रित अलेक्ज़ेंडर का विजय सिक्का। अग्र-भागः नाइक द्वारा अलेक्ज़ेंडर की ताजपोशी। पार्श्व-भाग : अपने हाथी पर बैठा सिकन्दर राजा पोरस पर हमला करते हुए। चांदी धातु। ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन। श्रेयः पी.एच.जी.कॉम। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/ wiki/ File:Alexander_victory_ coin_Babylon_silver_c_322_BCE.jpg)।

अलेक्ज़ेंडर अपने अभियान में आगे बढ़ता रहा और चेनाब तथा रावी नदी (एससिनेस और हाइड्रोटस) पार कर ली। उसने कई राज्यों को हराया और पंजाब के कथ राजाओं के साथ भयानक लड़ाई लड़ी। उन्होंने आत्मसर्मपण नहीं किया और वे बहादुरी से लड़े किन्तु अलेक्ज़ेंडर ने उनका पहाड़ी किला जीत लिया और उसको तहस-नहस कर दिया। एक पड़ोसी राजा ने उसको ब्यास नदी के पूर्व में नंद वंश की शक्ति के बारे में बताया। पोरस ने भी इस जानकारी को पुख्ता किया। अलेक्ज़ेंडर आगे बढना चाहता था लेकिन उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया।

इसलिए उसे झेलम की ओर लौटने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसने झेलम और ब्यास के बीच का प्रदेश पोरस को सौंप दिया और अपनी वापसी यात्रा के लिए झेलम की ओर रवाना हुआ। झेलम और चेनाब के *संगम* पर उसने अपना आखिरी महत्वपूर्ण अभियान मालव राजतंत्रों (मल्लोई) के खिलाफ़ लड़ा। मालव और शुद्रक् गणराज्यों ने उसके खिलाफ एकजुट होने की कोशिश की किन्तु सफल नहीं हो सके। उसने शुद्रकों को मालवों का साथ देने से रोक दिया। मालवों ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी लेकिन हार गए। शुद्रक भी अलेक्ज़ेंडर के आगे टिक नहीं सके।

ऐसा माना जाता है कि बेबीलोन में अलेक्ज़ेंडर के आखिरी दिनों के दौरान पोरस के साथ मिलकर चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य ने पंजाब को एकजुट करने का प्रयास किया। बाद में मौर्यों ने गंगा घाटी के नंद वंश पर आक्रमण करके अपना साम्राज्य स्थापित किया।

324 बी.सी.ई. में भारत में अपने अभियानों के तीन साल बाद अलेक्ज़ेंडर फ़ारस में सूसा में वापस आ गया। अगले वर्ष बेबीलोन में उसकी मृत्यु हो गई। मृत्युशैया पर जब उससे पूछा गया कि उसके साम्राज्य को किसे सौंपा जाए तो उसने जवाब दिया "सबसे शक्तिशाली को"। बाद में उसके विशाल साम्राज्य के नियंत्रण के लिए उसके सेनापतियों और राज्यपालों के बीच *संघर्ष* की एक लंबी श्रृंखला शुरू हो गयी। उतराधिकार को लेकर दायदोची कहे जाने वाले उसके उत्तराधिकारियों के बीच हुए *संघर्ष* ने इस क्षेत्र पर यूनानी आधिपत्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। 317 बी.सी.ई. भारत में यूनानी सीमा चौकियों को भी छोड़ दिया गया।

दक्षिणी एशिया में उसके विजय अभियानों के प्रतीक के रूप में हाथी की खाल पहने अलेक्ज़ेडर को दर्शाता टॉलेमी का सिक्का। ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन। श्रेयः पी.एच.जी.कॉम। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/ File:PtolemyCoinWithAlexanderWearingElephantScalp.jpg).

एरियन – लुसियस फ्लेवियस एरियनस या एरियन, जैसा कि उन्हें आमतौर पर अंग्रेजी भाषा में कहा जाता है, का जन्म 85-90 सी.ई. के बीच निकोमीडिया (रोमन साम्राज्य में एक यूनानी शहर) में हुआ। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि अलेक्ज़ेंडर से सम्बन्धित सभी आख्यान उसकी मृत्यु से तीन शताब्दियों बाद के हैं। ये सभी अब लुप्त हो चुके प्राथमिक स्रोतों पर आधारित हैं जो त्रुटिपूर्ण एव पक्षपाती हैं। 334-323 बी.सी.ई. के बीच की घटनाओं के लिए विद्वान एरियन के विवरणों पर निर्भर हैं। वह रोमन साम्राज्य में एक बड़ी सेना का अध्यक्ष/नायक था। साहित्यिक झुकाव के कारण उसने शिकार, घुड़सवारी, सेना की रणनीति पर कई लेख लिखे और अलेक्ज़ेंडर की जीवनी भी लिखी। उसने दावा किया है कि अलेक्ज़ेंडर पर लेखन कार्य करने के लिए उसने विश्वसनीय प्राथमिक स्रोतों के रूप में अलेक्ज़ेंडर के पूर्वी अभियान में शामिल टॉलेमी और ऐरिस्टोबुलस की कृतियों को आधार बनाया है। उसने अलेक्ज़ेन्डर पर *'ऐनाबेसिस'* ('देश भ्रमण") भी लिखा जिसमें सात पुस्तकें शामिल हैं। भारत पर लिखी उसकी पुस्तक *इंडिके* ऐनाबेसिस का ही एक छोटा भाग है।

स्रोतः जेम्स रॉम द्वारा संपादित *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेटः सलैक्शन्स फ्रॉम एरियन, डियोडोरस, प्लूटार्क एंड क्युटस*, हैकेट प्रकाशन कंपनी, इंडियानापोलिस/केम्ब्रिज।
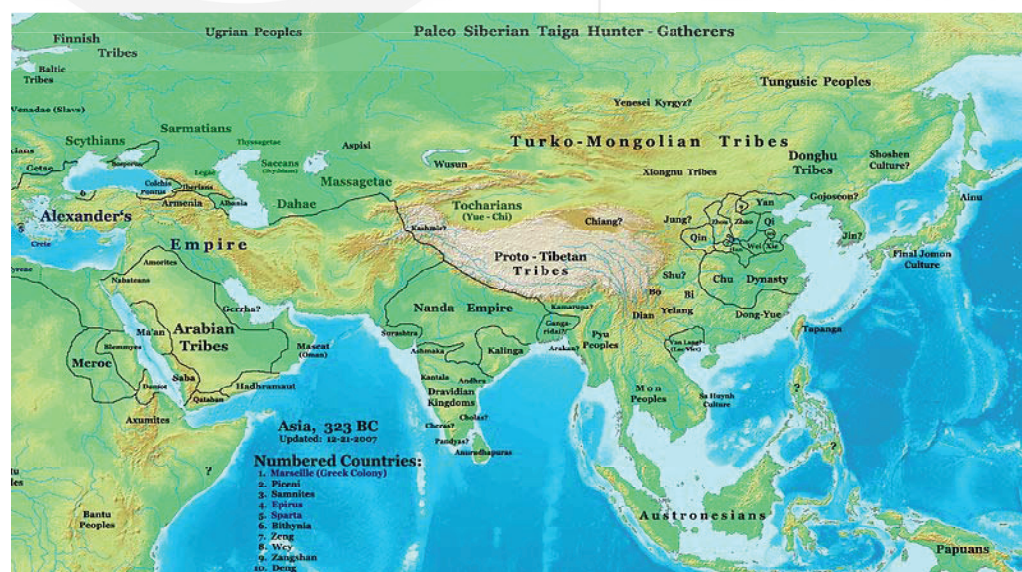
323 बी.सी.ई. में एशिया का मानचित्रः अलेक्ज़ेंडर के साम्राज्य और पड़ोसी राज्यों के संबंध में नंद साम्राज्य। स्रोतः विकिपीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/ File:Asia_323bc.jpg).।

12.4 एरियन की *इंडिके*

एरियन ने स्वयं को एक दार्शनिक, राजनेता, सैनिक और इतिहासकार के रूप में वर्णित किया है। यह अलेक्ज़ेंडर के एशियाई अभियान के साथी के रूप में अधिक विख्यात हैं। इनकी लेखनी में सटीकता और स्पष्टता उल्लेखनीय है। भारत पर इनकी पुस्तक *इंडिके* आयोनी बोली (ग्रीक) में लिखी गयी है। इसमें तीन भाग सम्मिलित हैंः

- मेगस्थनीज़ और एराटोस्थिनिस द्वारा भारत के विवरणों पर आधारित पहला भाग भारत का एक सामान्य विवरण है;
- दूसरा भाग नियरकस की सिन्धु यात्रा का लेखा-जोखा है; और
- तीसरा भाग यह प्रमाणित करता है की अत्यधिक गर्मी के कारण ही दुनिया के दक्षिणी हिस्से आबादी के योग्य नहीं थे।

इंडिके के पहले भाग का अनुवाद जे. डब्ल्यू. मैक क्रिंडल द्वारा किया गया है और यह इतिहास, भूगोल, पुरातत्व और ग्रीक मूल शब्दों के साथ संस्कृत के मूल नामों के भी संदर्भ प्रस्तुत करता है। मेगस्थनीज़ और नियरकस के विवरणों के आधार पर एरियन भारत के बारे में संक्षिप्त और रोचक विवरण प्रस्तुत करता है। वह भारत विशेष की सीमाओं की जानकारी से आरम्भ करता है जो उसके अनुसार सिन्धु के पूर्व में पड़ती थीं। वह उत्तर में हिंदुकुश, पश्चिम में सिंधु नदी और दक्षिण में पट्टल का उल्लेख करके भारत की सीमाओं को चित्रित करता है। अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने पट्टल की पहचान निरंकोल या हैदरबाद से की है जिसका पुराना नाम पाटशिला था। उनके अनुसार गंगा घाटी के पूर्वी भाग प्रसियाका के विपरीत पश्चिमी भाग को ब्राह्मण पाताल शब्द से पुकारते थे। "पाताल" संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है पाताललोक। और यही संज्ञा पश्चिम की भूमि को भी दी गई है।

मैक क्रिंडल के अनुसार स्ट्रैबो द्वारा दिए गए नापतोल के परिमाण एरियन की तुलना में अधिक सटीक हैं। हालाँकि कनिंघम की टिप्पणी है कि एरियन द्वारा बताए गए माप देश के वास्तविक आकार के निकट और बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये दर्शाते हैं कि भारतीयों को अपने इतिहास के शुरुआती चरण में ही अपनी मातृभूमि के आकार और सीमा का बहुत सटीक ज्ञान था।

सिंधु और गंगा की विभिन्न सहायक नदियों, भारत की जातियों एवं जनजातियों का उल्लेख करने के लिए उसने मेगास्थनीज़ के विवरण से जीवन सहायता ली है। एरियन बहुत विस्तार से नदियों, प्राचीन "बर्बर भारतीयों" और खानाबदोश जीवन पर उनकी निर्भरता की चर्चा करता है। वह शक्तिमान अलेक्ज़ेंडर के आगमन से पहले भारत आये डायोनिसस का उल्लेख करता है जिसने भारत को जीता और भारतीयों को कानूनों, कृषि और हल से परिचित कराया।

एरियन ने पाटलिपुत्र का भी वर्णन किया है जिसे वह 'पालिम्बोथरा का सबसे बड़ा शहर' कहता है। अलेक्ज़ेंडर कनिंघम का कहना है कि एरियन द्वारा पालिबोथरा के लोगों को 'प्रासी' नाम देने पर स्ट्रैबो और प्लिनी सहमत थे। आधुनिक लेखकों ने इसकी तुलना संस्कृत शब्द प्राच्य या 'पूर्वी' से की है। कनिंघम का यह भी मानना है की 'प्रासी' शब्द ग्रीक भाषा के 'पलासा' से लिया गया है जो मगध, जिसकी राजधानी पालीबोथरा थी, को संबोधित करता है।

एरियन बताता है की भारत में गुलामी की प्रथा नहीं थी। वह हाथियों द्वारा शिकार करने के तरीकों और सोने की खुदाई करने वाली चींटियों के बारे में भी लिखता है हालाँकि वह खुद इस बारे में विश्वस्त नहीं है क्योंकि मेगस्थनीज़ द्वारा सोने की खुदाई करने वाली चींटियों का वर्णन कहासुनी पर आधारित था।

12.5 अलेक्ज़ेंडर के उत्तराधिकारी और सेल्यूकस निकेटर

भारत और फ़ारस से वापिस आने के बाद अलेक्ज़ेंडर ने अपने साम्राज्य का संगठन व्यवस्थित ढंग से नही किया। अधिकांश विजित राज्यों को उनके शासकों को ही दे दिया गया जिन्होंने उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया था। उसके विजित भूखंड को यूनानी नियंत्रकों के अधीन तीन भागों में विभाजित कर दिया गया। अस्थिरता और अराजकता शीघ्र ही साम्राज्य में फ़ैल गयी। विभिन्न क्षत्रपों के अधीन कई उत्तराधिकारी राज्य उभरे और मैसिडोनिया ने अपना महत्व खो दिया।

अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु के समय क्षत्रपों की संख्या 20 थी। 308 बी.सी.ई. तक आते-आते उन्होंने मैसेडोनियन साम्राज्य के साथ सभी संबंधों को समाप्त कर दिया और एंटीगोनस, सेल्यूकस और टॉलेमी के नेतृत्व में तीन अलग-अलग समूह बन गये। बेबीलोनिया के *क्षत्रप* के शिखर पर सेल्यूकस निकेटर था। एंटीगोनस द्वारा बेबीलोन से बाहर निकाले जाने के बाद उसने पुनः अपना राज्य प्राप्त किया और अपने प्रभुत्व को सिंधु तक पहुँचाने में सफल रहा। उसने पूर्व के सभी क्षत्रपों को अपने अधीन कर लिया। इस बीच चंद्रगुप्त मौर्य गंगा के मैदान पर अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। वह अलेक्ज़ेंडर के प्रस्थान के बाद पश्चिमोत्तर क्षेत्र में उभरी अनिश्चितता का लाभ उठाते हुए सिंधु तक पहुंच गया। वहाँ उसका सामना सेल्यूकस निकेटर से हुआ जिसका प्रभुत्व उस क्षेत्र में था। सिंध के मैदान में दोनों की सेनाओं का आमना-सामना हुआ, यह क्षेत्र सेल्यूकस निकेटर का गढ़ था किन्तु लड़ाई में चन्द्रगुप्त की जीत हुयी। 303 बी.सी.ई. की संधि की शर्तों के अनुसार पूर्वी अफ़गानिस्तान, मकरान और बलूचिस्तान के सेल्यूसीड प्रदेश चंद्रगुप्त को मिल गए, बदले में सेल्यूकस ने 500 हाथी प्राप्त किए। सेल्यूकस ने अपनी बेटी का विवाह चंद्रगुप्त से करवाया। इस जीत के साथ पश्चिमोत्तर क्षेत्र के महत्वपूर्ण मार्ग मौर्य नियंत्रण में आ गए।

अंततः चन्द्रगुप्त व सेल्यूकस (यूनानियों) के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हुए। यूनानी विवरणों में चन्द्रगुप्त 'सैंड्राकोटोस' के नाम से प्रसिद्ध था। सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज़ ने चंद्रगुप्त के दरबार में समय बिताया और *इंडिका* नामक ग्रन्थ लिखा। *इंडिका* मूल रूप से लुप्त हो गयी है किन्तु इसके कई अध्यायों को बाद के लेखकों जैसे डियोडोरस, स्ट्रैबो और एरियन ने अपनी कृतियों में प्रतिलिपित किया है। कई यूनानी राजदूतों जैसे मेगस्थनीज़, डायमाकोस, हेजिसेंड्रोस ने चन्द्रगुप्त के दरबार का दौरा किया और आपसी मैत्रीपूर्ण संबंध सावधानीपूर्वक आगे बढ़े।

12.6 अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण का प्रभाव

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान उतने महत्वपूर्ण नहीं थे जितने कि वह स्वयं विश्वास करता होगा। आर.के. मुखर्जी के अनुसार भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान किसी शानदार सैन्य उपलब्धि का उदाहरण नहीं थे क्योंकि उसका सामना किसी भी शक्तिशाली भारतीय सम्राट के साथ नहीं हुआ। उसके अभियानों का प्रभाव मुख्यतः अप्रत्यक्ष था। ए.के. नारायण के अनुसार अलेक्ज़ेंडर के अनुशासित और संगठित अभियानों का छोटे राज्यों और रियासतों से कोई मुकाबला ही नहीं था यह तथ्य उत्तर-पश्चिम के लोगों ने समझा लिया था। चंद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य खड़ा करने के महत्व को समझा और नंद वंश को उखाड़ फेंकने के बाद संपूर्ण पंजाब और उत्तरी भारत को एकजुट किया। उसने न केवल दक्षिणी राज्यों को जीता, बल्कि चार क्षत्रपों – अरिया, अराकोशिया, गेड्रोशिया और पेरोपमिसेडिया – को भी एकीकृत किया जिन्हें सेल्यूकस ने अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु के बाद चंद्रगुप्त को सौंप दिया था।

इस तरह यूनानियों और भारतीयों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने हुए थे। ग्रीक लेखक एथेनेअस

के अनुसार भारतीय शासक एमिटोकट्स ने सीरिया के एंटिओकस प्रथम को मीठी शराब, अंजीर और एक सोफिस्ट (तार्किक-बुद्धिजीवी) भेजने के लिए लिखा था। इस संदर्भ में सीरियाई राजा ने जवाब दिया कि वह खुशी से मीठी शराब और अंजीर भेजेगा, किन्तु ग्रीस में एक सोफ़िस्ट नहीं बिकता। स्टैबो सैंड्रोकोट्टोस के बेटे एलिट्रोकैड्स के दरबार में डीयामकस को भेजने का उल्लेख करता है। प्लिनी मिस्र के टॉलेमी द्वितीय द्वारा एक और दूत डायोनिसियस के भेजे जाने का उल्लेख करता है। इसके अलावा, अशोक ने पश्चिम एशिया और मिस्र के यवनों के साथ भी करीबी संबंध बनाए रखे। ग्रीस के कांधार प्रदेश में पाए गए उसके तेरहवें शिलालेख में सीरिया के एंटिओकस द्वितीय, मिस्र के टॉलेमी फिलाडेल्फ़स द्वितीय, मैसिडोनिया के एंटीगोनस गोमातास, साइरेन के मगास और कोरिंथ के अलेक्ज़ेंडर के राज्यों में अशोक के धम्मविजय का उल्लेख है। अशोक द्वारा एंटीओकस द्वितीय और उसके पड़ोसी राज्य के मवेशियों और मनुष्यों की चिकित्सा एवं उपचार के भी संकेत मिलते हैं। देवानामप्रिय पियदस्सी के रूप में अशोक का वर्णन न केवल यूनानी राजाओं के बीच उसकी वर्तमान स्थिति को दर्शाता है, बल्कि पश्चिम के यूनानी राजाओं के मध्य उनके देवता-सदृश्य पद को भी दर्शाता है। अशोक के शिलालेखों की शैली डेरियस के शिलालेखों से प्रभावित प्रतीत होती है। कौटिल्य और मेगस्थनीज़, दोनों विदेशियों के कल्याण की देखरेख करने वाले एक राजविभाग का उल्लेख करते हैं जो अधिकतर यवन और फ़ारसी थे। तक्षशिला, सारनाथ, बसढ़ और पटना में प्राप्त पकी मिट्टी की कलाकृतियों में स्पष्ट यूनानी प्रभाव दिखाई देता है।

अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण ने बैक्ट्रिया और वर्तमान अफगानिस्तान और पाकिस्तान के हिस्सों में ग्रीक सत्ता की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। पुरातात्विक सिक्कों से लगभग 40 यवन वंश के शासकों की जानकारी मिलती है। स्ट्रैबो कहता है की इन राजाओं ने अलेक्ज़ेंडर से अधिक संख्या में जनजातियों को अपने वश में किया। इनमें मिनांडर और यूथीडेमस का पुत्र व बैक्ट्रियन जनता के राजा के रूप में विख्यात डेमेट्रियस सर्वाधिक उल्लेखनीय शासक थे। ये इंडो-ग्रीक राजा भारतीय धर्म और संस्कृति से समान रूप से प्रभावित थे। उनके कई सिक्कों पर भारतीय आकृतियाँ मिलती हैं। इंडो-ग्रीक राजा एंटियालकिडस ने तक्षशिला के निवासी तथा डायोन के पुत्र हीलियोडोरस को भारतीय राजा भागभद्र के दरबार में अपना राजदूत नियुक्त किया था। इसका विवरण मध्य प्रदेश में भिलसा के समीप स्थित बेसनगर में प्राप्त हीलियोडोरस के शिलालेख में मिलता है जिसमें उल्लेख किया गया है कि वह हिंदू धर्म के *भागवत* संप्रदाय का अनुयायी था। मिनांडर के कुछ सिक्कों पर पहिए की छवि अंकित हैं, विद्वानों का मानना है कि यह धार्मिकता का पर्याय समझे जाने वाले बौद्ध प्रतीक *'धर्मचक्र'* से सम्बन्धित है।

अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के कारण भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र यूनानी संसार के साथ सीधे संपर्क में आया। समुद्र और भूमि मार्ग खुल गए, जिनके माध्यम से यूनानी व्यापारी और शिल्पकार दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचे। इस क्षेत्र में यूनानी बस्तियों की स्थापना की गई, उदाहरण के लिए काबुल क्षेत्र में अलेक्ज़ेंड्रिया, झेलम पर बाऊकेफला, सिंध में अलेक्ज़ेंड्रिया। अलेक्ज़ेंडर ने सिंधु के मुख से लेकर यूफ्रेट्स के बंदरगाहों और तटों की भौगोलिक खोज भी की। उसके इतिहासकारों ने उसके अभियानों की भौगोलिक योग्यता के संबंध में बहुमूल्य जानकारी दी है। भारतीय कालक्रम को एक ठोस आधार प्रदान करने के अतिरिक्त यूनानी वर्णन हमें भारतीय प्रथाओं जैसे *सती,* गरीब माता-पिता द्वारा बाजार में लड़कियों की बिक्री और बैलों की अच्छी नस्लों के बारे में बताते हैं। वास्तव में, अच्छी किस्म के 2,00,000 बैलों को अलेक्ज़ेंडर द्वारा भारत से मैसेडोनिया भेजा गया था। भारतीयों द्वारा बनाये रथ, नाव और जहाज़ों के आधार पर यूनानियों ने पाया की भारतीयों ने काष्ठकला के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की थी।

बोध प्रश्न 1

1) पश्चिमोत्तर भारत में अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण पर कुछ पंक्तियाँ लिखें?

....

....

....

....

....

2) एरियन की *इंडिके* पर कुछ पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

12.7 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि भारतीय इतिहास के आरम्भ से ही भारत के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र ने आक्रमणकारियों का ध्यान आकर्षित किया। एकेमेनिड हमलों के बाद अलेक्ज़ेंडर ने उत्तर-पश्चिमी भारत की रियासतों और राज्यों पर विजय प्राप्त की। भारतीयों के वीरतापूर्ण *संघर्ष* और विरोध के बावजूद वह भारतीय शक्तियों को अपने अधीन करने में सफल रहा। उसने रात में ही हाइडस्पिस (झेलम) को पार किया और पोरस को हराया किन्तु उसकी वीरता से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने पोरस को अपना राज्य बनाए रखने की अनुमति दी। परन्तु वह चेनाब और रावी (एसेसीन्स, हाइड्रोटिस) से आगे नहीं जा पाया क्योंकि उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। हमने यह भी जाना कि एरियन के वर्णन अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के इतिहास का मुख्य स्रोत हैं। एरियन ने अपनी पुस्तक *इंडिके* में कुछ तथ्यात्मक और कुछ काल्पनिक विवरण दिए हैं जो अन्य यात्रियों के विवरणों पर आधारित हैं। अलेक्ज़ेंडर के उत्तराधिकारियों में सबसे उल्लेखनीय सेल्यूकस निकेटर था जो चंद्रगुप्त मौर्य के साथ लड़ा किन्तु हार गया। उन्होंने मौर्य राजा के दरबार में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ को भेजा जिसने अपनी *इंडिका* में चन्द्रगुप्त के शासनकाल का दिलचस्प वर्णन किया है।

12.8 शब्दावली

एकेमेनिड : एकेमेनियन राजवंश के सदस्य जिन्हें एकेमेनिड (फ़ारसी में हखमनिशिया) भी कहा जाता है (559-330 बी.सी.ई.)। यह प्राचीन ईरानी राजवंश था जिसके राजाओं ने एकेमेनिड साम्राज्य की स्थापना और उस पर शासन किया।

दायादोची : अंग्रेजी ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, *दायादोची* सिकंदर महान के छह सेनानायकों – एंटीगोनस,

एंटीपेटर, कैसेंडर, लाइसीमेकस, टॉलेमी तथा सेल्यूकस को संदर्भित करता है जिनके बीच 323 बी.सी.ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य विभाजित हो गया। यह ग्रीक शब्द 'दायादोखोई' (*diadokhoi*) से लिया गया है जिसका अर्थ है, 'उत्तराधिकारी'।

क्षत्रप : प्राचीन फ़ारसी साम्राज्य के प्रांतों के नियंत्रक।

यवन : प्रारंभिक भारतीय साहित्य में इस शब्द का अर्थ ग्रीक (यूनानी) या किसी अन्य विदेशी से है।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) भाग 12.3 देखिए।

2) भाग 12.4 देखिए।

12.10 संदर्भ ग्रंथ

बोसवर्थ ए. बी. (1996). द हिस्टॉरिकल सैटिंग ऑफ़ मेगास्थनीज़ *इंडिका. क्लासिकल फिलोलॉजी*, वॉल्यूम 91 (2), अप्रैल 1996, पृ. सं. 113-127।

बोसवर्थ बी. (2002). *द लिगेसी ऑफ अलेक्ज़ेंडर : पॉलिटिक्स, वॉरफ़ेयर एंड प्रोपेगेंडा अंडर द सक्सेस्सर्स.*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मैकक्रिंडल, जे. डब्ल्यू. (1877). *एंशियंट इंडिया एज़ डिस्क्राइब्ड बाय मेगस्थनीज़ एंड एरियन* मेगस्थनीज़ की *इंडिका* के एक भाग का अनुवाद जिसे डॉ. श्वान्बैक द्वारा संकलित किया गया और एरियन की *इंडिके* का पहला भाग। थैकर स्पिंक एंड कंपनी।

नारायण, ए.के. (1965). अलेक्ज़ेंडर एंड इंडिया, ग्रीस एण्ड रोम. *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट*, वाल्यूम 12, नं. 2, अक्टूबर 1965, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. सं. 155-165।

रॉम जेम्स (सं.) (2005). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट : सेलेक्शन्स फ्रॉम एरियन, डियोडोरस, प्लूटार्क एंड क्युंटस कर्टियस* । हैकेट प्रकाशन कंपनीः इंडियानापोलिस/केम्ब्रिज।

शवार्ज़ फ्रांज फर्डिनेंड (1975). एरियन'स *इंडिके* ऑन इंडियाः इंटेंशन एंड रियलिटी, *ईस्ट एंड वेस्ट*, वाल्यूम 25, नं. 1/2 (मार्च-जून 1975), पृ. सं. 181-200।

टार्न, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1948). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट, वॉल्यूम 1- नैरेटिव.* केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

वर्थिंगटन, इयान (स.) (2003). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट : ए रीडर.* रॉउटलेज।

इकाई 13 मौर्य शासन की स्थापना और मगध साम्राज्य का विस्तार*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मगध साम्राज्य के राज्य-क्षेत्र के विस्तार की चर्चा करने जा रहे हैं। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि मगध एक ''साम्राज्य'' के रूप में क्यों और कैसे विकसित हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मगध और उसके आस-पास के क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति की पहचान कर सकेंगे और इसके सामरिक महत्त्व को समझ सकेंगे;
- उन स्रोतों का उल्लेख कर सकेंगे, जिनकी सहायता इतिहासकार इस काल के इतिहास-लेखन के लिए लेते हैं;
- मौर्य शासन से पहले की दो शताब्दियों के दौरान मगध के राजनीतिक इतिहास का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे;
- इतिहास के आरंभिक कालों के संदर्भ में ''साम्राज्य'' की धारणा को समझ सकेंगे;
- मौर्य शासन की स्थापना में सहायक प्रमुख घटनाओं को रेखांकित कर सकेंगे;

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-5 से ली गई है।

- चंद्रगुप्त और बिंदुसार जैसे आरंभिक मौर्य शासकों और उनके राज्य-विस्तार संबंधी कार्यकलापों की जानकारी दे सकेंगे;
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के संदर्भ को स्पष्ट कर सकेंगे और कलिंग युद्ध का महत्त्व बता सकेंगे; और
- यह जान सकेंगे कि अशोक की मृत्यु के समय मगध ''साम्राज्य'' की सीमाएँ क्या थीं?

13.1 प्रस्तावना
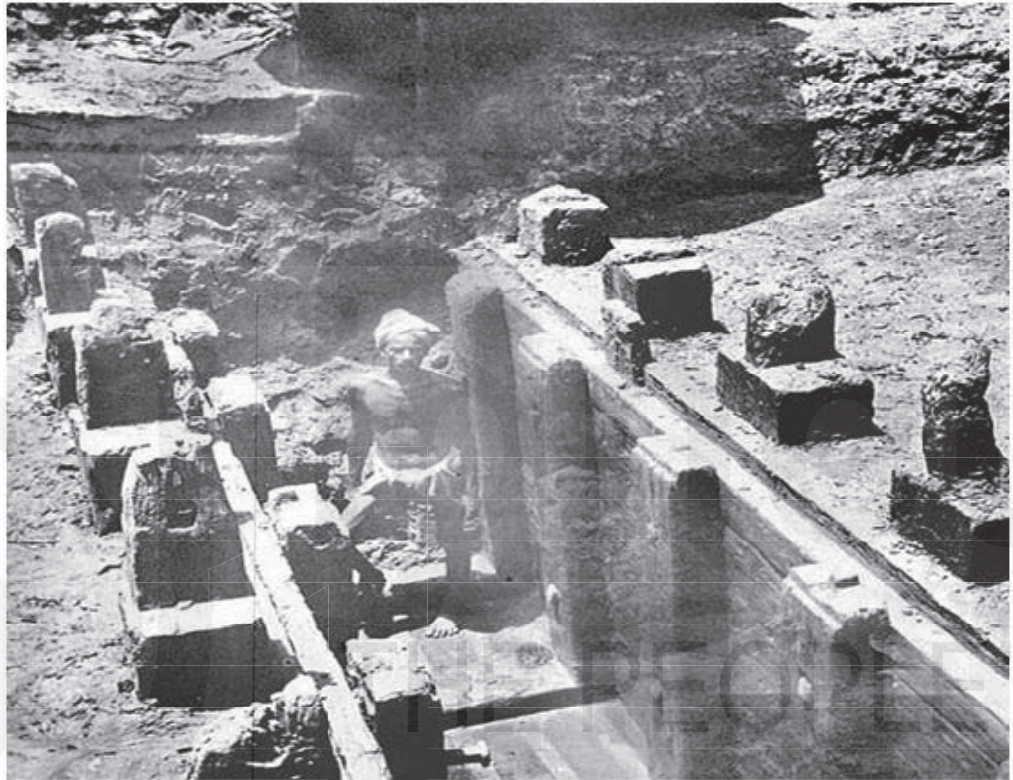
पाटलिपुत्र के बुलंदिबाग स्थल पर मौर्य खम्भों की पंक्ति के अवशेष। श्रेय : ए.एस.आई.ई.सी. 1912-13। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mauryan remains of wooden palissade at Bulandi Bagh site of Pataliputra ASIEC 1912-13.jpg)।

इकाई 10 में आप *जनपद* और *महाजनपद* से परिचित हो चुके हैं। इनकी जानकारी हमें आरंभिक बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलती हैं। ये *जनपद* और *महाजनपद* विंध्य पर्वतों के उत्तर में स्थित थे। इनका काल प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। इस इकाई में हम एक महत्त्वपूर्ण *महाजनपद* मगध के विकास पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों से इतिहासकारों का ध्यान मगध की ओर जाता रहा है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि यह जाने-माने मौर्य साम्राज्य का केंद्र-बिन्दु था।

इस इकाई में हम केवल मौर्य शासकों द्वारा मगध के क्षेत्रीय विस्तार पर प्रकाश नहीं डाल रहे हैं बल्कि आरंभिक काल की ''साम्राज्य'' संबंधी धारणा पर भी विचार कर रहे हैं। यह विचार हम दो स्तरों पर करेंगे – (i) ''साम्राज्य'' शब्द के अनेक अर्थ, जिनमें केवल विशाल क्षेत्रीय विस्तार ही शामिल नहीं है, और (ii) राज्य तथा साम्राज्य संबंधी आरंभिक भारतीय धारणा।

इन बिंदुओं पर विचार करने से विभिन्न विद्वानों द्वारा मगध साम्राज्य (खासकर मौर्य शासकों के अधीन) की प्रकृति के विश्लेषण को समझने में मदद मिलेगी।

इस इकाई में पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. से तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. के बीच हुई राजनीतिक

गतिविधियों का भी अवलोकन किया जाएगा। छठी शताब्दी बी.सी.ई. से ही मगध राज्य का विस्तार शुरू हो गया था, हालांकि नंदों और मौर्यों के अधीन इसमें तेजी आई। विभिन्न भागों में अशोक के अभिलेखों की उपस्थिति से यह संकेत मिलता है कि सुदूर पूरब और दक्षिण के क्षेत्रों को छोड़कर भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग मगध संप्रभुता के अधीन था। मगध के क्षेत्रीय विस्तार पर विस्तार से चर्चा करने के बाद हम इस तथ्य पर भी विचार करेंगे कि मगध साम्राज्य की बनावट और संरचना में इतनी विविधता थी और इसका फैलाव इतना व्यापक था कि प्रत्यक्षतः राजनीतिक नियंत्रण रखना संभवतः बहुत कठिन था। इससे शायद यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्यों अशोक ने समाज में व्याप्त तनाव को कम करने के लिए ''**धम्म**'' का सहारा लिया।

13.2 मगध की भौगोलिक स्थिति

इकाई 10 में हमने मगध राज्य की चर्चा **सोलह *महाजनपदों*** के एक महत्त्वपूर्ण ***महाजनपद*** के रूप में की थी। ये *महाजनपद* गंगा घाटी के बड़े भू-भाग में फैले हुए थे; कुछ इसके उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में भी स्थित थे। हालांकि चार में से तीन महत्त्वपूर्ण राज्य (कोशल, वज्जि गणराज्य और मगध) मध्य गंगा घाटी में स्थित थे, चौथा शक्तिशाली राज्य अवंती पश्चिमी मालवा में था। मगध के पूरब में अंग, उत्तर में वज्जि गणराज्य, पश्चिम में काशी और सुदूर पश्चिम में कोशल राज्य था।

मगध वर्तमान बिहार राज्य के पटना, गया, नालंदा और शाहाबाद के कुछ हिस्सों में फैला हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से मगध जहाँ स्थित था, वहाँ की मिट्टी जलोढ़ और उपजाऊ थी। विशेष बात यह है कि मगध की आरंभिक राजधानी राजगृह, नदी से दूर दक्षिण क्षेत्र में स्थित थी। इसका कारण संभवतः इसकी सामरिक भौगोलिक स्थिति हो सकती है; दूसरी बात यह कि इस इलाके में लौह खनिज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त यहाँ तांबा भी सुलभ था और इसके आस-पास दक्षिण बिहार के जंगल भी थे। इन्हीं सब कारणों से मगध के शासकों ने गंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र को छोड़कर अपेक्षाकृत वीरान इलाका चुना। बाद में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र हो गई, जिसका मूल नाम पाटलिग्राम था। यह गंगा, गंडक, सोन और पुनपुन जैसी नदियों के मुहाने पर बसा था। मौर्यों ने पाटलिपुत्र को मगध की राजधानी बनाया। इससे **उत्तरापथ** पर मगध का पूर्ण नियंत्रण हो गया। यह पथ गंगा के उत्तर में था और हिमालय की तलहटी तक जाता था। मगध ने विभिन्न राज्यों से सम्पर्क स्थापित करने में नदी-मार्ग का उपयोग किया और भारी सामान आने-ले-जाने के लिए सुगम यातायात उपलब्ध हो सका। इस प्रकार, अपने समकालीन शक्तिशाली राज्यों की अपेक्षा मगध को कुछ प्राकृतिक लाभ प्राप्त हुए। मगध के दक्षिण पश्चिम में अवंती, इसके उत्तर-पश्चिम में कोशल और इसके उत्तर में वज्जि गणराज्य छठी शताब्दी बी.सी.ई. में मगध के समान ही शक्तिशाली थे।

हाल के शोधों से यह स्पष्ट है कि लोहे की सुलभ प्राप्ति ने दो राज्यों-मगध और अवंती के विकास में भरपूर योगदान दिया। इससे न केवल हथियार बनाने में सहायता मिली, बल्कि कृषि के औज़ार भी बनाने में सुविधा हुई। इससे कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ, अधिशेष उत्पादन हुआ और राज्य को कर के रूप में यह अधिशेष प्राप्त हुआ। इससे उन्हें अपने क्षेत्रीय आधार के विस्तार और विकास में सहायता मिली। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ समय तक अवंती मगध के लिए सबसे बड़ा खतरा था और पूर्वी मध्य प्रदेश में स्थित लोहे की खानें भी उसकी पहुँच से दूर नहीं थीं।

13.3 स्रोतों पर एक नज़र

आरम्भिक बौद्ध और जैन साहित्य में मध्य गंगा के मैदान, जहाँ मगध स्थित था, की घटनाओं

और परम्पराओं का काफी उल्लेख किया गया है। बौद्ध परम्परा का कुछ साहित्य *त्रिपिटकों* और *जातकों* में संगृहीत है। जैन परम्परा के दो ग्रंथ – *अचरंग सूत्र* और *सूत्रकृतंग* – अन्य ग्रंथों से पुराने माने जाते हैं। हालांकि ये सभी ग्रंथ छठी शताब्दी बी.सी.ई. के बाद विभिन्न चरणों में लिखे और संगृहीत किए गए हैं। जैन और बौद्ध परम्परा के ग्रंथ आरम्भिक राजनीतिक गतिविधियों को बाद में संग्रहीत हुए ब्राह्मण ग्रंथों (जैसे ''*पुराण*'') से अधिक प्रामाणिक रूप में और सीधे तौर पर प्रस्तुत करते हैं। *पुराणों* में गुप्तकाल तक के शाही राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। **महावंश** और **दीपवंश** प्रमुख परवर्ती बौद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ हैं, जिनका संग्रहण श्रीलंका में हुआ। ये ग्रंथ अशोक के शासनकाल के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त *दिव्यवदान*, भारत के बाहर तिब्बत और चीनी बौद्ध स्रोतों में सुरक्षित एक महत्त्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ हैं। परन्तु इन स्रोतों का उपयोग काफी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि उनकी रचना भारत के बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के संदर्भ में हुई थी।

विदेशी स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक और लगभग समकालीन हैं। इनमें यूनानी और लैटिन के ''क्लासिकल ग्रंथों'' से प्राप्त सूचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यह उन लोगों का लिखा यात्रा वृतांत है, जिन्होंने उस समय भारत का भ्रमण किया। इनमें मेगैस्थनीज़ काफी चर्चित और जाना-पहचाना नाम है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत आया था और वह राजा के दरबार में भी गया था। हालांकि मेगस्थनीज़ केवल प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. स्ट्रैबो के यूनानी लेखन और डायोडोरस व दूसरी शताब्दी सी.ई. के ऐरियन के उद्धरणों के माध्यम से ज्ञात होता है। छठी शताब्दी बी.सी.ई. से चौथी शताब्दी बी.सी.ई. तक उत्तर-पश्चिमी भारत विदेशी शासकों के अधीन था। अतः अकेमेनियन (फारसी) शासन और बाद में सिकन्दर के आक्रमण के विषय में जानकारी हमें फारसी अभिलेखों और हैरोडोटस की रचना जैसे यूनानी स्रोतों से मिलती है।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* की खोज 1905 ई. में हुई। यह मौर्य काल से संबंधित महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। हाल ही में, *अर्थशास्त्र* के लेखन-काल के संबंध में नए विचार सामने आए हैं, जिनके अनुसार इस ग्रंथ का लेखन पूर्ण रूप से मौर्य काल में नहीं हुआ था। सांख्यिकीय गणना के आधार पर यह मान्यता सामने आई है कि *अर्थशास्त्र* के कुछ अध्यायों का लेखन काल सी.ई. की प्रथम दो शताब्दियों में हुआ होगा। इसके बावजूद कई अन्य विद्वान इस ग्रंथ के अधिकांश हिस्से को मौर्यकाल का लेखन मानते हैं। उनकी मानयता है कि मूल ग्रंथ चंद्रगुप्त के मंत्री, कौटिल्य द्वारा लिखा गया था; बाद के वर्षों में अन्य विद्वानों ने इसकी टिप्पणी लिखी और सम्पादन किया।

अभिलेख और सिक्के मौर्य काल की जानकारी के अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं, जो प्राचीन भारत में मौर्य काल की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि इस काल के सिक्कों पर राजा का नाम अंकित नहीं है और उन्हें आहत सिक्के कहा जाता है क्योंकि उन पर कई प्रकार के चिह्न अंकित होते थे। हालांकि इस प्रकार आहत सिक्के लगभग पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. से ही मिलने लगते हैं, परन्तु मौर्य काल के आहत सिक्के इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे कि वे शायद एक केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा जारी किए जाते थे क्योंकि उनके चिह्नों में एकरूपता है। सिक्कों के अलावा अन्य अभिलेखीय सामग्री, खासकर अशोक मौर्य के शासन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं और यह अपने आप में एक विशेष बात है। अशोक के चौदह वृहत् शिलालेख सात लघु शिलालेख, सात स्तम्भ लेख और अन्य अभिलेख पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के महत्त्वपूर्ण नगरों और व्यापार मार्गों पर पाए जाते हैं। ये अभिलेख अशोक के शासन के अंतिम चरण में मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साक्षात प्रमाण हैं।
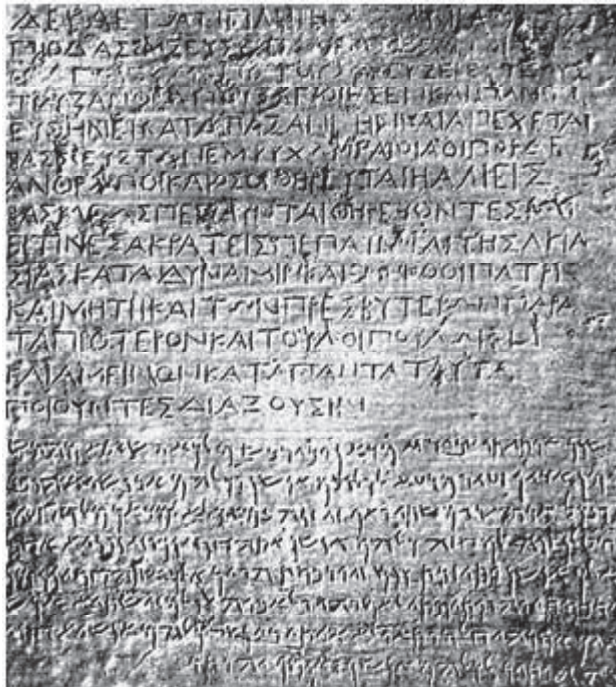
कंधार (शार-ए-कुना) में द्विभाषी (ग्रीक और अरमाइक) अशोक का शिलालेख। अफगानिस्तान के काबुल संग्रहालय में संरक्षित। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:AsokaKandahar.jpg)।

हाल के वर्षों में, पुरातात्विक जानकारी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में सामने आई है और इसमें गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं। इकाई 10 में पुरातात्विक उपलब्धियों और सामग्रियों पर प्रकाश डाला जा चुका है। हम जानते हैं कि उत्तरी काली पालिश किए बर्तनों के काल के पुरातात्विक साक्ष्य उस समय से सम्बद्ध है जब शहरों और नगरों का उदय हुआ। पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य को सामने लाते हैं कि मौर्य काल में लोगों के भौतिक जीवन में और भी परिवर्तन आए। पुरातत्व की सहायता से ही हम यह भी जान पाते हैं कि भौतिक संस्कृति के कई तत्व गंगा घाटी के बाहर फैलने लगे और वे मौर्य शासन से संबंधित माने जाने लगे।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर के सामने ✓ का चिह्न लगाइए।

   मगध निम्नलिखित तीन राज्यों से घिरा था :

   क) अवंती, कोशल, अंग

   ख) अंग, कोशल, वज्जि गणराज्य

   ग) अंग, वज्जि गणराज्य, काशी

   घ) अवंती, काशी, कोशल

2) पाँच पंक्तियों में उन महत्त्वपूर्ण स्रोतों का उल्लेख कीजिए, जिनसे मगध के इतिहास की पुनर्रचना में सहायता मिली है।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) उन तीन महत्त्वपूर्ण कारकों का उल्लेख कीजिए, जिनसे मगध राज्य के विकास में सहायता मिली।

....

....

....

4) सही और गलत कथनों के आगे क्रमशः ✓ और X का निशान लगाइए :

क) मौर्य काल से पहले के काल के लिए अभिलेख सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ( )

ख) मौर्य आहत सिक्कों में चिह्नों की एकरूपता है। ( )

ग) **उत्तरापथ** एक ऐसा रास्ता था, जो गंगा के किनारे-किनारे जाता था। ( )

घ) पाटलिपुत्र गंगा के दक्षिण में बसा था। ( )

ङ) भारत के बारे में मेगस्थनीज़ का कथन बाद के लेखकों की रचनाओं में संगृहीत किया है। ( )

13.4 मौर्यों के पहले मगध का राजनीतिक इतिहास

छठी-पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान बिम्बिसार के नेतृत्व में मगध मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में तेजी से उभरा। बिम्बिसार बुद्ध का समकालीन था। बिम्बिसार मगध का प्रथम महत्त्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने कोशल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस शादी में उसे काशी जिले का एक भाग दहेज के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका संबंध सौहार्दपूर्ण था। इन कूटनीतिक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। मगध के उत्तर में अंग राज्य था, जिसकी राजधानी चम्पा एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र थी। चम्पा एक महत्त्वपूर्ण नदी-बंदरगाह था। कहा जाता है कि बिम्बिसार के आधिपत्य में 80,000 गाँव थे। परम्परागत सूत्रों से पता चलता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को बंदी बना लिया था और वह (बिम्बिसार) भूख से तड़प-तड़प कर मर गया था। ऐसा माना जाता है कि यह घटना 492 बी.सी.ई. के आस-पास घटी होगी।
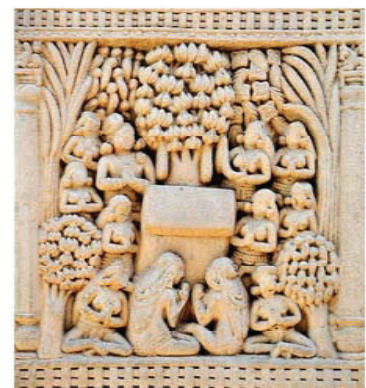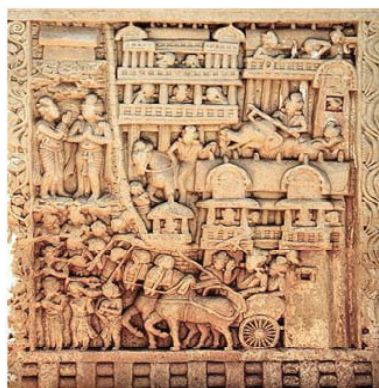
बाएँ : भगवान बुद्ध से मिलने हेतु राजग्रह से निकले शाही जुलूस के साथ राजा बिम्बिसार। मध्य प्रदेश स्थित सांची की कलाकृति। श्रेय : बिस्वरूप गांगुली। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bimbisara_with_his_royal_cortege_issuing_from_the_city_of_Rajagriha_to_visit_the_Buddha.jpg)।

बाएँ : राजग्रह में बाँस उद्यान (वेणुवन) का दौरा करते हुए राजा बिम्बिसार। सांची। श्रेय : बिस्वारूप गांगुली। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bamboo_garden_(Venuvana)_at_Rajagriha,_the_visit_of_Bimbisara.jpg)।

आंतरिक समस्याओं और गद्दी पर अजातशत्रु के बैठने से मगध के भाग्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नये मगध के राजा ने आक्रामक नीति अपनाई और अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार किया। उसने काशी पर अधिकार कर लिया और अपने मामा, कोशल के नरेश से सौहार्द्र का संबंध समाप्त कर उन पर आक्रमण कर दिया। गंगा के दक्षिण तक फैला हुआ वज्जि गणराज्य अजातशत्रु के आक्रमण का अगला निशाना बना। वज्जि *संघ* के साथ युद्ध का सिलसिला लगभग सोलह वर्षों तक चलता रहा। अंत में अजातशत्रु वहाँ आंतरिक कलह पैदा कर धोखे से उसे पराजित करने में सफल हुआ। अपने शक्तिशाली शत्रु अवंती पर आक्रमण की पूरी तैयारी अजातशत्रु ने कर ली थी परन्तु आक्रमण किन्हीं कारणों से सम्पन्न न हो सका। फिर भी, उसके शासनकाल में काशी और वैशाली (वज्जि *महाजनपद* की राजधानी) मगध के अधीन आ चुके थे। इस प्रकार मगध गांगेय प्रदेश में सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा।

मौर्य शासन की स्थापना और मगध साम्राज्य का विस्तार

यह माना जाता है कि अजातशत्रु ने 492 से 460 बी.सी.ई. तक राज्य किया। उदयन (460-444 बी.सी.ई.) उसका उत्तराधिकारी था। उदयन के राज्यकाल में मगध का क्षेत्र हिमालय के उत्तर से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। यह कहा जाता है कि उसने गंगा और सोन के मुहाने पर एक सेतू बनवाया था। उदयन के शासनकाल में राज्य क्षेत्र काफी विस्तृत था, परन्तु वह इन पर कुशल शासन करने में असक्षम था। उदयन के बाद चार शासक एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, परन्तु वे अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसा माना जाता है कि अंतिम राजा को मगध की जनता ने राज सिंहासन से उतार दिया। 413 बी.सी.ई. में बनारस के राज्यपाल शिशुनाग को राजा नियुक्त किया गया। शिशुनाग वंश ने थोड़े समय तक राज्य किया और महापद्मनन्द ने राज्य पर अधिकार कर नंद वंश की शुरुआत की।

326 बी.सी.ई. में उत्तरी-पश्चिमी भारत पर सिकन्दर के समय मगध और लगभग सम्पूर्ण गंगा के मैदान में नन्द वंश का शासन था। यही से भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक काल शुरू होता है। इस कारण नन्दों को कभी-कभी भारत का प्रथम साम्राज्य-निर्माता कहा जाता है। उन्हें केवल मगध का राज्य विरासत में मिला था और उसके बाद उन्होंने उसकी सीमा का और विस्तार किया।

परवर्ती *पुराण* ग्रंथों में महापद्मनन्द का उल्लेख क्षत्रियों के विनाशकर्ता के रूप में हुआ है। यह भी कहा गया है कि उसने समकालीन सभी राजघरानों से शक्ति छीन ली। यूनानी ग्रंथ नंद साम्राज्य की शक्ति का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि नंदों के पास विशाल सेना थी, जिसमें 20,000 घुड़सवार, 2,00,000 पैदल सैनिक, 2,000 रथ और 3,000 हाथी थे। इस बात के भी संकेत मिले हैं कि नंदों के संबंध दक्कन और दक्षिण भारत से भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में इस बात का संकेत है कि कलिंग (आधुनिक उडीशा) के कुछ हिस्सों पर नंद वंश का अधिकार था। राजा खारवेल का शासन काल प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य में था। दक्षिण कर्नाटक प्रदेश के कुछ बाद के अभिलेखों से भी पता चलता है कि नंद वंश के नेतृत्व में दक्कन के कुछ हिस्सों पर मगध का अधिकार था। अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना है कि महापद्मनंद के शासनकाल के अंतिम चरण में मगध साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण का पहला चरण समाप्त हो गया। सिकन्दर के पंजाब पर आक्रमण का हवाला देते हुए यूनानी ग्रंथ उल्लेख करते हैं कि इस समय उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र छोटे-छोटे राज्य वंशों के बीच विभक्त था। यह भी स्पष्ट है कि मगध राज्य और यूनानी विजेता के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ।

321 बी.सी.ई. में नंद वंश का पतन हो गया। इस दौरान नौ नंद राजाओं ने शासन किया और यह कहा जाता है कि अपने शासन के अंतिम दिनों में वे काफी अलोकप्रिय हो गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस स्थिति का फायदा उठाया और मगध के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद मगध गंगा घाटी का सर्वशक्तिमान राज्य बना रहा।

मगध की भौगोलिक स्थिति उसकी सफलता के कारणों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त लोहा उन्हें सहज सुलभ था और प्रमुख स्थल और जल व्यापार मार्ग पर उनका नियंत्रण था। इस इकाई के अगले भाग में हम ''साम्राज्य'' के रूप में मगध का मूल्यांकन करने के साथ-साथ मौर्य शासन की भी चर्चा करेंगे।

13.5 ''साम्राज्य'' की धारणा

मौर्य साम्राज्य पर विचार करने से पूर्व आइए, समझ लें कि ''साम्राज्य'' का अर्थ क्या है। यह जानकारी आवश्यक है, क्योंकि अक्सर हम मनमाने ढंग से सभी प्रकार के (छोटे या बड़े) राज्यों को साम्राज्य कह बैठते हैं। इसके अलावा, हम कभी-कभी यह भी सोचने लगते हैं कि प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक साम्राज्य अपनी प्रकृति में समान थे। यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में ब्रिटिश साम्राज्य की प्रकृति या मध्यकाल के मध्य एशियाई मंगोल साम्राज्य की प्रकृति और मौर्य साम्राज्य की प्रकृति में एकरूपता नहीं हो सकती है। इतिहास के विभिन्न कालों में विकसित साम्राज्यों में महत्त्वपूर्ण अंतर हैं। अतः प्राचीन काल के साम्राज्य का अध्ययन करने से पूर्व साम्राज्य के अनिवार्य तत्वों को समझना आवश्यक है।

13.5.1 ''साम्राज्य'' संबंधी आधुनिक दृष्टिकोण

आमतौर पर यह समझा जाता है कि ''साम्राज्य'' एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है, जिसमें एक केन्द्रीय सत्ता का अधिकार विषमजातीय संस्कृतिवाले विशाल भू-भाग पर होता है। इस परिभाषा के अनुसार केन्द्रीय सत्ता किसी राजा या राजा के प्रतिनिधि या किसी राजनीतिक संस्था के हाथ में होती है जो विभिन्न राज्य क्षेत्रों को एक साथ बाँधकर नियंत्रित रखता है; यह ''इम्पीरियल'' लैटिन शब्द ''इम्पीरियम'' से बना है। यह केंद्र में शक्ति के सापेक्ष केंद्रीयकरण की ओर इशारा करता है। केन्द्र राज्य-क्षेत्र में शामिल इकाइयों पर नियंत्रण रखता है, क्रमशः जिनकी समान राजनीतिक पहचान बन जाती है। साधारणतया प्राचीन काल के इतिहास में रोमन साम्राज्य को मानक माना जाता है जिससे सभी प्राचीनकालीन साम्राज्यों, जिसमें मौर्य साम्राज्य भी शामिल है, की तुलना की जाती है।

इस परिभाषा को उन राज्य-राष्ट्रों से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए, जिनमें से कुछ ने आधुनिक युग में वृहद् साम्राज्यों का निर्माण किया। आरंभिक साम्राज्यों में केंद्रीय शक्ति का आधार राजा का आकर्षक व्यक्तित्व और उसका शौर्य था। इसके अतिरिक्त, परम्परा से प्राप्त मान्यताएँ भी राजा की शक्ति को मजबूत करती थीं।

यह आम धारणा है कि मौर्यों का मगध साम्राज्य एक केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य था। इस प्रकार के साम्राज्य विश्व के दूसरे भागों में भी विद्यमान थे।

केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य आम तौर पर सैन्य बल और व्यक्तिगत पराक्रम की सहायता से निर्मित होते हैं। इस प्रकार के साम्राज्य के निर्माण के पीछे अक्सर लोगों का असंतोष, विक्षोभ और विरोध होता था। साम्राज्य के संस्थापक लोगों को शांति और व्यवस्था का आश्वासन देते थे। इस प्रकार के साम्राज्य के दुश्मनों की संख्या पर्याप्त होती थी, क्योंकि साम्राज्य की स्थापना में कुछ लोगों को बलपूर्वक हटाया जाता था और परम्परा से आ रही कुछ मान्यताएँ टूटती थीं। नये राज्य-क्षेत्रों में विस्तारनीति के कारण दुश्मनी पैदा होती थी। इसलिए शासक वैवाहिक और कूटनीतिक गतिविधियों की सहायता से अपने मित्र बनाते थे। राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ऐसे साम्राज्य एकीकृत केंद्रीकृत राज्य तंत्र विकसित करते थे, जिसमें निर्णय के एकाधिकार पर बल दिया जाता था। इसके कारण पुरानी परम्परागत या स्थानीय कबीलाई सत्ता समाप्त हो गई और उसका स्थान केंद्रीकृत राज्य तंत्र ने ले लिया। प्रायः ऐसा माना जाता है कि इन साम्राज्यों की सफलता में भौगोलिक-राजनीतिक कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रकार के साम्राज्यों के निर्माण में आर्थिक संसाधनों को प्राप्त करके उपयोग में लाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त,

मानव शक्ति की बहुलता भी साम्राज्य निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। ये साम्राज्य सक्रिय राजनीतिक समर्थन के लिए आम तौर पर शहरी, आर्थिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक समुदायों पर निर्भर होते थे और किसानों तथा शहरी निम्न वर्ग में इन्हें निष्क्रिय रूप में समर्थन मिलता है। प्रशासनिक निकायों के कुशल संचालन के लिए उच्च वर्ग से अधिकारियों का चयन होता है। इस प्रकार, प्रशासन शोषण का एक प्रमुख जरिया बन जाता है। दूसरे शब्दों में, आरंभिक साम्राज्यों में, सामाजिक असमानता अपनी चरम सीमा पर होती है, जिसमें विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और क्षेत्र दूसरों द्वारा उत्पादित संसाधनों पर अपना अधिकार जमाए रखता है।

13.5.2 *चक्रवर्ती*-क्षेत्र संबंधी भारतीय धारणा

मौर्य के अधीन मगध साम्राज्य या दूसरे शब्दों में प्राचीन भारत के किसी भी अन्य ''साम्राज्य'' को समझने के लिए यह जानकारी उपयोगी हो सकती है कि प्राचीन साहित्य में आदर्श सम्राट का मानदण्ड क्या था। संस्कृत में सम्राट को '*चक्रवर्ती*' और उसके 'राज्य-क्षेत्र' को ''*चक्रवर्ती क्षेत्र*' कहा गया है। हालांकि आरंभिक ब्राह्मण ग्रंथों में राजा द्वारा सम्पन्न ''*अश्वमेध*' और ''*राजसूय*' जैसे बलि-यज्ञों की चर्चा है, परन्तु ''*चक्रवर्ती-क्षेत्र*' की स्पष्ट चर्चा *अर्थशास्त्र* में की गई है। इसके अनुसार, ''*चक्रवर्ती-क्षेत्र*'' में उत्तर से लेकर दक्षिण तक हिमालय से लेकर समुद्र तक (हिन्द महासागर) और हज़ार योजन का भू-भाग शामिल होता था। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि *चक्रवर्ती* परम्परागत विचारों का ही प्रतिबिंबिन था, जिसमें भारतीय राजा के प्रभाव-क्षेत्र की चर्चा की गई थी परन्तु शायद अशोक के अलावा कोई भी इस आदर्श की प्राप्ति में सफल नहीं हुआ। दूसरी तरफ, साहित्यिक और पुरालेखीय स्रोतों में हमेशा बढ़ा-चढ़ाकर सार्वभौमिक विजय की महत्त्वकांक्षा का जिक्र होता रहा है। प्रायः इतिहासकार इन आदर्श कथनों को राजाओं द्वारा प्राप्त वास्तविक विशाल राज्य क्षेत्रीय अधिकार से जोड़कर देखने लगते हैं, इससे भ्रम पैदा होता है क्योंकि आदर्श को ही यथार्थ समझ लिया जाता है।

अर्थशास्त्र और बहुत से दूसरे ग्रंथों में ऐसे विभिन्न *अंगों* की चर्चा की गई है जिनको मिलाकर एक *राष्ट्र* बनता है। *अर्थशास्त्र* में सात अंगों की चर्चा की गई है। राजा राष्ट्र का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग था। प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर लिखे गए ग्रंथों में राज्य के सात तत्वों की चर्चा की गई है। इन्हें सप्तांग कहा जाता है। ये हैं – मंत्री, मित्र, कर, सेना, दुर्ग, भूमि या देश। *अर्थशास्त्र* में शत्रु को आठवां तत्व माना गया है। *अर्थशास्त्र* का लेखक *कौटिल्य* राजा को राज्य का शक्तिशाली अंग बताता हुआ कहता है कि राजा में कुछ विशेष गुण होने चाहिए। आप इकाई 14 में इस बात का अध्ययन करेंगे कि राजा कैसे अपने राज्य और प्रशासन की व्यवस्था करता था।

ऊपर राज्य और साम्राज्य संबंधी जो बातें कही गई हैं, उनके आधार पर कुछ समय तक इतिहासकारों में यह मत कायम रहा कि मौर्यों का राज्य एक निरंकुश राज्य था, जिसमें राजा साम्राज्य के सभी हिस्सों पर केंद्रीकृत प्रशासन के माध्यम से नियंत्रण रखता था। अब इस मत पर प्रश्न-चिह्न लग गया है। इन विचारों की समीक्षा हम आगे करेंगे। हाँ, एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि मगध साम्राज्य ने गण समूह जैसे अन्य राजनीतिक संगठनों पर राजतंत्र की वर्चस्वता को स्थापित किया।

बोध प्रश्न 2

1) नीचे दिये कोडों का उपयोग करते हुए सही उत्तर का निशान लगाइए।

   निम्नलिखित उपायों से मगध के आरंभिक राजाओं ने अपनी स्थिति मजबूत की।

   i) अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में स्थानांतरित करके

   ii) अंग की राजधानी चम्पा पर कब्जा करके

   iii) गांधार तक अपनी सीमा का विस्तार करके

iv) युद्ध और संधि के जरिए पड़ोसी राज्यों का अधिग्रहण करके

v) अवंती की लोहे की खानों पर कब्जा जमाकर

कोड

क) i, ii, iii

ख) i, iv, v

ग) ii, iv

घ) iii, v

2) मगध साम्राज्य के इतिहास में नंद शासन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। उत्तर पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3) ''साम्राज्य'' संबंधी विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर मौर्य ''साम्राज्य'' का मूल्यॉकन कीजिए (अपने उत्तर के संबंध में आप अध्ययन केंद्र के परामर्शदाता से सलाह ले सकते हैं)। उत्तर पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

4) सही कथन के आगे (✓) का और गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाइएः

क) मगध साम्राज्य को विजय का साम्राज्य भी कहा जा सकता है।

ख) मगध साम्राज्य को केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य कहा जा सकता है।

ग) आरंभिक ग्रंथों में सेना को राज्य का सर्वाधिक प्रमुख अंग माना गया है।

घ) अधिकांश प्राचीन भारतीय राजाओं ने *चक्रवर्ती* का आदर्श प्राप्त कर लिया था।

ङ) ***अर्थशास्त्र*** में राजा से यह अपेक्षा की गई है कि उसमें विशेष गुण हों।

13.6 मौर्य शासन का उद्भव

उत्तर पश्चिम पाकिस्तान में देवी (ऊर्द्ध प्रतिमा) के साथ तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. का प्रस्तर छल्ला (मौर्य रिंगस्टोन)। ब्रिटिश संग्रहालय में संरक्षित। श्रेय : वर्ल्ड इेजिंग (कॉपीराइट दावों के आधार पर)। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:MauryanRingstone.JPG)।

डी.डी. कोसाम्बी का यह मानना है कि सिकन्दर के उत्तर पश्चिम पर आक्रमण का तात्कालिक और अप्रत्याशित परिणाम यह हुआ कि इसने सम्पूर्ण देश पर मौर्यों की विजय का रास्ता प्रशस्त कर दिया। उनका तर्क है कि इससे पंजाब के गणराज्य कमज़ोर हो गए और चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मगध की सेना को पूरे पंजाब पर विजय हासिल करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। गंगा घाटी के अधिकांश भाग पर मगध का पहले से ही अधिकार था। प्राचीन ग्रंथ इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था और उसने सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने की सलाह दी थी, जो उस समय अलोकप्रिय नंदों के अधीन था। हालांकि इस तथ्य की जांच करना कठिन कार्य है, परन्तु भारतीय और अन्य ''क्लासिकल स्रोत'' इस बात का हवाला देते हैं कि सिकंदर के वापस जाने से एक रिक्तता का माहौल कायम हो गया और इसके बाद चन्द्रगुप्त के लिए यूनानी चौकियों पर अधिकार जमाना कठिन कार्य नहीं रहा। इसके बावजूद यह स्पष्ट नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने यह कार्य गद्दी प्राप्त करने के बाद किया या उससे पहले ही उसने इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया था। कुछ विद्वान उसके राज्यारोहण का वर्ष 324 बी.सी.ई. मानते हैं परन्तु अब 321 बी.सी.ई. का समय सर्वमान्य है।

भारतीय परम्परागत स्रोत इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त ने कौटिल्य ब्राह्मण, जो चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता था, की सहायता से मगध का राज सिंहासन प्राप्त किया था। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में लिखे नाटक में भी यह कहा गया है कि 25 वर्ष की आयु में जिस समय चन्द्रगुप्त ने नंद वंश को अपदस्थ किया था, उस समय चन्द्रगुप्त एक कमज़ोर शासक था और वास्तविक सत्ता चाणक्य के हाथ में थी। *अर्थशास्त्र* के लेखक चाणक्य के बारे में बताया जाता है कि वह न केवल युद्ध के राजनीतिक सिद्धांतों का ज्ञाता था बल्कि वह साम्राज्य को ध्वस्त होने से बचाने के लिए उपयुक्त राज्य और समाज के गठन के विषय में भी अच्छी जानकारी रखता था।

हालांकि चंद्रगुप्त के शासन के आरंभिक वर्षों के बहुत कम तथ्य प्रकाश में आए हैं, परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि मौर्य परिवार का संबंध किसी निम्न जाति या कबीले से था। कुछ तथ्य इस बात का संकेत करते हैं कि चंद्रगुप्त अंतिम नंद राजा और निम्न जाति की स्त्री मुरा का पुत्र था, इसी से उस परिवार का नाम मौर्य पड़ गया। बौद्ध स्रोतों के अनुसार वह पिप्लिवन के मोरिया वंश के परिवार का सदस्य था। इन स्रोतों के अनुसार चन्द्रगुप्त का संबंध उस शाक्य कबीले से था, जिसमें बुद्ध का जन्म हुआ था। इस कथन के अनुसार मौर्य नाम उसी कबीले के नाम से उद्भूत हुआ है। अप्रत्यक्ष रूप से इसका अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त एक पुराने सरदार का वंशज था और इस प्रकार उसका संबंध किसी न किसी प्रकार क्षत्रिय कुल से था। *पुराणों* में नंद वंश और मौर्य राजवंश में कोई संबंध नहीं बताया गया है, परन्तु वे भी मौर्यों को *शूद्र* का दर्जा देते हैं। हालांकि ब्राह्मण ग्रंथों की यह समझ उस आरंभिक मगध के समाज पर आधारित थी, जिसमें अनैतिकता का बोलबाला था और जाति संकर मिश्रित थी। ''क्लासिकल ग्रंथों'' में भी अंतिम नंद राजा और चंद्रगुप्त (सैंड्राकोटस के रूप में) का उल्लेख है, परन्तु वे इन दोनों राज्य वंशों में किसी संबंध की बात नहीं करते। यह भी कहा गया है कि चन्द्रगुप्त के नाम में ''गुप्त'' लगा होना और अशोक द्वारा अपनी बेटी की शादी विदिशा के व्यापारी से करना, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मौर्यों का संबंध *वैश्य* जाति से था।

हालांकि मौर्यों की जाति के संबंध में स्थिति अस्पष्ट है, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस राजवंश के अधिकांश महत्त्वपूर्ण राजाओं ने अपने जीवन के अंतिम प्रहर में असनातनिय धर्मों को ही अपनाया। दूसरी तरफ इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि चंद्रगुप्त के परामर्शदाता और प्रेरक शक्ति के रूप में ब्राह्मण कौटिल्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। *पुराणों* में तो यहाँ तक कहा गया है कि चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजा नियुक्त किया था। ऐसा कहा जा सकता है कि मौर्यों ने उस समाज में सत्ता प्राप्त की, जो कभी भी रूढ़िवादी

नहीं था। उत्तर-पश्चिम में विदेशियों के साथ काफी सम्पर्क बना रहा। रूढ़िवादी ब्राह्मण परम्परा में मगध को हमेशा नीची दृष्टि से देखा गया है। मगध बुद्ध और महावीर के विचारों से भी काफी प्रभावित था। इस प्रकार, एक सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था के बीच चंद्रगुप्त मगध का सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ।

बहुत से इतिहासकार मौर्य राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के कारण ही उसे साम्राज्य का दर्जा देते हैं। इनके विचार में साम्राज्य निर्माण में चंद्रगुप्त की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि उसने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विदेशी आक्रमणकारियों की बाढ़ को रोका और पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में स्थानीय राजाओं को कुचल दिया। इन सैनिक कार्यवाहियों का ठीक-ठीक और सीधा, ब्यौरा कहीं नहीं मिलता है। अतः केवल मगध के परवर्ती शासकों से संबंधित स्रोतों में उसकी विजयों संबंधी यत्र-तत्र बिखरी सूचनाओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

भारतीय और विदेशी ''क्लासिकल स्रोत'' इस बात का हवाला देते हैं कि चंद्रगुप्त ने नंद वंश के अंतिम राजा को अपदस्थ कर राजधानी पाटलीपुत्र पर अधिकार जमाया और 321 बी.सी.ई. में मगध के राज्य सिंहासन पर बैठा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, चंद्रगुप्त के राजनीतिक उत्थान का संबंध उत्तर-पश्चिम में सिकन्दर के आक्रमण से भी था। 325 बी.सी.ई. से 323 बी.सी.ई. का काल इस दृष्टि से निर्णायक था क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के बाद उत्तर-पश्चिम में नियुक्त उसके सारे सेनापतियों का या तो कत्ल हो चुका था या वे वापस लौट गए थे। चन्द्रगुप्त ने इस स्थिति का फायदा उठाया और इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया। यहाँ, इस बात को लेकर विवाद है कि चंद्रगुप्त ने पहले नंदों को उखाड़ फेंका या पहले विदेशियों को हराया। कुछ भी हो, यह कार्य 321 बी.सी.ई. तक सम्पन्न हो चुका था और राज्य के सुदृढ़ीकरण का रास्ता प्रशस्त हो गया था।

सैनिक विजय की दृष्टि से चंद्रगुप्त मौर्य की पहली उपलब्धि 305 बी.सी.ई. के आसपास सेल्यूकस निकेटर से युद्ध करना था। सेल्यूक्स सिंधु नदी के पश्चिमी प्रदेश पर राज्य करता था। 303 बी.सी.ई. में अंततः लम्बे युद्ध के बाद चंद्रगुप्त की विजय हुई और यूनानी दूत के साथ एक संधि हुई। इस संधि के मुताबिक चंद्रगुप्त ने सैल्यूकस को 500 हाथी दिए, बदले में सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु का पश्चिमी इलाका दे दिया। इस तरह सट्रापी जिन्हें अराकोशिया, परोपनिसाड़े, एरिया व गेड्रोशिया कहा जाता था चन्द्रगुप्त के अधीन हो गया। एक वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुआ। सेल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज़ कई वर्षों तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी, क्योंकि इस प्रकार सिंधु एवं गंगा का मैदान चंद्रगुप्त के नियंत्रण में आ गए और मौर्य साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित हो गयीं।

अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि चंद्रगुप्त ने केवल उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और गंगा के मैदान पर ही अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित किया था बल्कि पश्चिमी भारत और दक्कन के क्षेत्रों पर भी उनका नियंत्रण था। केवल आधुनिक केरल, तमिलनाडु और भारत के उत्तर-पूर्वी इलाके उसके राज्य-क्षेत्र में शामिल नहीं थे। परन्तु इन विजय-अभियानों का विस्तृत ब्यौरा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यूनानी लेखकों ने अपने ग्रंथों में केवल इस बात का संकेत किया है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने 6,00,000 की अपनी विशाल सेना की सहायता से पूरे भारत को रौंद डाला था। दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य के रूद्रदमन के जूनागढ़ शिला अभिलेख से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने सुदूर पश्चिम में सौराष्ट्र या कठियावाड़ पर विजय प्राप्त की थी और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इसमें चंद्रगुप्त के राजदूत पुष्यगुप्त का उल्लेख है, जिसने प्रसिद्ध सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। इससे यह भी पता चलता है कि मालवा क्षेत्र भी चंद्रगुप्त के नियंत्रण में था। बाद के स्रोतों से यह भी पता चलता है कि दक्कन के क्षेत्र पर भी उसका अधिकार था। कुछ मध्ययुगीन पुरालेखों में इस बात का उल्लेख है कि चंद्रगुप्त ने कर्नाटक के कुछ हिस्सों को सुरक्षा प्रदान की थी।

संगम ग्रंथों में प्रारंभिक तमिल लेखकों (प्रारंभिक शताब्दियों सी.ई.) ने ''मोरियार'' का उल्लेख किया है, यह माना जाता है कि यह मौर्यों का ही उल्लेख है कि जिनका दक्षिण से संपर्क हुआ था, परन्तु संभवतः यह चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के शासन का हवाला देता है। अंततः जैन परम्परा से सूचना मिलती है कि अपने अंतिम दिनों में चंद्रगुप्त ने जैन-धर्म अपना लिया था। उसने राजसिंहासन त्याग दिया और एक जैन साधु भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया। दक्षिण कर्नाटक में स्थित जैनों के तीर्थ स्थान श्रावणबेलगोल में उसने अपने अंतिम दिन बिताए और एक कट्टर जैन की तरह भूखे रहकर धीरे-धीरे प्राण त्याग दिए।

चंद्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार 297 बी.सी.ई में गद्दी पर बैठा। भारतीय और विदेशी ''क्लासिकल स्रोतों'' में उसका कम उल्लेख हुआ है। यूनानी बिन्दुसार को अमिट्रोकेट्स के नाम से पुकारते थे। यूनानी स्रोतों में इस बात का भी उल्लेख है कि बिन्दुसार का संबंध सीरिया के सैलयूसिड वंश के राजा, एँटियोकस प्रथम के साथ था, जिससे उसने मीठी मदिरा, सूखा अंजीर और एक तार्किक (प्राचीन यूनानी दर्शन तथा अलंकार या भाषाणशास्त्र का शिक्षक) भेजने का आग्रह किया था।

सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत के एक बौद्ध पुजारी तारानाथ ने अपनी रचना में बिंदुसार का युद्ध संबंधी वर्णन लिखा है। कहते हैं उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच का भाग जीत लिया था और सोलह नगरों के राजाओं और सरदारों को हरा दिया था। दक्षिण के प्रारंभिक तमिल कवियों ने भूमि पर मौर्यों के रथों के गरजते हुए चलने का जिक्र किया है। शायद यह बिंदुसार का ही शासनकाल होगा। बहुत से इतिहासकारों का मानना है कि चूंकि अशोक ने केवल कलिंग पर ही विजय प्राप्त की थी, अतः तुंगभद्र से आगे का प्रदेश उसके पूर्व शासकों के काल में ही मगध का अंग बन चुका होगा। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि बिंदुसार ने दक्कन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया और मौर्य साम्राज्य का प्रायःद्वीप में सुदूर दक्षिण स्थित मैसूर तक विस्तार किया।

हालांकि बिंदुसार को ''शत्रु का संहारक'' कहा जाता है, उसके शासकनल का ब्योरा भी ठीक से नहीं मिलता है। उसके विजय अभियानों का अनुमान केवल अशोक के साम्राज्य के मानचित्र को देखकर लगाया जा सकता है क्योंकि अशोक ने केवल कलिंग (उडीशा) पर विजय प्राप्त की थी। उसका धार्मिक झुकाव *अजीविकों* की तरफ था। बौद्ध स्रोतों के अनुसार बिंदुसार की मृत्यु 273-272 बी.सी.ई. के आसपास हुई थी। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के बीच राजसिंहासन के लिए चार वर्षों तक *संघर्ष* होता रहा। अंततः 269-268 बी.सी.ई. के आसपास अशोक बिंदुसार का उत्तराधिकारी बना।

13.7 अशोक मौर्य

1837 सी.ई. तक अशोक मौर्य के बारे में लोगों को कुछ विशेष मालूम नहीं था। किन्तु 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी लिपि में लिखा एक शिलालेख पढ़ा। इस शिलालेख में देवनाम् पियदस्सी (देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी) नामक एक राजा का उल्लेख था। इसकी तुलना श्री लंका के इतिवृत महावंश में उल्लिखित पियदस्सी से की गई और वस्तुतः तब यह साबित हो सका कि शिलालेख में वर्णित राजा अशोक मौर्य ही था। युद्ध से विमुखता और धम्म के सिद्धांतों के आधार पर शासन की स्थापना ने अशोक को विशेष प्रसिद्धि दी है। आगे, हम उसके आरंभिक जीवन और प्रासंगिक घटनाओं, कलिंग युद्ध और उसके शासनकाल में मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर चर्चा करेंगे।

13.7.1 कलिंग युद्ध

अपने पिता के शासनकाल में अशोक ने उज्जैन और तक्षशिला में राजदूत के रूप में कार्य किया था। यह बताया जाता है कि उसे तक्षशिला में एक विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा

गया था। बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि तक्षशिला में सफलता प्राप्त करने के बाद उसे उज्जैन भेजा गया था। यह भी कहा जाता है कि उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं, जैसे, विदिशा के व्यापारी की पुत्री से उसका विवाह और उसके महिंद्र और संघमित्र नामक दो संतानों की प्राप्ति, ने भी अशोक को बौद्ध धर्म अपनाने की दिशा में प्रवृत्त किया। उसके आरंभिक जीवन की जानकारी ज्यादातर बौद्ध इतिवृत्तों से होती है। अतः इसकी प्रामाणिकता कुछ संदिग्ध है।

अशोक के राज्यारोहण से संबंधित भी कई किवदंतियाँ प्रचलित हैं, परन्तु इस तथ्य पर मोटे तौर पर सहमति है कि अशोक युवराज नहीं था। इसलिए सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसे अन्य राजकुमारों के साथ *संघर्ष* करना पड़ा था। बौद्ध स्रोतों में यह बताया गया है कि बौद्ध धर्म अपनाने से पूर्व अशोक एक दुष्ट राजा था। यह निश्चित रूप से बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात है। इसका उद्देश्य अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा को प्रतिष्ठित करना है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अशोक के परवर्ती जीवन में बौद्ध धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, परन्तु उसे कट्टर और दुराग्रही बताने वाले कथनों की सही जांच-परख करनी होगी। अशोक के व्यक्तित्व और विचारों का उल्लेख विस्तृत रूप से उसके कई अभिलेखों में हुआ है, जिसमें उसकी सार्वजनिक और राजनीतिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। उनसे यह भी पता चलता है कि कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया था।
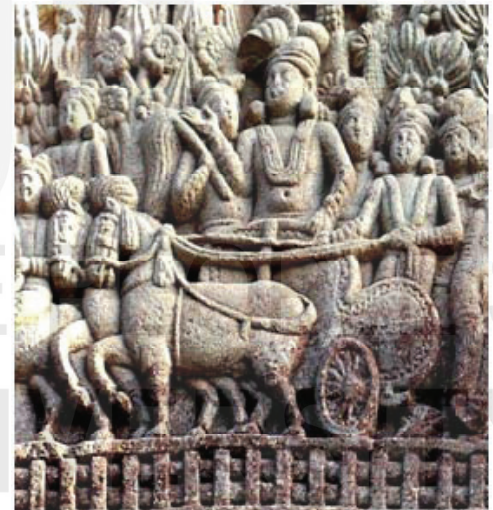
बाएँ : प्रथम-तीसरी शताब्दी सी.ई. सन्नती-कनगनाहल्ली स्तूप, गुलबर्गा जिला, कर्नाटक में एक शिलालेख में उल्लेखित राजा अशोक अपनी रानियों के साथ। ऊपर – विकिमीडिया, नीचे – उपिन्दर सिंह, *ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया – फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द ट्वेल्थ सेंचुरी*, नई दिल्ली : पियरसन, 2013। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kanaganahalli_Asoka_with_inscription.jpg)।

दाएँ : सांची स्तूप-1 पर चित्रित अशोक का रामाग्राम स्तूप पर जाना। श्रेय : फोटो धर्म। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashoka%27s_visit_to_the_Ramagrama_stupa_Sanchi_Stupa_1_Southern_gateway.jpg)।

हालांकि अशोक के पूर्वजों ने दक्कन और दक्षिण के प्रदेशों में प्रवेश पा लिया था और शायद कुछ हिस्सों को जीत भी लिया था, परन्तु कलिंग (आधुनिक उडीशा) अभी तक अविजित था और उसे मौर्य साम्राज्य के नियंत्रण के अधीन लाने का कार्य शेष था। इस इलाके का सामरिक महत्त्व था क्योंकि स्थल और समुद्र, दोनों से दक्षिण भारत को जाने वाले मार्गों पर कलिंग का नियंत्रण था। अशोक ने खुद शिलालेख XIII में यह बताया है कि उसके अभिषेक के आठ वर्ष बाद अर्थात 260 बी.सी.ई. के आसपास कलिंग के साथ युद्ध हुआ था। इस युद्ध में कलिंगवासियों को पूरी तरह कुचल दिया गया और ''एक लाख व्यक्ति मारे गए और इससे

कई गुना नष्ट हो गए।'' अभिलेखों में आगे बताया गया है कि अशोक इस युद्ध में विजयी हुआ, परन्तु युद्ध की विनाशलीला ने सम्राट को शोकाकुल बना दिया और तब उसने आखिरकार बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। युद्ध विजय का स्थान धम्म विजय ने ले लिया। यह नीति व्यक्तिगत और राजकीय, दोनों स्तरों पर अपनाई गई और प्रजा के प्रति सम्राट और उसके अधिकारियों में मूलभूत परिवर्तन आया।

13.7.2 अशोक की मृत्यु के समय मगध

विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले शिलालेखों और स्तम्भ अभिलेखों, जिनमें अशोक ने अपनी धम्म नीति की चर्चा की है, से अशोककालीन मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय-विस्तार पर काफी प्रकाश पड़ता है। अशोक के चौदह वृहद शिलालेख, सात स्तम्भ लेख जूनागढ़ के निकट गिरनार में और कुछ लघु शिलालेख प्राप्त हुए हैं। बड़े शिलालेख पेशावर के निकट शाहवाजगढ़ी और मनसहेरा में, देहरादून के निकट कल्सी में, थाना जिले में सोपारा, कठियावाड़ा में, भुवनेश्वर के निकट धौली में और उडीशा के गंजम जिले के जौगढ़ में पाए गए हैं।
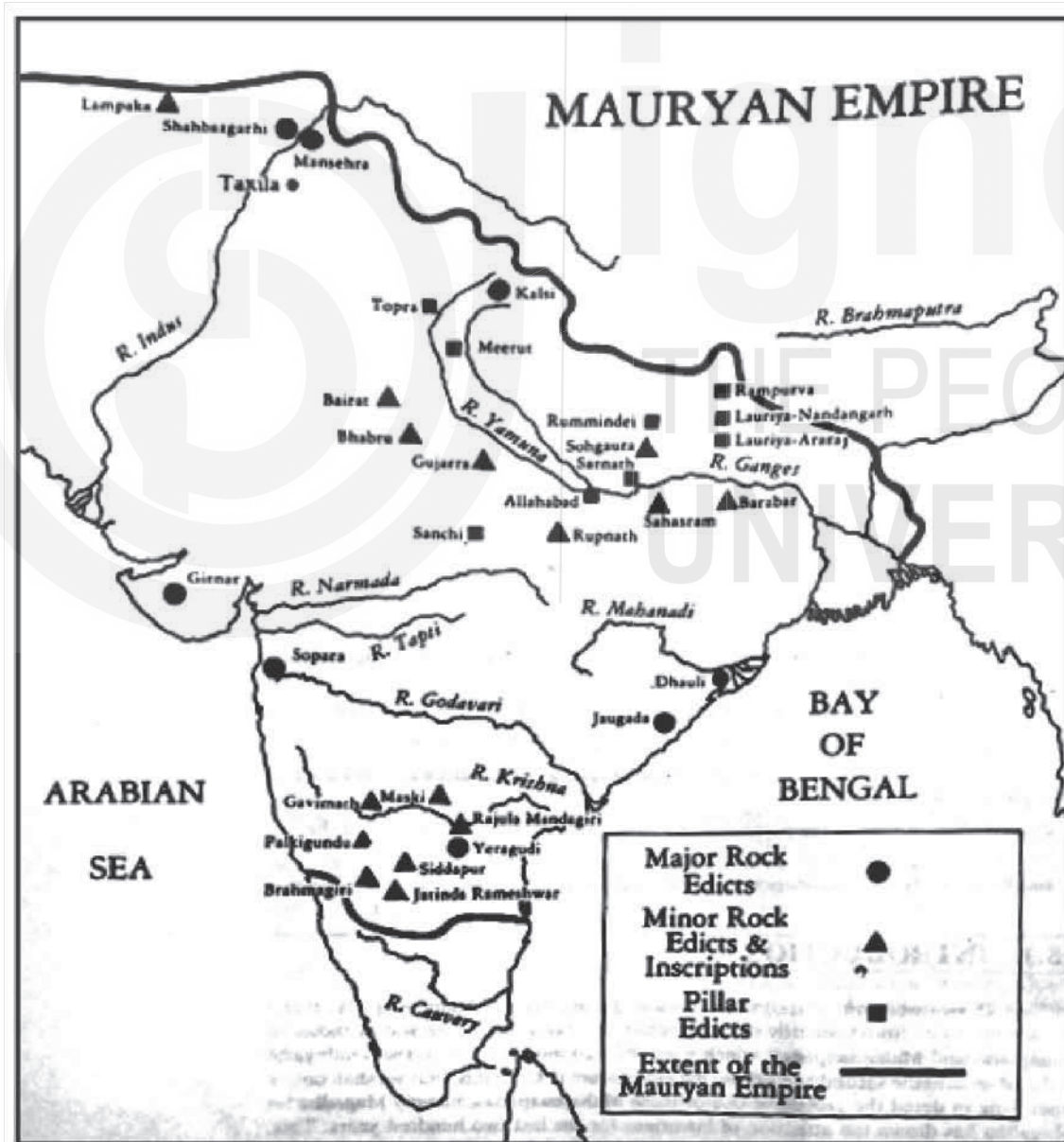
स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-5, इकाई-18।
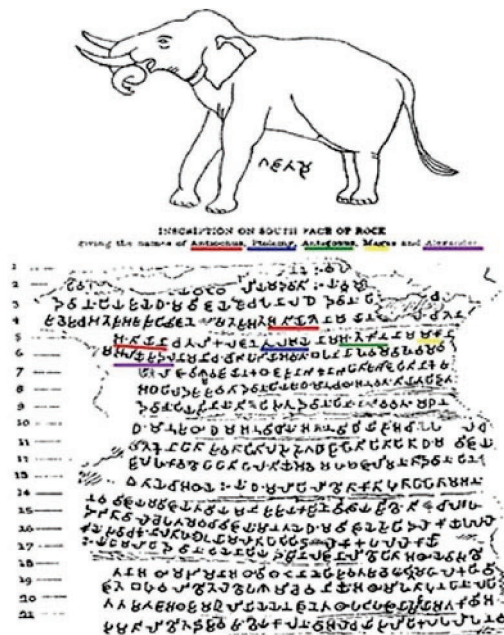
बाएँ : यूनानी राजाओं के साथ अशोक का कलसी शिलालेख। श्रेय : अलेक्जेंडर कनिंघम, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, वॉल्यूम-1, पृ. सं. 2471। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Khalsi_rock_edict_of_Ashoka_with_names_of_the_Greek_kings.jpg)।

दाएँ : धौली में एक अशोक के शिलालेख के स्थल पर चट्टान से बना प्रस्तर-हाथी। ए.एस.आई. स्मारक संख्या एन.-ओ.आर.-59। श्रेय : कुमार शक्ती। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Elephant-sculpture-dhauli.JPG)।

इसके अतिरिक्त अन्य लघु शिलालेख कर्नाटक के सिद्धपुरा, जटिंग-रामेश्वर और ब्रह्मगिरि स्थानों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लघु शिलालेख मध्य प्रदेश के जबलपुर के निकट रूपनाथ में, बिहार के ससाराम में, जयपुर के निकट बेराट में और कर्नाटक के मस्की में मिलते हैं।

दे व नाम पि या सा पि या दा सी नो अ सो का रा जा। पूर्ण शीर्षक 'देवनामपियस पियदसीनो अशोकराजा'। गुज्जर (दतिया जला, मध्य प्रदेश) स्थित लघु शिलालेख-1। श्रेय : अशोक तपसे। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gujarra_Devanampiyasa_Piyadasino_Asokaraja.jpg)।

स्तम्भ लेख, जिसमें अशोक के फरमान हैं, दिल्ली में पाया गया है। मूल रूप में इसकी प्राप्ति अम्बाला और मेरठ के निकट टोपरा नामक स्थान से हुई थी। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के अभिलेख उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी में लौरिया आराराज, बिहार में लौरिया नन्दनगढ़ और रामपूर्वा, भोपाल के समीप सांची, बनारस के निकट सारनाथ और नेपाल के रूमिनडेई नामक स्थानों पर मिले हैं।
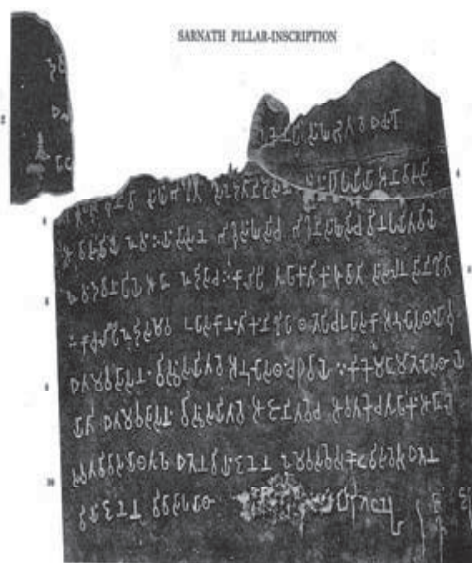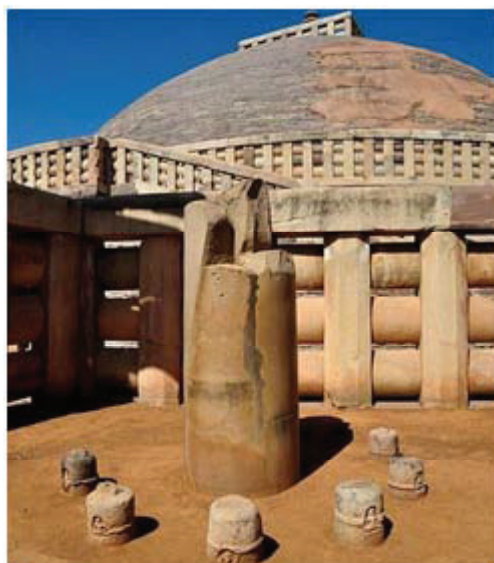
बाएँ : सांची के स्तूप-1 में स्थित अशोक का स्तंभ। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण स्मारक संख्या एन-एमपी-220। श्रेय : बिसवारूप गांगुली। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashokan_Pillar_-_Stupa_1_-_Sanchi_Hill_2013-02-21_4361.JPG)।

दाएँ : श्रेय : यूजेन हुल्ट्ज। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sarnath_pillar_inscription.jpg)।

इन स्थलों को इस इकाई में दिए गए नक्शे में दिखाया गया है। इससे आपको अशोक के शासनकाल में मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार की सही स्थिति का पता लगेगा। इन अभिलेखों के स्थापन पर गौर करने से यह बात भी स्पष्ट हो जाएगी कि उन्हें प्रयत्नपूर्वक समुद्र और स्थल व्यापारिक मार्गों पर स्थापित किया गया था। इसके आधार पर आधुनिक इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इसके पीछे उपमहाद्वीप पर नियंत्रण रखना भी एक उद्देश्य था, परन्तु मूल उद्देश्य कच्चे माल के स्रोत पर अधिकार बनाए रखना था।

ये लेख साम्राज्य की सीमा पर रहने वाले लोगों की चर्चा करते हैं, इससे ऊपर वर्णित राज्य की सीमा रेखा की पुष्टि होती है। दक्षिण में चोल, पांड्या, सत्यपुत्र और केरलपुत्रों का उल्लेख हुआ है, जो मौर्य साम्राज्य की परिधि से बाहर थे। साम्राज्य के भीतर भी लोगों की जाति और संस्कृति में काफी भिन्नता थी। उदाहरण के लिए उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कम्बोजों और यवनों का उल्लेख मिलता है। उनकी चर्चा के साथ-साथ भोजों, पितनिकों, आंध्रों और पुलिंदों का भी उल्लेख किया गया है, जो पश्चिमी भारत और दक्कन में बसे हुए थे।

मानचित्र पर अशोक के लेखों के फैलाव के अलावा कुछ और तथ्यों से भी उसके साम्राज्य के विस्तार का पता चलता है। विजय से हासिल राज्य क्षेत्र को *विजित* और ''शासकीय राज्य-क्षेत्र'' को *राजा-विषय* कहा गया था, सीमांत राज्य क्षेत्रों को *प्रत्यन्त* की संज्ञा दी गई है। मगध साम्राज्य की सीमा के बाहर उत्तर-पश्चिम में सेल्यूसिड राजा ऐंटिओकस द्वितीय का राज्य था, दक्षिण में चोल, पांड्य, केरलपुत्र और सत्यपुत्रों के राज्य तथा श्रीलंका द्वीप भी साम्राज्य की सीमा से बाहर थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरब में उत्तरी और दक्षिण बंगाल मौर्यों के साम्राज्य का अंग था।

इस प्रकार, अशोक के राज्य-काल में मगध साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अपनी चरम सीमा पर था। परन्तु इसके साथ ही साथ यह प्रयत्न भी चल रहा था कि साम्राज्य में होने वाले सभी युद्धों को समाप्त कर दिया जाए। अहिंसा की नीति को राज्य-नीति के रूप में अपनाया जाना अपने आप में एक अनूठी घटना थी, क्योंकि भारत के राजनीतिक इतिहास में इसे दोहराया

नहीं गया। विभिन्न इतिहासकारों ने बार-बार अशोक को उदार तानाशाह के रूप में चित्रित किया है। यह धारणा धम्म के व्यावहारिक पक्ष को नज़रअंदाज़ कर देती है। अशोक ने इसके माध्यम से एक विचार पद्धति का सहारा लेकर विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण करने की कोशिश की, जिसके अभाव में शासन करना बहुत मुश्किल था। मौर्यों के अभिलेख कुछ महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों और साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु यह सवाल अभी तक अपनी जगह खड़ा है कि वे क्षेत्र जहाँ अभिलेख पाए गए और वे क्षेत्र जहाँ अभिलेख नहीं पाए गए हैं, क्या समान रूप से नियंत्रित किये जाते थे।

बाएँ : सारनाथ का आशोक का स्तम्भ शिखर। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-5, इकाई-18।

दाएँ : वैशाली, बिहार, का अशोक स्तम्भ; लगभग तीसरी शताब्दी बी.सी.ई.। श्रेय : बीपिलग्रिम। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashoka_pillar_at_Vaishali,_Bihar,_India.jpg)।

बोध प्रश्न 3

1) सही और गलत के आगे क्रमशः ✓ और × का चिह्न लगाइए।

क) चन्द्रगुप्त के परामर्श पर सिकंदर ने मगध पर आक्रमण किया। ( )

ख) नंद और मौर्य परिवार के बीच खून का सम्बंध था। ( )

ग) चन्द्रगुप्त ने सेल्यूक्स निकेटर को पराजित किया। ( )

घ) चन्द्रगुप्त और बिंदुसार ने कन्याकुमारी तक इलाका जीत लिया था। ( )

ड़) सेल्यूसिड राजा, ऐंटिओकस प्रथम के साथ बिंदुसार का सम्पर्क था। ( )

2) मौर्य परिवार की जाति/मूल के सम्बंध में विभिन्न विचारों का उल्लेख कीजिए। उनमें से कुछ मतों का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

3) पाँच पंक्तियों में लिखिए कि अशोक के शासनकाल में युद्ध नीति क्यों बदल गई?

....

....

....

....

....

4) नीचे अशोक से संबंधित कुछ वक्तव्य दिए गए हैं। सही वक्तव्यों का चुनाव कीजिए। सही उत्तर, उसके नीचे दिए गए चार कोड उत्तरों में से एक है।

i) अशोक युवराज था और बिंदुसार का उत्तराधिकारी था।

ii) अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने बौद्ध धर्म अपना लिया।

iii) किसी प्रदेश को जीत लेने के बाद अशोक के अभिलेख वहाँ स्थापित कर दिये जाते थे।

iv) उसने युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विजय को अपना लिया।

v) अशोक के अभिलेखों में उसकी चर्चा देवानाम्पिय पियदस्सी के रूप में की गई है।

कोड

क) ii, iv, v

ख) i, iii, iv

ग) ii, iii, iv

घ) i, iv, v

13.8 सारांश

इस इकाई में हमने प्रथम ऐतिहासिक साम्राज्य से आपको परिचित कराने की कोशिश की है और इसके अध्ययन के लिए एक दिशा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, मगध साम्राज्य के उद्भव और क्षेत्रीय विस्तार की भी चर्चा की गई है। हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मगध की भौगोलिक स्थिति का सामरिक महत्त्व समझ गए होंगे और इसके उत्थान में सहायक महत्त्वपूर्ण कारकों से परिचित हो चुके होंगे।
- उन स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त की जिनकी सहायता से मगध, खासकर मौर्य शासन के राजनीतिक इतिहास के लेखन में सहायता मिल सकती है।
- मौर्य शासन के उद्भव के पूर्व मगध के आरंभिक इतिहास की प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- इतिहास के आरंभिक काल के संदर्भ में ''साम्राज्य'' की विभिन्न धारणाओं की व्याख्या से साक्षात्कार कर चुके होंगे।

- मौर्य परिवार के मूल और उनके आरंभिक इतिहास का विवरण प्राप्त कर चुके होंगे।
- चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार की विस्तार नीति की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण से लेकर कलिंग युद्ध तक की घटनाओं को जान चुके होंगे।
- अशोक की मृत्यु के समय मगध साम्राज्य के विस्तार की सीमाएँ जान सके होंगे।

13.9 शब्दावली

अधिशेष : शब्दार्थ : जरूरत होने के बाद बची सामग्री। आर्थिक संदर्भ में आवश्यकता पूर्ति के बाद बचा हुआ अतिरिक्त उत्पादन।

उत्तरापथ : उत्तरी स्थल मार्ग, जो हिमालय की पहाड़ियों तक जाता था।

उदारवादी निरंकुशता : एक अच्छा और उदार राजा, जिसके हाथ में पूर्ण नियंत्रण हो।

***चक्रवर्ती* क्षेत्र** : *चक्रवर्ती* या एकछत्र सम्राट का अधिकार-क्षेत्र।

"क्लासिकल स्रोत" : प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के यूनानी स्रोत।

तानाशाही : एक निरंकुश राजा, जिसके प्राधिकार पर कोई अंकुश न हो।

***धम्म*/धर्म** : शाब्दिक अर्थ "सार्वभौम व्यवस्था" : परन्तु अशोक के अभिलेखों में इसका उल्लेख "धर्म निष्ठा" के रूप में हुआ है।

सप्तांग : सात अंग।

सोफिस्ट : ग्रीक दर्शन; शब्दिक अर्थ है छल तर्क में विश्वास रखने वाला दार्शनिक।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग)

2) भाग 13.3 देखिए।

3) भाग 13.2 देखिए।

4) क) x ख) ✓ ग) x घ) x ङ) ✓

बोध प्रश्न 2

1) ग)

2) भाग 13.4 का अंतिम अंश देखिए।

3) भाग 13.5 देखिए।

4) क) X ख) ✓ ग) X घ) X ङ) ✓

बोध प्रश्न 3

1) क) X ख) X ग) ✓ घ) X ङ) ✓

2) भाग 13.6 को देखिए।

3) उपभाग 13.7.1 देखिए।

4) क)

13.11 संदर्भ ग्रंथ

बोंगार्ड़ लेविन, जी. (1985). *मौर्यन इंडिया.* दिल्ली

नीलकंठ शास्त्री, के.ए. (ऐड) (1952). *द ऐज ऑफ द नंदास् एण्ड मौर्यास्,* वाराणसी।

रेय चौधरी, एच. सी. (1965). *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एँशियंट इंडिया.* कलकत्ता, विद् ऐन अपडेट बाई बी.एन. मुखर्जी, कलकत्ता।

श्रीमाली, के. एम. (1985). *हिस्ट्री ऑफ पंचाल टू ऐ.डी 500.* वॉल्यूम I और II. दिल्ली।

स्मिथ, वी. (1957). *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया फ्रॉम 600 बी.सी. टू द महोमड़्डन कौन्कुऐस्ट.* फोर्टीन्थ एडिशन, ऑक्सफोर्ड।

थापर, रोमिला (1988). *द मौर्याज रीविज़िटेड.* कलकत्ता।

थापर, रोमिला (1997). *अशोक एण्ड द डिकलाईन ऑफ द मौर्यज.* ट्वेल्थ एडिशन. दिल्ली।

ट्रौटमैन, टी. आर. (1971). *कौटिल्य एण्ड द अर्थशास्त्र.* लाइडेन।

इकाई 14 प्रशासनिक संगठन, अर्थव्यवस्था और समाज*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे:

- मौर्यकालीन प्रशासन व्यवस्था के पुनर्निर्माण हेतु स्रोतों के बारे में जानकारी;
- मौर्य साम्राज्य के प्रशासनिक तंत्र के बारे में विस्तृत जानकारी;

* डॉ. कविता गौर, सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, श्यामा प्रससाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

- प्रशासन के विभिन्न स्तरों के बारे में जानकारी;
- मौर्य साम्राज्य के बारे में विभिन्न धारणाएँ;
- मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था और समाज की जानकारी;
- पश्चिमोत्तर भारत में विभिन्न प्रकार के राज्यों जैसे इंडो-ग्रीक तथा कुषाणों के उद्भव की जानकारी;
- सातवाहन के समय दक्कन तथा ओडिशा क्षेत्रों में राज्य-निर्माण प्रक्रिया की जानकारी; और
- मौर्योत्तरकालीन अर्थव्यवस्था और समाज की जानकारी।

14.1 प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में मौर्यकाल प्रथम साम्राज्य बनने का साक्षी था। 'साम्राज्य' शब्द का अर्थ उस विशाल क्षेत्र से है जिसकी कमान मौर्य सम्राटों के हाथों में थी। इसमें विभिन्न जातीय समूहों, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक विविधता वाले क्षेत्र शामिल थे। साथ ही विभिन्न धार्मिक और भाषाई पृष्ठभूमि के लोगों को भी एक दायरे में लाया गया था (चक्रवर्ती 2013: 131)। मौर्य शासकों द्वारा अपने समय के विशाल क्षेत्र पर शासन करने की ज़िम्मेदारी साम्राज्य को परिभाषित करती थी। मौर्यकालीन इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए प्राथमिक स्रोतों में विविध साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उपलब्ध हैं। मौर्य साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर बात करने से पहले इसकी स्थापना और अवधि पर एक नज़र डाल लेनी चाहिए।

14.2 मौर्य साम्राज्य का आधार और शुरुआत

चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश के अंतिम शासक धनानंद को हराकर 321 बी.सी.ई. में मौर्य साम्राज्य की स्थापना की।

ऐसा माना जाता है कि प्रभावशाली *ब्राह्मण* कौटिल्य की मदद से चंद्रगुप्त मौर्य ने नंदों को पराजित किया तथा उनसे पाटलिपुत्र का सिंहासन छीन लिया। उन्होंने सिंधु, गंगा के मैदानों तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्रों पर अधिकार कर मौर्य साम्राज्य की नींव रखी। चंद्रगुप्त मौर्य के बाद बिंदुसार ने 321 से 273 बी.सी.ई. तक शासन किया। उसने दक्कन पर नई विजय प्राप्त की।

बिंदुसार का पुत्र, अशोक 273 बी.सी.ई. के आस-पास सिंहासन पर बैठा। वह कई कारणों से मौर्य साम्राज्य का महान शासक था। बिंदुसार की मृत्यु के समय मौर्य साम्राज्य कलिंग को छोड़कर पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गया था। चंद्रगुप्त मौर्य ने क्षेत्रों पर अधिकार कर मौर्य साम्राज्य की भौगोलिक सीमाओं का विस्तार किया था। लेकिन *धम्म* नीति के ज़रिये विविध क्षेत्रों को एकजुट करने का श्रेय अशोक को दिया जाता है। *पुराणों* के अनुसार मौर्यों का शासन काल 137 वर्ष तक रहा। भारतीय इतिहास में मौर्य युग चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्ध से लेकर दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. की प्रथम तिमाही तक रहा (चक्रवर्ती 2013: 131)। इस अवधि ने भारतीय इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ी है।

अनेक विद्वानों ने विभिन्न स्रोतों के आधार पर मौर्यों की उत्पत्ति तथा जाति पर बहस की है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणवादी स्रोतों के अनुसार वे *शूद्र* तथा विधर्मी थे, संभवतः इसलिए प्रत्येक राजा अलग-अलग विधर्मी संप्रदाय का संरक्षक था (थापर 2002: 176)। एक अन्य स्रोत *मुद्राराक्षस* से पता चलता है कि चंद्रगुप्त की माँ एक गुलाम महिला थीं तथा उनका नाम मुरा था (चक्रवर्ती 2013: 121)। श्रीलंका के बौद्ध ग्रंथ *महावंश* में उल्लेख है कि चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म खत्तिय (*क्षत्रिय*) परिवार में हुआ था। 12वीं शताब्दी के जैन ग्रंथ *परिशिष्टपर्व* में चंद्रगुप्त

को *मोर-रक्षक* (*मयूर-पोषक*) का पौत्र बताया गया है। उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि मौर्य शासक शाही क्षत्रिय से संबंधित नहीं थे। हालांकि, बौद्ध ग्रंथ *महावंश* मौर्य शासकों की राजसी स्थिति पर प्रकाश डालता है। संभवतः इसके पीछे का कारण अशोक का बौद्धधर्म के साथ जुड़ाव रहा होगा।

14.3 प्रशासन तंत्र

मौर्य साम्राज्य का प्रशासनिक तंत्र कुशल था। आइए, इसके बारे में जानकारी प्राप्त करें।

14.3.1 स्रोत

निःसंदेह, अशोक उस विशाल साम्राज़्य को मज़बूत बनाने में कामयाब रहा जिसकी नींव चंद्रगुप्त मौर्य ने रखी थी। इतने विशाल साम्राज़्य का संचालन उस समय की कुशल प्रशासनिक व्यवस्था के कारण ही संभव हो पाया था। मौर्य प्रशासन की प्रकृति पर प्रकाश डालने वाले मुख्य स्रोत इस प्रकार हैः

i) कौटिल्य द्वारा लिखित *अर्थशास्त्र*

ii) मेगस्थनीज़ द्वारा लिखित *इंडिका* के कुछ अंश

iii) अशोक के शिलालेख

अर्थशास्त्र पहला अभिलेखीय ग्रंथ है, जिसमें राज्य[1] और उसके कार्यों को परिभाषित किया गया है। यह कौटिल्य अथवा चाणक्य द्वारा लिखित है जिसे चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री के रूप में जाना जाता है। इस बात पर बहस होती है कि राजनीति का यह ग्रंथ मौर्यकालीन राज्य की कार्य-प्रणाली के बारे में है अथवा एक आदर्श राज्य के बारे में है। ट्रॉटमैन के अध्ययनों से साबित होता है कि ग्रंथ का शुरुआती भाग तीसरी सदी बी.सी.ई. के मौर्यकालीन प्रशासनिक विभागों से संबंधित है। *अर्थशास्त्र* सिर्फ़ एक ही लेखक का कार्य नहीं जान पड़ता (चक्रवर्ती 2013ः 118)। इसमें 15 खंड हैं। सन् 1905 में आर. रामाशास्त्री ने इसकी खोज की थी। इसमें राजा तथा उसके मंत्रिपरिषद और राज्य के अधिकारियों के कर्तव्यों का उल्लेख है। यह ग्रंथ नागरिक और आपराधिक कानूनों के साथ-साथ विदेशी कूटनीति पर भी प्रकाश डालता है। इस स्रोत के साथ समस्या यह है कि यह एक सैद्धांतिक ग्रंथ है और इसका एक हिस्सा मौर्य काल में लिखा गया था। इसलिए कई लोग यह मानते हैं कि यह मौर्यकालीन स्थितियों को पूरी तरह नहीं दिखाता है।

दूसरा स्रोत *इंडिका* मेगस्थनीज़ की यात्राओं और अनुभवों पर आधारित है। वह अरकोशिया के सेल्यूकस निकेटर का प्रतिनिधि था और चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में एक यूनानी राजदूत के रूप में आया था (सिंह 2009ः 324)। यह ग्रीक स्रोत हमें खंडों में मिलता है जिसे बाद के लेखकों जैसे डायोडोरस, स्ट्रैबो और एरियन ने संरक्षित किया था। यह सांगठनिक आधार पर नगर प्रशासन और सामाजिक क्षेत्रों का विस्तृत विवरण देता है। रोमिला थापर बताती हैं कि मेगस्थनीज़ ने पश्चिम एशिया के सेल्यूसिड क्षेत्रों के आधार पर भारत की कल्पना की थी (चक्रवर्ती 2013ः 117)। उपिंदर सिंह इस पर प्रकाश डालती हैं कि खोए हुए ग्रंथ के अंशों के विभिन्न संस्करणों की जानकारी हमें डायोडोरस, स्ट्रैबो और एरियन के कार्यों के माध्यम से मिलती है (सिंह 2009ः 340)।

मौर्य प्रशासन पर प्रकाश डालने वाले सबसे महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत अशोक के शिलालेख हैं। मोटे तौर पर ये दो श्रेणियों में विभाजित हैं – चौदह शिलालेख तथा छह स्तंभ लेख।

[1] 'राज्य' शब्द का तात्पर्य अधिशेष उत्पन्न करने में सक्षम, संसाधन-आधार के अस्तित्व और वर्चस्व और अधीनता के सम्बन्धों की संरचना के अस्तित्व से है।

शिलालेखों और स्तंभ लेखों के ये समूह मामूली बदलावों के साथ विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं। अशोक के कई छोटे शिलालेख, स्तंभ लेख और गुफा शिलालेख भी हैं (सिंह 2009: 328)। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि ये शिलालेख एक राजा के रूप में अशोक के विचारों को व्यक्त करते हैं तथा मौर्यकाल के समकालीन हैं। बहरहाल, ये मौर्य प्रशासन के बारे में प्रासंगिक जानकारी भी देते हैं।

आइए, अब हम इन स्रोतों के माध्यम से मौर्य प्रशासन के कार्यों पर एक नजर डालते हैं।

अर्थशास्त्र राज्य के सात प्रमुख अंगों ("सप्तांग राज्य") के बारे में बताता है। वे इस प्रकार हैं – *स्वामी* (राजा), *अमात्य* (मंत्री), *जनपद* (क्षेत्र और जनता), *दुर्ग* (किलेबंद राजधानी), *कोष* (कोषागार), *दंड* (न्याय), *मित्र* (सहयोगी) (सिंह 2009: 341)
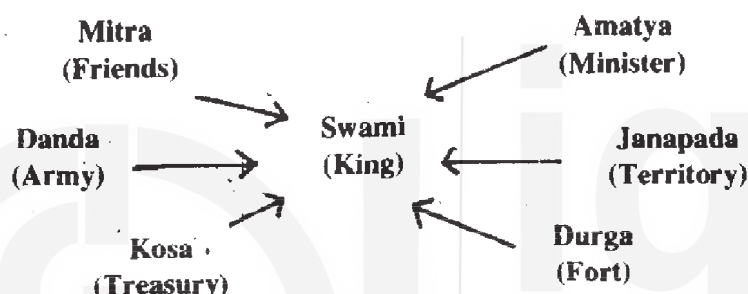
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-5, इकाई-20

14.3.2 राज्य शासन

मौर्य राज्य में राजा एक निर्णायक व्यक्ति था। उसे *वर्णाश्रम धर्म* का संरक्षण करने वाला बताया गया है (*अर्थशास्त्र* 2.1.26)। *अर्थशास्त्र* में राजा द्वारा प्रजा के प्रति पैतृक नज़रिये को भी उभारा गया है। इसमें कहा गया है कि राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर और राजा का लाभ प्रजा को लाभ देने में निहित था (*अर्थशास्त्र* 1.19.34)। इस निदेशात्मक ग्रंथ में राजा के दैनिक कार्यों को भी निर्धारित किया गया है (*अर्थशास्त्र* 1.19.16)। मेगस्थनीज़ अपने लेखों में राजा के दैनिक कार्यों की व्यस्तता का वर्णन करता है। वह बताता है कि चंद्रगुप्त अपने विश्राम के समय भी आधिकारिक मामलों का संचालन करते थे (चक्रवर्ती 2013: 133)। अशोक के शिलालेखों में भी राज्य मामलों के महत्व पर बल दिया गया है। उसमें से एक में कहा गया है कि यदि राजा अपने आंतरिक कक्ष में हो, तो भी उसे सभी महत्वपूर्ण आधिकारिक मामलों के बारे में सूचित किया जाना चाहिए (शिलालेख VI)।

अर्थशास्त्र प्रशासन के सभी पहलुओं जैसे मंत्रियों की नियुक्ति और निष्कासन, राजकोष की सुरक्षा, लोगों के कल्याण के लिए गतिविधियों और अपराधों के लिए दंड के प्रावधानों का अंतिम अधिकार राजा को देता है। वह इन मामलों का निर्धारण करता है। यद्यपि अशोक के पहले और दूसरे शिलालेखों में प्रजा के प्रति राजा के पैतृक रवैए को रेखांकित किया गया है फिर भी सीमा-क्षेत्रों पर रहने वाले लोगों के प्रति एक निश्चित आधिकारिक तत्व दिखाई देता है (सिंह 2009: 343)[2]। आठवें शिलालेख से पता चलता है कि *देवानामपिय* (देवताओं को

[2] राजा यह चेतावनी देता है कि सीमावर्ती क्षेत्रों के लोगों के लिए सभी प्रकार के अपराधों को माफ नहीं किया जाएगा (सिंह 2009: 343)।

प्रिय) की उपाधि केवल अशोक तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इसे मौर्य वंश के शासकों की पारंपरिक राजवंशीय उपाधि के रूप में जाना जाता था (चक्रवर्ती 2013: 126)।

14.3.3 *अमात्य*

अर्थशास्त्र के अनुसार किसी भी राज्य का कार्य बिना सहायक के नहीं चल सकता; इसलिए *अमात्य* नियुक्त किए गए। उन्हें राजा के रथ का पहिया कहा जाता है। *अमात्य* एक व्यापक शब्द है जिसमें उच्च स्तर के अधिकारी, परामर्शदाता और विभागों के कार्यकारी प्रमुख शामिल थे। उच्च स्तर के इन अधिकारियों को छल के विशेष परीक्षण द्वारा चुना जाता था जिसमें यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके पद कितने अनिश्चित थे। दूसरी ओर, *मंत्री* एक विशिष्ट शब्द था जो राजा के सलाहकारों और पार्षदों के लिए प्रयुक्त होता था (सिंह 2009: 343)। इसमें ऐसी *मंत्रिपरिषद* का भी उल्लेख मिलता है जिसमें विभिन्न विभागों के प्रमुख विद्यमान थे। अशोक के तीसरे शिलालेख में परिषद शब्द कुछ निश्चित कार्यों को पूरा करने वाले अधिकारी, *युक्त,* के रूप में बताया गया है। इसके अलावा, छठवें शिलालेख में बताया गया है कि परिषद के सदस्यों के बीच विवाद के मामले में राजा को तुरंत सूचित किया जाना चाहिए (सिंह 2009: 343)। यह तथ्य इस बात को दर्शाता है कि अंतिम शक्ति राजा के पास निहित थी और *मंत्रिपरिषद* की प्राथमिक भूमिका सलाहकार की थी। दिलचस्प है कि मेगस्थनीज़ समाज को सात वर्गों में वर्गीकरण करते हुए उन सलाहकारों और मूल्यांकनकर्ताओं के बारे में बताता है जो संख्या में कम थे और प्रशासन में सर्वोच्च स्थान रखते थे (चक्रवर्ती 2013: 134)। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शीर्ष स्तर पर प्रशासन का संचालन मंत्रियों की तुलना में उच्च स्तरीय अधिकारियों (*अमात्य*) द्वारा किया जाता था।

अशोक के शिलालेखों के अनुसार *महामात्रों* को सर्वोच्च अधिकारियों के रूप में जाना जाता था। विभिन्न प्रकार के *महामात्रों* का उल्लेख अशोक के शिलालेखों में मिलता है। वे इस प्रकार हैं -

- *अंत-महामात्र* : सीमांत क्षेत्रों के प्रभारी के रूप में,
- *इतिझक्क-महामात्र* : महिला कल्याण के लिए नियुक्त
- *नगलवियोहालक-महामात्र* : नगर प्रशासन के प्रभारी के रूप में, और
- *धम्म-महामात्र* : अशोक की धम्म नीति के प्रचार के लिए नियुक्त विशेष अधिकारी के रूप में (चक्रवर्ती 2013: 135)।

14.3.4 सैन्य प्रशासन

सेना राज्य की दूसरी प्रमुख अंग थी। मौर्य साम्राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रों को बनाए रखने के लिए एक शक्तिशाली सशस्त्र बल की आवश्यकता थी। किलेबंद राजधानी (*दुर्ग*) केवल सेना के साथ ही संभव थी। इस काल के सैन्य प्रशासन के विवरण पर एक नजर डालते हैं। ग्रीक स्रोतों से पता चलता है कि सैंड्रोकोटस (चंद्रगुप्त) के पास अपने शासनकाल के दौरान एक विशाल क्षेत्र था जो 600,000 सैनिकों वाली उनकी विशाल सेना के कारण संभव हुआ था। यद्यपि यह सेना की संख्यात्मक शक्ति एक असंभावित आँकड़ा हो सकती है, फिर भी यह इंगित करता है कि मौर्य राज्य के पास विशाल जनशक्ति थी। अशोक द्वारा कलिंग पर विजय मौर्यों की भव्य सेना के बारे में ही बताता है। यूनानी ग्रंथों के अनुसार सैन्य प्रशासन का संचालन निम्नलिखित छह मंडलों द्वारा किया जाता था। प्रत्येक मंडल में पाँच सदस्य होते थे:

- पहला मंडल नौसेना मामलों से संबंधित था,

- दूसरा मंडल बैलगाड़ी के द्वारा सेना की देखभाल और रसदों की आपूर्ति से संबंधित था,
- तीसरा मंडल पैदल सेना के प्रभारी का था,
- चौथा मंडल घुड़सवार सेना के प्रमुख का था,
- पांचवाँ मंडल रथों के प्रभारी का था,
- छठा मंडल हाथी सैन्य दल के प्रभारी का था।

इसलिए ग्रीक स्रोतों ने समितियों के गठन के माध्यम से सैन्य प्रशासन पर प्रकाश डाला है। *अर्थशास्त्र* सशस्त्र बलों की विभिन्न इकाइयों को विभिन्न विभागाध्यक्षों (*अध्यक्ष*) के अधीन रखता है। उदाहरण के लिए:

➢ *नवाध्यक्ष* नौसेना की गतिविधियों के पर्यवेक्षक के रूप में,

➢ *गोध्यक्ष* बैलगाड़ी के प्रबंधन के लिए,

➢ *पत्याध्यक्ष* पैदल सेना के प्रभारी के रूप में,

➢ *रथाध्यक्ष* रथों के प्रभारी के रूप में,

➢ *हस्ताध्यक्ष* हाथी दल के प्रभारी के रूप में।

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रीक स्रोत और *अर्थशास्त्र* दोनों सेना की संरचना में अलग-अलग इकाइयों की बात करते हैं।

ग्रंथ में सेना के प्रभारी के रूप में *सेनापति* का उल्लेख है जिसका वार्षिक वेतन 48,000 पण था। यहाँ मौर्य सेना के *सेनापति* का ऐतिहासिक संदर्भ भी मिलता है। पुष्यमित्र शुंग अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ के *सेनापति* थे (चक्रवर्ती 2013: 136)। इसके अलावा, हथियारों के रखरखाव तथा देखभाल करने के लिए एक अलग विभाग का उल्लेख भी है जिसके प्रमुख को *आयुद्धागाराध्यक्ष* के रूप में जाना जाता था। इस बात पर संदेह है कि क्या मौर्य सेना ने नौसेना बनाए रखी थी अथवा नहीं। क्योंकि ग्रंथ के *नवाध्यक्ष* खंड में समुद्री जहाजों की नहीं, सिर्फ़ नदी के नौकाओं के बारे में जानकारी मिलती है। कौटिल्य इस बात को स्वीकार करता है कि युद्ध बलों में वनवासियों (*अरण्य वासिन / वन वासिन*) को नियुक्त किया जाता था (चक्रवर्ती 2013: 136)।

14.3.5 गुप्तचर विभाग

एक अन्य महत्वपूर्ण विभाग जासूसी अथवा गुप्तचर विभाग था जो सशस्त्र बलों से संबंधित था। *अर्थशास्त्र* में एक स्थापित एवं विस्तृत गुप्तचर प्रणाली का विवरण मिलता है। यह गुप्तचरों का विस्तृत विवरण देता है। मोटे तौर पर वे दो भागों में विभाजित थे:

- स्थिर गुप्तचर (समस्थ),
- गतिशील गुप्तचर (संचार)

गुप्त सेवाओं के प्रमुख को *समाहर्त* के रूप में जाना जाता था जिसका कार्य राजस्व का संग्रह करना था। कौटिल्य के अनुसार सूचनाओं के सत्यापन के लिए, गुप्तचरों द्वारा दी गई जानकारी को गतिशील गुप्तचरों द्वारा एकत्रित कर स्थिर गुप्तचर के पास भेजा जाता था। फिर वहाँ से गुप्तचर सेवाओं के प्रमुख के पास भेजा जाता था (चक्रवर्ती 2013: 137)। गुप्तचरों के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:

i) मंत्रियों पर नज़र रखना,

ii) सरकारी अधिकारियों पर रिपोर्ट तैयार करना,

iii) नागरिकों की भावनाओं की जानकारी जुटाना,

iv) विदेशी शासकों के रहस्य जानना।

इन गुप्तचरों को संन्यासियों, छात्रों, गृहस्वामियों आदि तरह-तरह के भेष बदलने पड़ते थे। अशोक के शिलालेखों में *प्रतिवेदक* और *पुलेष्नी* शब्द का उल्लेख है, जो राजा को जनता के विचारों से अवगत कराते थे। *प्रतिवेदक* शब्द गुप्तचरों के लिए तथा *पुलेष्नी* शब्द का प्रयोग उच्चस्तरीय अधिकारियों के लिए किया जाता था (सिंह 2009ः 345)। क्लासिकल ग्रंथों में मौर्य प्रशासन में सबसे विश्वसनीय लोगों के लिए *एपिस्कोपई* शब्द का भी उल्लेख मिलता है। इस शब्द का प्रयोग मौर्य क्षेत्र के गुप्तचरों के लिए किया जाता था (चक्रवर्ती 2013ः 137)।

14.3.6 राजस्व प्रशासन

विभिन्न स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों के रखरखाव हेतु राज्य के संसाधनों की जरूरत होती थी। इसलिए, राजस्व प्रशासन (*कोष*) *अर्थशास्त्र* में *सप्तांग राज्य* का अनिवार्य अंग माना जाता है। ग्रंथ में *समाहर्त* का उल्लेख राजस्व के मुख्य संग्रहकर्ता और खातों को बनाए रखने के प्रभारी के रूप में देखा गया है। *समनिधातृ* को शाही भंडारों का कोषाध्यक्ष माना जाता है (सिंह 2009ः 344)। मुख्य संग्रहकर्ता राजस्व संग्रह के लिए नियुक्त इन सात प्रमुखों से को देखता थाः

i) किलेबंद शहरी क्षेत्र (*दुर्ग*),

ii) ग्रामीण क्षेत्र (*राष्ट्र*),

iii) अकट (*खानें*),

iv) सिंचाई परियोजनाएँ (*सेतु*),

v) वन (*वन*),

vi) चारागाह मैदान (*व्रज*), और

vii) व्यापार मार्ग (*वणिकपथ*)।

इन सभी संसाधनों के संग्रह हेतु अपने क्षेत्र होते थे। उदाहरण के लिए, शहरों ने जुर्माना, बिक्री कर (*शुल्क*), शराब की बिक्री पर उत्पाद *शुल्क*, अमीरों पर लगाया जाने वाला एक प्रकार का आयकर आदि के रूप में राजस्व एकत्र किया जाता था। *अर्थशास्त्र* में लगभग 22 करों के बारे में उल्लेख है जिन्हें शहरी क्षेत्र (*दुर्ग*) से एकत्र किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाला राजस्व, राज्य के आय के रूप में शाही भूमि (*सीता*) से, काश्तकारों से भू-राजस्व (*भाग*), बागों पर *कर*, नौका *शुल्क* आदि लिया जाता था। चूँकि सभी खदानें राज्य के नियंत्रण में थीं, इसलिए खनिज संपदा राज्य के लिए आय का एक नियमित स्रोत था। सड़क या जल-मार्ग से यात्रा करने वाले व्यापारियों पर कर लगाया जाता था। निर्यात और आयात पर भी कर लगाया गया था। भूमि कर राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत था। मौर्य काल के *भाग* की दर कम से कम उपज का 1/6वाँ भाग थी। यह केवल *अर्थशास्त्र* में कहा गया है कि खेती करने वालों पर सिंचाई उपकर (*उदकभाग*) 1/5 से 1/3वें भाग तक लगाया जाता था। हालांकि, कुछ विद्वानों के अनुसार, यह संभव नहीं है कि मौर्यों ने किसानों पर यह कर लगाया था (चक्रवर्ती 2013ः 138)।
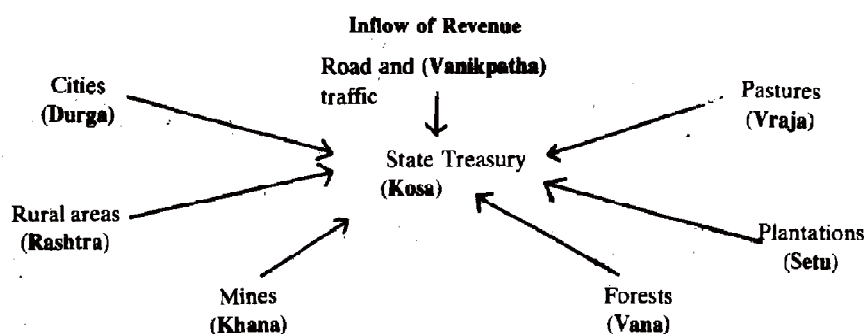
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-5, इकाई-20।

कुछ कर संग्रह राज्य के लोगों से सीधे लिए जाते थे। उदाहरण के लिए, जुआरियों को अपनी जीत का 5 प्रतिशत भाग राज्य को देना पड़ता था तथा व्यापारियों को अपने बाटों को राज्य के अधिकारियों द्वारा प्रमाणित कराने पर भुगतान करना पड़ता था। आयुद्ध उद्योग और नमक व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था जिससे राजस्व में वृद्धि हुई। राज्य को आपातकाल में भी इन पर कर लगाने का अधिकार दिया गया थाः

- किसानों,
- व्यापारियों,
- कारीगर, और
- यहाँ तक कि वेश्याओं पर भी।

राज्य के राजस्व को इकट्ठा करने, विनियमित करने और प्रबंधित करने के लिए विभिन्न विभाग थे। *अर्थशास्त्र* का विवरण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि उस समय की अर्थव्यवस्था में राज्य ने एक सक्रिय भूमिका निभाई थी। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि राजस्व संग्रह में गैर-कृषि कार्यों जैसे वेश्यावृत्ति के पेशे को भी महत्व दिया गया था।

अधिकांश राजस्व संग्रह राज्य के खजाने में जाता था तथा व्यय के रूप में उसे खर्च भी किया जाता था। इसे हम एक प्रवाह संचित्र की मदद से समझ सकते हैं -
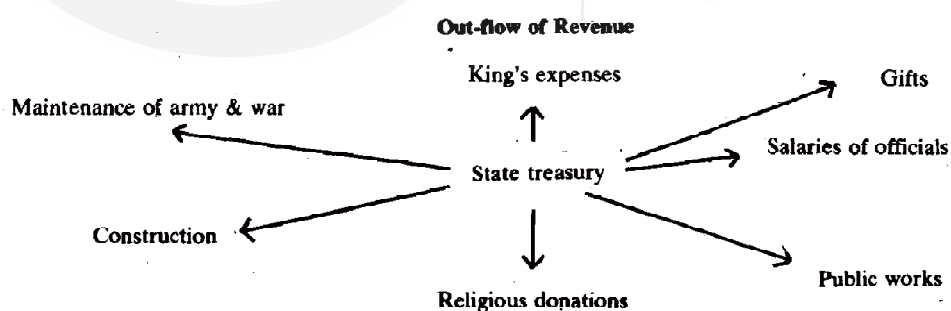
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-5, इकाई-20।

यह आँकड़ा बताता है कि राज्य के राजस्व का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता था। राजस्व का बड़ा हिस्सा सशस्त्र बलों के रखरखाव, राज्य के अधिकारियों के वेतन का भुगतान और राजा के व्यक्तिगत खर्च में उपयोग किया जाता था। राज्य धार्मिक गतिविधियों को बढ़ावा देने और उपहार देने के लिए भी एक बड़ा हिस्सा खर्च करता था। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अशोक ने *धम्म* के प्रचार हेतु *धम्ममहामात्रों* का विशेष वर्ग बनाया था। *दिव्यवदान* ग्रंथ इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि अशोक ने अपने पुत्र महिंदा और बेटी

संघमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा था। इसके अलावा, शिलालेखों में लिखा गया कि उन्होंने लुम्बिनी के गांवों की कृषि उपज के करों को घटाकर 1/8 कर दिया, क्योंकि लुम्बिनी बुद्ध का जन्मस्थान था (चक्रवर्ती 2013ः 138)। लोक कल्याणकारी गतिविधियों के प्रति आकर्षण अशोक के शिलालेखों के साथ-साथ *अर्थशास्त्र* में भी देखने को मिलता है। जैसे, रुद्रदामन के शिलालेख में (दूसरी शताब्दी सी.ई. के मध्य), चंद्रगुप्त के समय में सुदर्शन नामक एक झील (तड़ग) के निर्माण का उल्लेख है। इसे पानी की आपूर्ति के लिए बनाया गया था। विभिन्न प्रकार के चिकित्सकों के कई संदर्भ मिलते हैं। जैसे, सामान्य चिकित्सक (*चिकित्सक*), दाई (*गर्भव्याधि*) आदि। अशोक के शिलालेखों से हम जानते हैं कि चिकित्सा उपचार और दवाएँ मनुष्यों और जानवरों दोनों के लिए उपलब्ध थी। *अर्थशास्त्र* में उल्लेख है कि राजा को अनाथ, बूढ़ी महिलाओं आदि की देखभाल करनी चाहिए। हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि मौर्य शासन में इन सबका कहाँ तक पालन किया गया था। ग्रंथ में सार्वजनिक कार्यों का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू – सड़कों का निर्माण, मरम्मत और सराय खोलने के बारे में भी बताया गया है।

14.3.7 न्याय व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारू संचालन और राज्य के राजस्व के उचित उपयोग हेतु एक सुव्यवस्थित कानून का होना अनिवार्य है। *अर्थशास्त्र* में *दंड*, प्रशासन का छठा अंग है और *अर्थशास्त्र* में बल अथवा न्याय के रूप में जाना जाता था। यह ग्रंथ न्याय व्यवस्था पर विस्तृत चर्चा करता है। न्यायाधीशों को *धर्मस्थ* और *प्रादेश्त्री* कहा जाता था। वे अपराधियों के दमन के लिए जिम्मेदार थे (सिंह 2009ः 347)। राजा धर्म का पालन करने वाला था और सर्वोच्च न्यायिक शक्ति रखता था। *अर्थशास्त्र* में विभिन्न अपराधों के लिए दंड की सूची दी गई है। इनमें विवाह कानूनों के उल्लंघन, तलाक, हत्या, मिलावट, गलत माप-तौल आदि शामिल हैं। कानून के अपराधियों तथा विभिन्न स्तरों पर विवादों को निपटारे के लिए अलग-अलग अदालतें थीं। *अर्थशास्त्र* में दो प्रकार के अदालतों के बारे में उल्लेख हैः

- *धर्मास्थीय* वे न्यायालय थे जिसमें व्यक्तिगत विवादों का फैसला किया जाता था, और
- *कंटकशोधन* वे न्यायलय थे, जिनमें व्यक्तियों और राज्य से संबंधित मामलों पर फैसला होता था।

उदाहरण के लिए, पहले प्रकार की अदालतें *स्त्रीधन* (पत्नी के धन) या विवाह आदि के विवादों से संबंधित मुद्दों को सुलझाती थी; और दूसरी प्रकार की अदालतें मज़दूरों की मज़दूरी, हत्या आदि का निपटारा करती थी। सजा के लिए जुर्माने से लेकर अंगों के काटने तथा मृत्युदंड तक का प्रावधान था। मेगस्थनीज़ के अनुसार मौर्यकालीन भारत में अपराध की घटना बहुत अधिक नहीं होती थी। लेकिन *अर्थशास्त्र* में उल्लिखित दंडों की सीमा बताती है कि मौर्य समाज के ताने-बाने में कानूनों और अपराध का टूटना असामान्य नहीं था। इससे *अर्थशास्त्र* में विस्तृत गंभीर दंड संहिता का उल्लेख हो सकता है। *अर्थशास्त्र* में दंड *वर्ण* पदानुक्रम पर आधारित होते थे, जिसका अर्थ है कि एक ही तरह के अपराध के लिए एक *ब्राह्मण* को *शूद्र* की तुलना में बहुत कम सजा दी जाती थी।

14.3.8 नगरीय प्रशासन

शहर प्रशासन पर एक नजर डालते हैं। मेगस्थनीज़ ने शहर प्रशासन में मौर्य शासकों के केंद्र पाटलिपुत्र का विशद वर्णन किया है शायद मौर्यों का शीर्ष केन्द्र। नगर प्रशासन के प्रभारी *अस्टिनोमोई* के नाम से जाने जाते थे। इस स्रोत में नगर परिषद को छह समितियों में विभाजित किया गया है, प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थेः

1) पहली समिति, उद्योग और शिल्प की देखभाल करती थी। इसके कार्यों में ऐसे केंद्रों का निरीक्षण, मजदूरी तय करना आदि शामिल थे।

2) दूसरी समिति, विदेशियों की देखभाल करती थी। इसके कार्यों में उनके भोजन, रहने और सुरक्षा आदि की व्यवस्था करना शामिल था।

3) तीसरी समिति, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण करती थी।

4) चौथी समिति, व्यापार और वाणिज्य की देखभाल करती थी। इसके कार्यों में माप-तौल और उपायों का निरीक्षण, बाजार को नियंत्रित करना, आदि शामिल थे।

5) पाँचवीं समिति, विनिर्मित वस्तुओं का निरीक्षण करती थी, उनकी बिक्री के लिए प्रावधान किए गए थे। नई और पुरानी वस्तुओं में पहचान पर सख्त निगरानी रखी जाती थी।

6) छठी समिति, बेची गई वस्तुओं पर कर एकत्र करने वाली थी।

इन समितियों ने शहर प्रशासन की गतिविधियों को परिभाषित किया। *अर्थशास्त्र* में शहर की योजना और प्रशासनिक प्रमुख के बारे में जानकारी मिलती है। जैसे, इसमें उल्लेख है कि नगर प्रशासन के प्रमुख को *नगरक* कहा जाता था। *स्थानिक* और *गोप* उसके अधीनस्थ अधिकारी थे। दिलचस्प है कि, ग्रंथ के अनुसार चौथी समिति के कार्यों का प्रदर्शन *पणाध्यक्ष* द्वारा किया जाता था। करों का संग्रह (छठी समिति) *शुल्काध्यक्ष* की जिम्मेदारी थी और जन्म और मृत्यु का पंजीकरण *गोप* करता था। इनके अलावा, अधिकारियों का एक दल होता था, जो कार्यों को विस्तृत रूप से परिभाषित करता था।

उदाहरण के लिए:

- *बंधनगाराध्यक्ष*, जेलों की देखभाल करते थे।
- *रक्षी* यानी पुलिस, लोगों की सुरक्षा की देखरेख करते थे।
- केंद्रों में काम करने वाले जहाँ माल का निर्माण किया जाता था, उसकी देखरेख *लोहाध्यक्ष, सौवर्णिक* आदि जैसे अधीक्षक करते थे।

अर्थशास्त्र शहर प्रशासन से संबंधित विभिन्न गतिविधियों को भी दर्शाता है। अशोक के शिलालेखों में वर्णित *नगलवियोहालक-महामात्र* निश्चित रूप से नगर प्रशासन से जुड़े हुए थे (सिंह 2009: 345)। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि शहर प्रशासन, जैसा कि इन स्रोतों में दिखाया गया है, विस्तृत और सुनियोजित था।

14.3.9 प्रांतीय प्रशासन

विशाल मौर्य साम्राज्य का संचालन सिर्फ़ मौर्यों की प्रशासनिक राजधानी पाटलिपुत्र या सर्वोच्च केंद्रों से ही नहीं हो सकता था। विशाल क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन केंद्रों की भी आवश्यकता थी। प्रांतीय केंद्रों के प्रमुख राज्यपाल थे, जो शासक द्वारा नियुक्त किए जाते थे। राज्यपाल *महामात्यों* (अशोक के काल के दौरान *महामात्रों*) मंत्रि परिषद द्वारा निर्देशित एक सदस्य था। यह माना जाता है कि प्रांतीय स्तर पर मंत्रियों की परिषद न केवल राज्यपाल पर नियंत्रण रखती थी बल्कि, कई बार परिषद के राजा के साथ सीधे संबंध थे। अशोक के शिलालेख (धौली और जौगड़) में उल्लेख है कि तीन प्रांतीय राजधानियाँ – तोशली (पूर्व में), उज्जैन (पश्चिम में), और तक्षशिला (उत्तर में) (राजपरिवार से संबंध रखने वाले) *कुमार* के अधीन थीं। प्रथम शिलालेख में यह पता चलता है कि स्थानीय अधिकारियों को निरीक्षण के दौरे के आदेश जारी करने का निर्देश अशोक स्वयं देता है,

जबकि *कुमार* को इसके बारे में सूचित नहीं किया जाता था। इससे पता चलता है कि सभी *कुमार* अपने प्रांतीय केंद्रों को संचालित करने में एक समान सशक्त नहीं थे।

एक अन्य प्रांतीय राजधानी सु*वर्ण*गिरी (दक्षिण में) *आर्यपुत्र* के अधीन थी। *आर्यपुत्र* शब्द का तात्पर्य परिवार के सबसे बड़े पुत्र (पाणिनी की अष्टाध्यायी के अनुसार) से था। इसलिए, यहाँ *कुमार* की तुलना में *आर्यपुत्र* का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता था। संभवतः, दक्षिण (सु*वर्ण*गिरि) के प्रांतीय केंद्र के समृद्ध संसाधन क्षेत्र को ज्येष्ठ पुत्र को सौंपा जाता था, जो सबसे बड़ा और जिम्मेदार होता था (चक्रवर्ती 2013: 139)।

प्रांत के भीतर कुछ क्षेत्रों को उन प्रशासकों द्वारा संचालित किया जाता था जो अपने क्षेत्रों के छोटे-मोटे शासक होते थे। ऐसा हम इसलिए कह सकते हैं क्योंकि रुद्रदमन के जूनागढ़ शिलालेख में अशोक के समय जूनागढ़ क्षेत्र के राज्यपाल के रूप में एक *यवन तुषास्प* का उल्लेख मिलता है। हालाँकि, उसी शिलालेख में यह भी उल्लेख मिलता है कि चंद्रगुप्त मौर्य के समय उस क्षेत्र के प्रतिनिधि एक *वैश्य* पुष्यगुप्त थे।

रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख। स्रोतः *एपिग्राफिया इंडिका, वॉल्यूम 8*। 1905 में आठवाँ प्रकाशन। श्रेयः जे एफ. फ्लीट। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Junagadh_inscription_of_Rudradaman_(portion).jpg).

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि इन राज्यपालों ने शाही राजकुमार के पद को नहीं अपनाया। इसके अलावा, *यवन* शब्द पश्चिम एशिया के लोगों के लिए प्रयुक्त होता था, जबकि तुषास्प

एक ईरानी नाम था। ये दोनों राजशाही वंश के बाहर के प्रतीत होते हैं (चक्रवर्ती 2013: 140)। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य में विभिन्न प्रकार के प्रांतीय अधिकारियों को विविध प्रशासनिक इकाइयाँ सौंपी गई थीं।

14.3.10 स्थानीय प्रशासन

अशोक के अभिलेखों में उल्लेख है कि प्रांतीय प्रशासन को जिला स्तर पर विभाजित किया गया था और इसके लिए *जनपद* और *अहार* का प्रयोग किया जाता था। जिला स्तर पर महत्वपूर्ण अधिकारी थे:

- *प्रादेशिक*
- *रज्जुक*
- *युक्त*

इन अधिकारियों को *धम्म* के बारे में लोगों को निर्देश देने और अन्य उद्देश्यों के लिए हर पाँच साल में दौरे पर जाना होता था (सिंह 2009: 344)। *प्रादेशिक* को जिले का समग्र प्रभारी माना जाता था। उनके अन्य कार्यों में शामिल था:

- भूमि का सर्वेक्षण और मूल्यांकन
- राजस्व का संग्रह
- कानून और व्यवस्था का रखरखाव

रज्जू शब्द का अर्थ *रस्सी* है। यहाँ रस्सी का उपयोग भूमि की माप के लिए किया जाता होगा। बोंगार्ड लेविन के अनुसार पूर्वोक्त शिलालेख में प्रयुक्त रज्जुक तथा मेगस्थनीज़ के लेख में उल्लिखित *एग्रोनोगोई* में समानता देखी जा सकती है। क्लासिकल स्रोत में उन्हें राजस्व मूल्यांकन हेतु भूमि की माप करने वाले के रूप में देखा जाता है (सिंह 2009: 344)। रज्जुक का ऐसा ही अर्थ पाली ग्रंथों में भी देखा जाता है जिसमें *रज्जुग्गहकमच्छ* शब्द का प्रयोग उस अधिकारी के लिए किया गया है जिसने रस्सी पकड़ी हुई है। क्षेत्र को मापने के लिए रस्सी को पकड़े हुए एक अधिकारी की भूमिका ऊपर वर्णित भूमिका के समान दिखाई देती है (चक्रवर्ती 2013: 141)। *युक्त* छोटे अधिकारी थे, जो अन्य दो अधिकारियों के सहायक सचिव होते थे।

कौटिल्य बताता है कि स्थानीय स्तर पर राजा एक मुख्यालय स्थापित करता था, जिसे *स्थानीय* कहा जाता था। इसमें 800 गाँव का एक *स्थानीय*, 400 गाँवों का एक *द्रोणमुख*, 200 गाँवों का एक *करवाटिका* और 10 गाँवों का एक *संग्रहण* शामिल था। गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। *स्थानिक* जिले का प्रभारी होता था। पाँच से दस गाँवों के ऊपर एक *गोप* नियुक्त किया जाता था जो *स्थानिक* के अधीनस्थ अधिकारी था। *ग्रामिक* गाँव का मुखिया होता था (सिंह 2009: 344)। हालाँकि, यह पता लगाना संभव नहीं है कि *अर्थशास्त्र* जैसे सैद्धांतिक ग्रंथ में वर्णित स्थानीय प्रशासन व्यवहार में लाया गया था या नहीं।

मौर्य प्रशासन के पुनर्निर्माण के स्रोतों के लाभ के साथ-साथ कुछ सीमाएँ भी हैं। हालाँकि, इन स्रोतों के तुलनात्मक अध्ययन से मौर्य साम्राज्य के प्रशासनिक तंत्र के पुनर्गठन में मदद मिली है। यद्यपि यह ध्यान रखना चाहिए कि *अर्थशास्त्र* एक निर्देशात्मक ग्रंथ है। यह प्रशासन (वास्तविक मौर्य प्रशासन नहीं) की आदर्श योजना पर चर्चा करता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस तरह का ग्रंथ बिना किसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के नहीं लिखा गया होगा। अशोक के अभिलेख और मेगस्थनीज़ के लेखों की तुलना मौर्य राज्य की प्रकृति

को समझने में मदद करते हैं। अशोक के अभिलेख प्रशासनिक अधिकारियों और समय-समय पर दिए गए निर्देशों पर प्रकाश डालते हैं। मेगस्थनीज़ के लेख शहरी प्रशासन को एक विशेष दृष्टि से समझाते हैं। इन साक्ष्यों का सहसंबंध उन तत्वों को समझने में मदद करता है जिन्होंने मौर्य प्रणाली का गठन किया था।

14.4 मौर्य साम्राज्य की धारणाएँ

मौर्य राज्य के बारे में अलग-अलग धारणाएँ हैं। सबसे लोकप्रिय विचार यह है कि मौर्यों ने एक समान और उच्च केंद्रीकृत राज्य प्रणाली की स्थापना की (चक्रवर्ती 2013ः 133)। इसका अर्थ है कि साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में जनता, उत्पादन और संसाधनों पर शाही नियंत्रण समान रूप से लागू किया गया था। हालाँकि आई. डब्ल्यू. मेबेट (1972) के लेखन में इसके विपरीत विचार दिखाई देता है। इन्होंने "*प्राचीन भारत में सत्य, मिथक और राजनीति*" नामक अपनी पुस्तक में केंद्रीकृत नियंत्रण के विचार पर सवाल उठाया है। इसके अलावा, जेरार्ड फ़ुसमैन ने कहा, "साम्राज्य और उस समय के संचार नेटवर्क की सीमा को देखते हुए मौर्य साम्राज्य संभवतः केंद्रीकृत नहीं हो सकता था" (सिंह 2009ः 340)।

केंद्रीकृत नियंत्रण विशाल साम्राज्य को एकीकृत बनाए रखता है और नियंत्रण के निर्देशों को साम्राज्य के सभी हिस्सों में समान रूप से लागू करता है। हालांकि, विभिन्न राजनीतिक संस्थान जैसे राजशाही और गणतंत्रात्मक राज्य *अर्थशास्त्र* में देखे जाते हैं। इसकी संभावना है कि केंद्रीकृत प्रशासनिक नियंत्रण विभिन्न जगहों के साथ-साथ तरह-तरह के अधिकारियों में भी अलग था। कुछ क्षेत्र आर्थिक रूप से उपजाऊ थे; उन क्षेत्रों से अधिकतम राजस्व निकालने के लिए उच्चस्तरीय अधिकारियों को वहाँ रखा जाता था। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रांतीय केंद्रों को मौर्य राज्य के विभिन्न अधिकारियों को आवंटित किया गया था। दूसरी ओर, अशोक की *धम्म* नीति में विविध संस्कृतियों में समरूपता प्राप्त करने का प्रयास देखा जा सकता है। इसे एक समान आचार संहिता के अंतर्गत विविध सांस्कृतिक प्रथाओं को समायोजित करने के लिए एक राजनीतिक और प्रशासनिक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया था। *अर्थशास्त्र* में वर्णित प्रावधानों के माध्यम से विविध अर्थव्यवस्थाओं को विनियमित करने का प्रयास भी दिखाई देता है। कराधान तंत्र विभिन्न आर्थिक गतिविधियों से संसाधनों के संग्रह के बारे में बताता है।

रोमिला थापर ने अपने पहले कार्य *अशोका एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्याज़* (1961) (अशोक और मौर्यों का पतन) में मौर्य साम्राज्य को एक केंद्रीकृत तंत्र के तहत शासित बताया था। हालाँकि, बाद में, उन्होंने एक और कार्य *द मौर्याज रिविजिटेड* (1987) (मौर्यों का पुनरावलोकन) में अपने तर्कों को संशोधित किया और बताया कि साम्राज्य विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, राजनीति और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित था। इसलिए उन्होंने बताया कि मौर्य काल में तीन स्तरीय प्रशासनिक संरचना – महानगरीय, केंद्रीय और सीमावर्ती – प्रचलित रही होगी। मगध एक महानगरीय राज्य था, जहाँ मौर्य शासक के प्रत्यक्ष शाही आदेश लागू किए गए थे। केंद्रीय क्षेत्रों में कोशल, वत्स, अवंती और गांधार शामिल थे जो या तो व्यापार के केंद्र थे या उन क्षेत्रों में आते थे, जहाँ राज्य प्रणाली अभी शुरू हुई थी। वे क्षेत्र जो पाटलिपुत्र से एक लंबी दूरी पर स्थित थे, वे उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती और प्रायद्वीपीय क्षेत्र, सीमावर्ती क्षेत्रों में आते थे। इन क्षेत्रों को उस रूप में देखा जा सकता है जहाँ राज्य प्रणाली शुरू नहीं हुई थी। इसलिए, यह देखा जा सकता है कि मौर्य प्रशासन को "केंद्रीकृत" या "विकेंद्रीकृत" के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। उसके शीर्ष स्तर पर केंद्रीय नियंत्रण था तथा सत्ता हस्तांतरण का कुछ हिस्सा प्रांत, जिला और ग्रामीण स्तर पर भी था। महानगरीय राज्य, केंद्र और सीमावर्ती क्षेत्रों के बीच विविध संबंध थे, जो केंद्र और दूर-दराज के क्षेत्रों से आने वाले संसाधनों पर आधारित थे। हालाँकि, *धम्म* नीति के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को

एकरूपता देने की कोशिश की गई थी जो अशोक का एक प्रशासनिक उपकरण था (सिंह 2009: 341)। यह बताता है कि राज्य की अवधारणा केवल राजनीति या प्रशासनिक नियंत्रण तक संबंधित नहीं थी; आर्थिक और सामाजिक विचार भी मौर्य राज्य का पुनर्निर्माण कर रहे थे।

14.5 मौर्यकाल : अर्थव्यवस्था और समाज

उपरोक्त भाग में राजस्व प्रशासन पर चर्चा मौर्य काल की अर्थव्यवस्था से संबंधित महत्वपूर्ण मामलों पर भी प्रकाश डालती है। *अर्थशास्त्र* में उल्लेख है कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, सिंचाई परियोजनाओं, खानों, वन क्षेत्रों और व्यापार मार्गों पर लगाए गए करों के माध्यम से राजस्व एकत्र किया जाता था। अतएव, इस सैद्धांतिक ग्रंथ में राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था पर मज़बूत नियंत्रण दिखाई देता है। हालाँकि, वास्तविक परिदृश्य में यह कहाँ तक लागू था, यह बताना मुश्किल है। उत्तर भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी। *अर्थशास्त्र* में राज्य की कृषि नीतियों (*जनपद* निवेश) के माध्यम से खेती के क्षेत्रों का विस्तार करने का प्रयास देखा गया है (चक्रवर्ती 2013: 151)। इसमें राज्य के स्वामित्व वाली भूमि (*सीता*) के अलावा निजी स्वामित्व वाली भूमि का भी उल्लेख मिलता है। निजी भूस्वामियों को अपना एक हिस्सा राज्य को कर के रूप में देना पड़ता था।

सिंचाई की सुविधाएँ कृषि उत्पादन के साथ जुड़ी हुई थीं। लोगों को सिंचाई की सुविधाएँ देने में राज्य और वैयक्तिक दोनों पहल देखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, मेगस्थनीज़ के लेखों से हमें पता चलता है कि ग्रामीण इलाकों में एक विशेष प्रभारी (*एग्रोनोमोई*) अधिकारी था, जो काश्तकारों को सिंचाई की सुविधा प्रदान करता था। *अर्थशास्त्र* में राज्य द्वारा दी गई दो प्रकार की सिंचाई परियोजनाओं के बारे में भी बताया गया है। एक जलीय परियोजना थी, जिसमें प्राकृतिक स्रोतों के माध्यम से जबकि दूसरा कृत्रिम साधनों के माध्यम से पानी दिया जाता था। दिलचस्प बात यह है कि ग्रंथ में सिंचाई सेवाओं का लाभ उठाने के लिए सिंचाई कर (*उदकभाग*) का भी उल्लेख है (चक्रवर्ती 2013: 152)। मौर्योत्तर शासक रुद्रदमन प्रथम के जूनागढ़ शिलालेख में उल्लेख है कि चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में राज्यपालों में से एक ने पश्चिमी भारत में गिरनार के पास एक नदी पर एक बांध का निर्माण किया था। उस बांध को सुदर्शन झील के रूप में जाना जाता है, जिसे उस क्षेत्र में पानी की आपूर्ति के लिए बनाया गया था (थापर 2002: 187)।

कौटिल्य अपनी पुस्तक में बताते हैं कि कपड़ा निर्माण राज्य द्वारा नियंत्रित एक दूसरा उद्योग था। इसमें उत्पादन, कर्मचारियों के विवरण और वेतन के बारे में स्पष्ट रूप से बताया गया है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि कपड़ा निर्माण में महिला श्रमिकों को भी नियुक्त किया जाता था (चक्रवर्ती 2013: 154)। हालांकि, यह संभावना नहीं थी कि सभी कपड़ा उत्पादन राज्य की देखरेख में होता था। चूँकि पहले के समय में कपड़ा निर्माण को एक आर्थिक गतिविधि के रूप में देखा जाता था, इसलिए यह कहा जा सकता था कि वस्त्र निर्माण के लिए कार्यबल को व्यवस्थित करने का प्रयास *अर्थशास्त्र* में देखा गया होग।

इसी तरह, मौर्य काल के स्रोतों में व्यापार और वाणिज्य पर पर्यवेक्षण को देखा जा सकता है। ग्रीक स्रोतों में उल्लेख है कि शहर के अधिकारी शहरी मामलों की देखभाल करते थे जिनमें शामिल थे:

- निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण,
- वस्तुओं की मात्रा और गुणवत्ता, और
- बेचे गए माल पर कर

अर्थशास्त्र में भी इस बात का जिक्र है कि *पण्याध्यक्ष,* यानि अधीक्षक व्यापारियों पर नजर रखते थे। अधीक्षक इन बातों की निगरानी रखते थे :

- बाजार में लाए गए सामान,
- जिस तरीके से माल लाया जाता था,
- लाभ की राशि, और
- विभिन्न वस्तुओं की मांग और कीमतों में बदलाव (चक्रवर्ती 2013: 155)।

ग्रंथ में शहरी करों जैसे आयात और निर्यात किए गए सामान पर शुल्क का भी उल्लेख है। पुरातात्विक उत्खनन से संकेत मिलता है कि इस काल ने पहले की तरह कृषि और शहरी विस्तार की प्रक्रिया को देखा था। शहरी विकास ने शिल्प, व्यापार और समाज संगठन में विस्तार किया। महानगरीय क्षेत्र पाटलिपुत्र से लकड़ी के मौर्य महल और स्तंभनुमा हॉल के अवशेष मिले हैं। बड़ी संख्या में मुहरों की खोज से मौर्य काल के एक महत्वपूर्ण व्यापार केंद्र के रूप में ऊपरी गंगा घाटी में *भीटा* स्थल का पता चलता है। मथुरा क्षेत्र में विशेष शिल्प गतिविधियों जैसे पकी मिट्टी की वस्तुओं का शिल्प, तांबा और लोहे के काम करने, और मनके बनाने के साक्ष्य देखे गए हैं। इसी तरह, मिट्टी की ईंट की दीवारों, रिंग वेल और एक वृत्ताकार खत्री के मिलने से अतरंजीखेड़ा को एक शहरी केंद्र के रूप में देखा जाता है (सिंह 2009: 336)। यहाँ कहा जा सकता है कि विभिन्न आर्थिक गतिविधियों से अधिकतम राजस्व निकालने के लिए *अर्थशास्त्र* में अर्थव्यवस्था पर राज्य के नियंत्रण पर ज़ोर दिया गया है।

स्रोत मौर्य काल में सामाजिक स्थितियों के बारे में भी बात करते हैं। मेगस्थनीज़ के अनुसार भारतीय समाज सात समूहों में विभाजित था:

- दार्शनिक
- किसान
- सैनिक
- चरवाहा
- कारीगर
- मजिस्ट्रेट
- पार्षद

इन समूहों को जातियों के रूप में जाना गया तथा किसी को भी पेशे बदलने और अपने समूह से बाहर शादी करने की अनुमति नहीं थी (थापर 2002: 190)। मेगस्थनीज़ ने सामाजिक समूहों को सामाजिक स्थिति के बजाय उनके व्यवसायों के संदर्भ में परिभाषित किया है। *अर्थशास्त्र* में ब्राह्मणवादी समाज को बढ़ावा दिया गया और *वर्ण* और *आश्रम* व्यवस्था के रखरखाव पर ज़ोर दिया गया। अशोक के शिलालेखों में असमान समाज की तस्वीर उभरती है, जिसमें ब्राह्मणों और कुलीनों को *आर्य,* दास और सेवकों को *दासभताका,* धनाढ्य व्यक्ति को *महत* और निम्न व्यक्ति को *खुदक* के रूप में जाना जाता था (चक्रवर्ती 2013: 150)।

अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि आदर्श विवाह *वर्ण* के भीतर होता है लेकिन गोत्र के बाहर, अर्थात् यहाँ अंतर्जातीय विवाह की प्रथा पर प्रकाश डाला गया है। अगर हम इलाहाबाद-कोसम रानी के अभिलेख को देखे तो कारुवकी अशोक की दूसरी रानी के रूप में उल्लेखित है। यह समाज में बहुविवाह की प्रथा पर प्रकाश डालता है। कारुवकी को रानी और राजकुमार की

माँ के रूप में दर्शाया गया है। यह बताता है कि रानी की पहचान परिवार के पुरुष सदस्यों के संबंध में उजागर होती है, जो पितृसत्तात्मक समाज की एक प्रमुख विशेषता है।

अर्थशास्त्र में महिलाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों के बारे में पता चलता है। वे शाही अंगरक्षकों और राज्य के जासूसों के रूप में कार्यरत थीं। गरीब महिलाएँ, विधवाएँ और वेश्याएँ अपने घरों के अंदर और बाहर कताई और बुनाई करती थीं। कौटिल्य वेश्यावृत्ति को पेशे के रूप देखते हैं। उस पेशे को संचालित करने के लिए *गणिकाध्यक्ष* को नियुक्त किया जाता था। अतएव इस ग्रंथ में राजस्व की उत्पत्ति के लिए सभी प्रकार की महिलाओं को दायरे में लाने की बात की गई है। राज्य की आर्थिक चिंताओं ने बड़े पैमाने पर सामाजिक समूहों और समाज के पुनर्गठन को प्रभावित किया।

बोध प्रश्न 1

1) मौर्य प्रशासन के पुनर्निर्माण के क्या स्रोत हैं?

....

....

....

....

....

2) क्या *अर्थशास्त्र* की रचना मौर्य प्रशासन में हुई थी? इसकी चर्चा करें।

....

....

....

....

....

3) मौर्यकालीन इतिहास के लिए अशोक के अभिलेख क्या *अर्थशास्त्र* से अधिक विश्वसनीय स्रोत हैं?

....

....

....

....

....

4) मौर्य साम्राज्य के शहर प्रशासन के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

5) क्या मौर्य राज्य एक केन्द्रीकृत राज्य था? स्पष्ट करें। क्या *धम्म* राज्य का प्रशासनिक उपकरण था?

....

....

....

....

....

6) i) निम्नलिखित का उपयुक्त मिलान करें।

1.	*नवाध्यक्ष*	क.	हाथी सैन्यदल का अध्यक्ष
2.	*रथाध्यक्ष*	ख.	पैदल सेना का अध्यक्ष
3.	*हस्ताध्यक्ष*	ग.	नवसेना का अध्यक्ष
4.	*पताध्यक्ष*	घ.	रथों के अध्यक्ष

ii) निम्नलिखित का उपयुक्त मिलान करें।

1.	*कोष*	क.	काश्तकारों से कर
2.	*भाग*	ख.	गुप्तचर
3.	*आयुद्धागाराध्यक्ष*	ग.	शहर प्रशासन के प्रभारी
4.	*एस्टिनोमोई*	घ.	राजस्व प्रशासन
5.	*समस्थ*	ङ.	आयुध उत्पादन इकाई के अध्यक्ष

7) निम्नलिखित दिए गए सही वाक्यों के सामने सही (✓) का तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (×) का चिह्न लगाएँ:

i) *अर्थशास्त्र* में *धर्मास्थीय* का उल्लेख न्यायालय के रूप में मिलता है, जिसमें व्यक्तिगत विवादों से संबंधित मामलों का निपटारा किया जाता था। जबकि *कंटकशोधन* राज्य और व्यक्ति दोनों से संबंधित मामलों का निपटारा करते थे।

ii) ग्रामीण प्रशासन में *स्थानिक* और *गोप* को अधीनस्थ अधिकारियों के रूप में गिना जाता था।

iii) मेगस्थनीज़ के अनुसार, नगर *परिषद*, छह समितियों में विभाजित थी और प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे।

iv) सभी प्रांतीय राजधानियों को शाही राजकुमार तथा *कुमार* के द्वारा नियंत्रित किया जाता था।

v) यूनानी स्रोतों में *एस्टोनोमोई* शब्द का प्रयोग ग्रामीण प्रशासन के अधिकारियों के लिए किया गया है।

14.6 मौर्योत्तरकालीन राज्य

श्रेय : PHG। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:SatavahanaMap.jpg)।

200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के मध्य का काल शुरुआती इतिहासकारों के लिए संकटपूर्ण था। क्योंकि यहाँ विदेशी शासकों की उपस्थिति और भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े क्षेत्रीय ढाँचे का अभाव था। हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि इस काल में व्यापक स्तर पर आर्थिक और सांस्कृतिक विकास हुआ था। इस काल में विभिन्न प्रकार के राज्यों तथा राजाओं को देखा गया। मध्य और पश्चिम एशिया की विदेशी जनजातियों ने उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में अपना राजनीतिक शासन स्थापित किया। दक्कन और ओडिशा क्षेत्र में राजतंत्र का उदय देखा गया। इसके साथ ही, उत्तरी और मध्य भारत में गैर-राजतंत्रीय समूहों का उदय भी हुआ था।

14.6.1 शुंग और खारवेल

मौर्य साम्राज्य के टूटने के बाद भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में कई राजतंत्रों का उदय हुआ। माना जाता है कि मौर्य सेना के सेनापति पुष्यमित्र ने अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को मारकर शुंग वंश की स्थापना की थी। अधिकांश इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया कि मौर्य शासन में बौद्ध धर्म के व्यापक संरक्षण के बाद ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान हेतु शुंग साम्राज्य

का उद्भव हुआ। पुष्यमित्र की क्रूरता और बौद्ध धर्म के प्रति उसकी घृणा की कहानियाँ *दिव्यवदान* में उल्लिखित है (सिंह 2009: 372)।
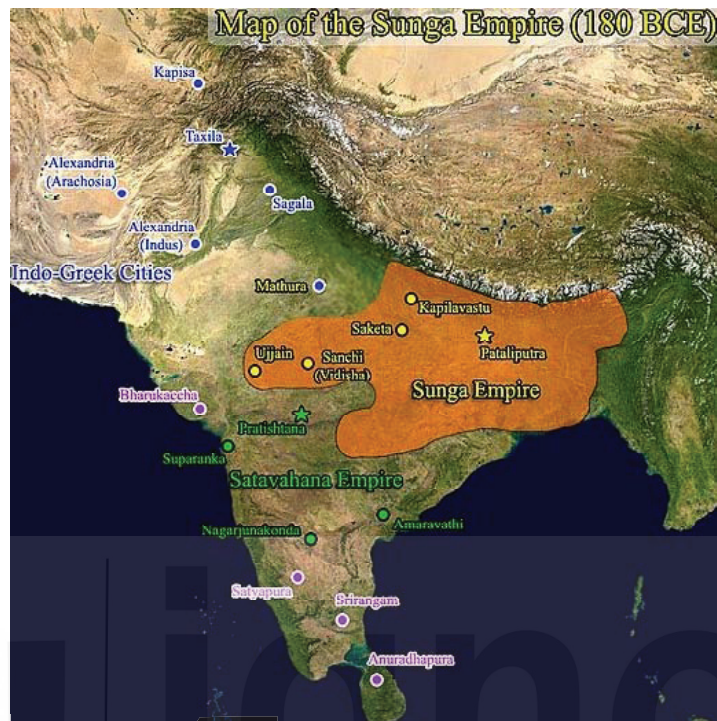
शुंग व समकालीन साम्राज्य (लगभग 185-75 बी.सी.ई.)। श्रेयः विंडी सिटी ड्यूड। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sunga_map.jpg)।

शुंगों का क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के केवल एक हिस्से तक फैला था। इसमें पाटलिपुत्र, अयोध्या और विदिशा शामिल थे। कुछ स्थानों पर शासन की देखभाल के लिए *वाइसराय* को रखा गया था। माना जाता है कि शुंगों का संबंध *ब्राह्मण* भारद्वाज *गोत्र* से था। उन्होंने वैदिक प्रथाओं और बलिदानों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। अयोध्या नरेश धन के शिलालेख में पुष्यमित्र द्वारा दो *अश्वमेध* यज्ञों के करने का उल्लेख मिलता है (सिंह 2009: 372)। अंतिम शुंग राजा, देवभूति, अपने *ब्राह्मण* मंत्री वासुदेव द्वारा तैयार किए गए शड्यंत्र का शिकार हो गया जिसने कण्व वंश की स्थापना की। यह एक अल्पकालिक राज्य था। 30 बी.सी.ई. में मगध के कण्व राजाओं ने मित्र वंश के लिए रास्ता बनाया। अंततः मित्र वंश का स्थान शकों ने ले लिया।

पहली शताब्दी बी.सी.ई. के आसपास ओडिशा के तटीय और पूर्वी भाग में खारवेल एक महत्वपूर्ण शासक के रूप में उभरा। वह चेदी से जुड़ा मेघवाहन वंश का था (थापर 2002: 211)। उसके शासन में कलिंग एक स्वतंत्र राज्य था। ऐसा कहा जाता है कि मगध, सातवाहन और पांड्य देशों सहित देश के एक बड़े हिस्से पर उसका शासन था। वह जैन धर्म का अनुयायी था। हाथीगुम्फा शिलालेख में उसके द्वारा किए गए विजयों, संरक्षण और सामाजिक कार्यों का विवरण मिलता है। कलिंग, कभी मौर्य प्रशासन के केंद्रों में से एक था। इस क्षेत्र में राज्य गठन की प्रक्रिया को मौर्य साम्राज्य के साथ सम्पर्क के रूप में देखा गया था।

मौर्य साम्राज्य की कुछ विशेषताएँ, जैसे विभिन्न धार्मिक प्रथाओं के प्रति सम्मान, लोक कल्याण और सामाजिक कार्यों को खारवेल ने अपनाने की कोशिश की थी। हाथीगुम्फा शिलालेख में जैन भिक्षुओं को संरक्षण देने, ब्राह्मणों को करों में छूट देने तथा हर संप्रदाय को सम्मान देने का उल्लेख मिलता है। इसमें सिंचाई के लिए नहरों और जलाशयों के निर्माण का भी उल्लेख है (थापर 2002: 212-213)। उसने आहत सिक्कों को भी जारी रखा। हालाँकि, राजवंश लंबे समय तक नहीं चला और खारवेल की मृत्यु के बाद गायब हो गया।
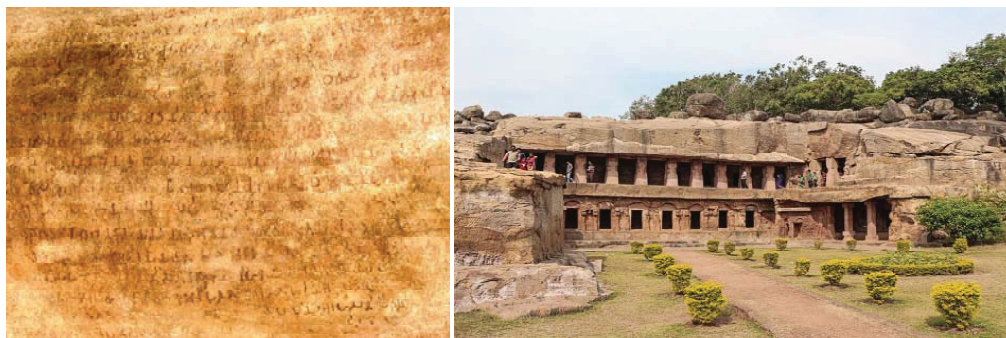
बाएँ: कलिंग के राजा खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख। श्रेय: विंडराईडर 24584। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Hatigumfa.jpg)।

दाएँ: उदयगिरी गुफा परिसर, भुवनेश्वर, ओड़िशा के पास जहाँ हाथीगुम्फा शिलालेख स्थित है। ए.एस.आई. स्मारक संख्या एन-ओआर – 62। श्रेय: बर्नार्ड गैग्नन। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Udayagiri_Caves_-_Rani_Gumpha_01.jpg)।

14.6.2 इंडो-ग्रीक

बैक्ट्रिया के *यवन* मूल रूप से पश्चिम एशिया के सेल्यूसिड साम्राज्य के *क्षत्रप* (अधीनस्थ शासक) थे। बैक्ट्रिया आधुनिक उत्तरी अफगानिस्तान का प्राचीन नाम है। तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य में सेल्यूसिड साम्राज्य के खिलाफ विद्रोह हुआ और स्वतंत्र बैक्ट्रिया का उद्भव हुआ। ये बैक्ट्रियाई अपने राज्य का विस्तार करते हुए हिंदुकुश पर्वत के दक्षिण में पहुँचे। लगभग 145 बी.सी.ई. में उन्होंने बैक्ट्रिया पर नियंत्रण खो दिया और भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था (सिंह 2009: 373)। बैक्ट्रिया के *यवनों* ने दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. से पहली शताब्दी बी.सी.ई. के बीच भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में शासन किया। इन्हें इंडो-ग्रीक के रूप में जाना गया (सिंह 2009: 373)।
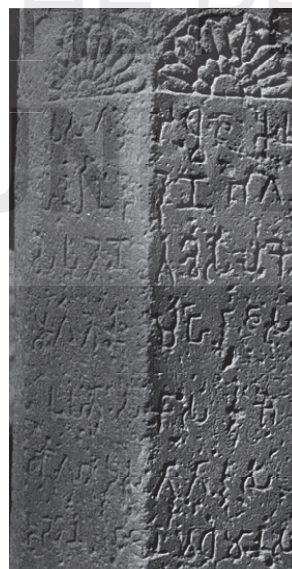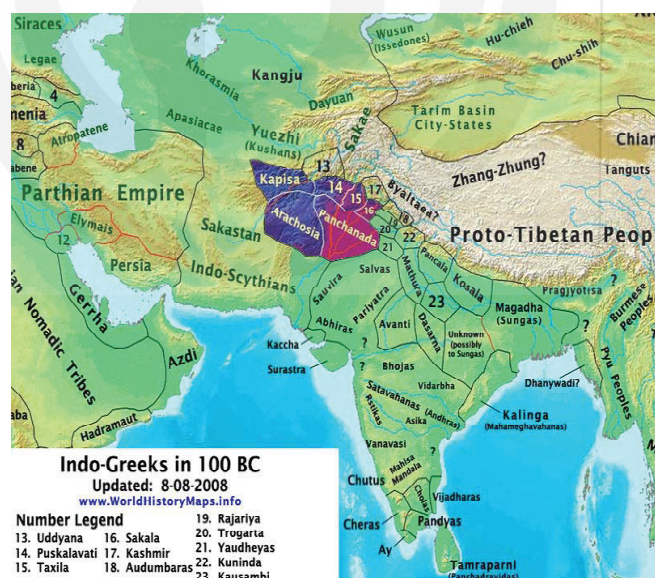
बाएँ: लगभग 100 बी.सी.ई. में इंडो ग्रीक राज्य। श्रेय: थॉमस लेसमैन। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Indo-Greeks_100bc.jpg)।

दाएँ: इंडो-ग्रीक राजदूत हेलियोडोरस के आदेश पर निर्मित किया गया हेलिओडोरस स्तंभ, लगभग 113 बी.सी.ई. में बनाया गया था, जो हिंदू धर्म में सबसे पहले दर्ज इंडो-ग्रीक धर्मान्तरित था। स्तंभ भारत में वैष्णववाद से संबंधित पहला ज्ञात शिलालेख है। श्रेय: Public.Resource.Org. स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Heliodorus_pillar_inscription.jpg).

14.6.3 शक और पह्लव वंश

हिंद-सीथियाई साम्राज्य अपने महानतम विस्तार पर (150 बी.सी.ई. – 400 सी.ई.) श्रेयः DLommes।
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:IndoScythianKingdom.svg)।

शक सीर दरिया (Jaxartes) में रहने वाले सिथियन जाति के थे। लगभग 2 शताब्दी बी.सी.ई., मध्य एशिया में जनजाति गतिविधियों के कारण, शक विस्थापित होकर भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में आ गए। पार्थिया ईरान में एक जगह है, जहाँ के लोग पार्थियन के रूप में जाने जाते थे। शक-पह्लव शब्द का प्रयोग आक्रमणकारियों के उन विभिन्न समूहों के लिए किया जाता था, जो पहली शताब्दी बी.सी.ई. में पार्थिया से उत्तर-पश्चिम भारत में आए थे (सिंह 2009: 375)। शक-पह्लवों का इतिहास शिलालेखों और सिक्कों के माध्यम से जाना जाता है। तक्षशिला के एक शिलालेख में शक राजा मोग और उनके क्षत्रप (राज्यपाल) पतिक का उल्लेख है। कुछ सिक्कों से सामूहिक शासन के बारे में पता चलता है। उदाहरण के लिए, ऐसा लगता है कि स्पलीराइजेस और एज़ेस I दोनों एक ही समय में सह-शासक थे। एक अन्य महत्वपूर्ण शासक गोंदोफर्निस था। उसके सिक्कों में गवर्नर और सैन्य गवर्नर की स्थिति का उल्लेख है। शकों का साम्राज्य प्रांतों में विभाजित था। प्रत्येक प्रांत सैन्य गवर्नर के अधीन था जिसे *महाक्षत्रप* कहा जाता था। प्रांतों के प्रखंड को *क्षत्रप* के रूप में जाना जाता था, जो राज्यपालों के अधीन था। इन्हें अधीनस्थ शासकों के रूप में भी जाना जाता था। इन *क्षत्रपों* को शिलालेख जारी करने और सिक्कों को अपने अधिकार में लेने का हक था। इससे पता चलता है कि इन राज्यपालों ने अपने शासकों के अधीन काम करने वाले राज्य अधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से कार्य किया होगा। शकों ने ईरान के अखमेनिड और सेल्यूसिड शासन व्यवस्था के आधार पर अपना शासन चलाया था (थापर 2002: 220)। इनके साम्राज्य-विस्तार में क्षत्रपों और महाक्षत्रपों की मुख्य भूमिका रही होगी।

14.6.4 कुषाण वंश

कुषाण मध्य एशिया से भारतीय उपमहाद्वीप में आए थे। वे यू-ची जनजाति की एक शाखा थे। यू-ची जनजाति पहले मध्य एशिया से संबंधित थी और बाद में वू-सुन द्वारा विस्थापित होकर पश्चिम में चली गई थी। इस समय पर यू-ची जनजाति को दो भागों में विभाजित किया गया था – महान यू-ची और लघु यू-ची। इनमें से कुछ पूर्व तिब्बत क्षेत्र में, कुछ पश्चिम की ओर चले गए थे तथा बाकी बचे अफगानिस्तान में बस गए थे। महान यू-ची को ऑक्सस की घाटी के पाँच घरानों में विभाजित किया गया था, इनमें से एक कुषाण भी थे। प्रथम शताब्दी के शुरुआत में कुजुल कडफिसेस ने पांचों रियासतों को मिला दिया और एक एकीकृत कुषाण

साम्राज्य की नींव रखी। कुजुल कडफिसेस के सिक्के हिंदुकुश क्षेत्र के दक्षिण में भी पाए गए हैं। उसके उत्तराधिकारी, वीमा कडफिसेस ने पहले अपने पिता के साथ सह-शासक के रूप में काम किया और बाद में स्वतंत्र रूप से शासन किया। उसने पह्लवों से कंधार क्षेत्र जीत लिया और सिंधु घाटी और मथुरा क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था (सिंह 2009: 376)।

कनिष्क के शासनकाल में कुषाण साम्राज्य अपने शिखर पर पहुँच गया। अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं कि कनिष्क का शासनकाल 78 बी.सी.ई. से शुरू हुआ था। तब से उसके उत्तराधिकारियों ने इस तिथि से एक नए संवत् की शुरुआत करते हुए अपने अभिलेखों को दिनांकित किया (सिंह 2009: 376)। कनिष्क के शासनकाल के दौरान साम्राज्य का विस्तार पूर्व में गंगा घाटी तक और दक्षिण में मालवा क्षेत्र तक था। कुषाणों का प्रभाव पश्चिमी और मध्य भारत में भी देखा गया, जहाँ शक-*क्षत्रपों* ने कुषाण शासकों के आधिपत्य को मान्यता दी थी। कनिष्क का शासन का उल्लेख बिहार के पाटलिपुत्र और चंपा में स्थित राबाटक शिलालेख में भी मिलता है (चक्रवर्ती 2013: 178)। चीनी स्रोत होउ-हान-शू बताता है कि निम्न सिंधु क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के कारण कुषाण शक्तिशाली और अमीर बन गए थे।

बी. एन. मुखर्जी के अनुसार, मालवा क्षेत्र के खनन और निम्न सिंधु क्षेत्र में व्यापार की संभावना के कारण कुषाणों का विस्तार हुआ। इसके अलावा, यह तर्क भी दिया गया कि मकरान तट के साथ व्यापारिक संबंधों में गिरावट के कारण कुषाणों का पतन हुआ (सिंह 2009: 377)। यह इस बात का संकेत है कि आर्थिक संभावनाओं ने कुषाण शासकों के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कनिष्क का साम्राज्य संभवतः अधिकांश अफगानिस्तान, चीन का पूर्वी भाग और मध्य एशिया में ऑक्सस घाटी के उत्तर तक विस्तारित था। इन विशाल क्षेत्रों का समावेश व्यापार के कारण ही था (सिंह 2009: 377)। दूसरे शब्दों में कहें तो इस विशाल साम्राज्य ने भारत के जरिये चीन से पश्चिम एशिया तक व्यापार को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महान रेशम मार्ग कुषाण साम्राज्य के उत्तरी भाग से होकर गुजरता था।

प्राचीन रेशम मार्ग का विस्तार। श्रेयः Whole world - land and oceans 12000.jpg नासा /गोडार्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Silk route.jpg)।

कुषाण साम्राज्य मूलतः एक मध्य एशियाई राज्य था। बाद में, इसका विस्तार अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी भारत तक हुआ। इस विशाल साम्राज्य का केंद्र बैक्ट्रिया था। भारत में, पुरुषपुर (पेशावर) और मथुरा, कुषाणों की दो महत्वपूर्ण राजधानियाँ थीं। कनिष्क के तात्कालिक उत्तराधिकारी वशिष्क, हुविष्क, कनिष्क प्रथम और वासुदेव प्रथम थे। दूसरी शताब्दी के मध्य कुषाण साम्राज्य में गिरावट आई थी (सिंह 2009: 377)। कुषाण शासकों ने भव्य उपाधियाँ लीं:

- *देवपुत्र* (स्वर्ग का पुत्र),
- *महाराजाधिराज* (राजाओं के राजा),

- *सोटर* (रक्षक), और
- *कैसर* (सीज़र)।

थापर के अनुसार, ये उपाधियां फारसियों, चीनी और रोमनों से उधार ली गई थीं; कुषाण शासकों के प्रभामंडल को चित्रित करने की शैली भूमध्य सागर के रीति-रिवाजों से प्रभावित थीं (थापर 2002: 223)। पता चलता है कि उस समय अपने से निम्न स्तर वाले राजाओं और प्रमुखों पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए कुषाण राजाओं ने इन उपाधियों को अपनाया था। एक ओर, वे साम्राज्य में अपनी स्थिति को वैधता प्रदान करने की कोशिश कर रहे थे; तो दूसरी ओर, इन उपाधियों को लेने में मध्य एशियाई परंपराओं का प्रभाव भी दिखाई दे रहा था। कुषाणों की प्रशासन प्रणाली केंद्रीकृत नहीं दिखाई देती है। विशाल साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत लोगों का नियंत्रण था। कुछ क्षेत्र राजा के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे जबकि अन्य क्षेत्रों पर निम्न स्तरीय शासकों-*क्षत्रपों* का नियंत्रण था। कुछ ऐसे भी क्षेत्र थे, जिन्होंने कुषाण शासकों के अधिपत्य को स्वीकार किया, लेकिन अपने क्षेत्रों में अपने तरीके से शासन किया। इसलिए, कनिष्क शासनकाल में नियंत्रण की त्रिस्तरीय प्रणाली का पता चलता है:

- प्रत्यक्ष नियंत्रण,
- स्थानीय क्षत्रपों द्वारा नियंत्रण, और
- अधीनस्थ शासकों द्वारा नियंत्रण (थापर 2002: 223)

कनिष्क को बौद्ध धर्म का एक महान संरक्षक माना जाता है। उन्हें पुरुषपुर में एक स्तूप की स्थापना और उसे काशगर, यूनान और चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए दूत-कर्म भेजने का श्रेय जाता है। उनके शासनकाल में एक बौद्ध परिषद आयोजित की गई थी। हैरानी की बात है कि उनके सिक्कों में भारतीय, ग्रीक और पश्चिम एशियाई विभिन्न धार्मिक देवताओं का प्रतिनिधित्व मिलता है। इससे पता चलता है कि साम्राज्य निर्माण में उन्होंने धार्मिक विविधता को स्वीकार किया था। यह उनके विशाल साम्राज्य में मौजूद विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों के शासकों को एक साथ जोड़ने की नीति रही होगी। राज्य ने अलग-अलग समुदायों को समायोजित करके स्वयं को बनाए रखने की कोशिश रही होगी।
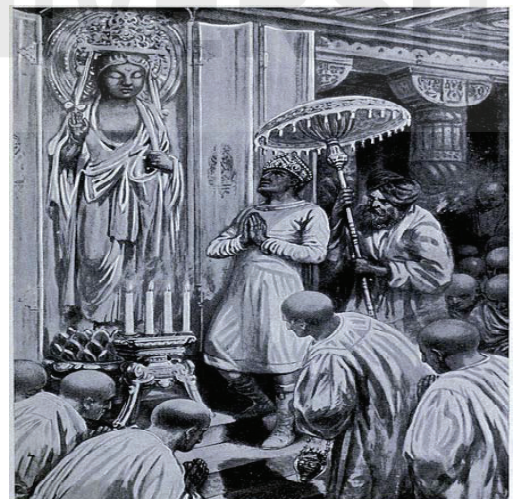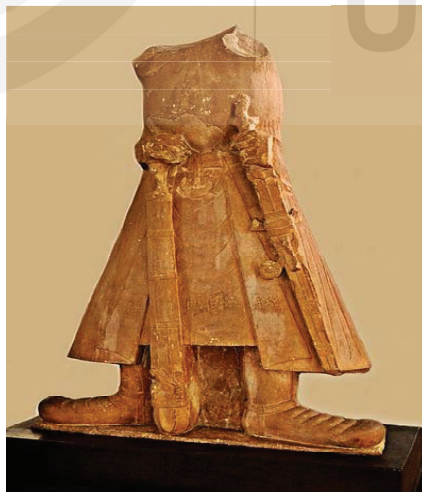
बाएँ: बिना सिर के कनिष्क की प्रमुख प्रतिमा। मथुरा म्यूजियम, उत्तर प्रदेश। श्रेय: बिस्वरूप गांगुली। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kanishka_enhanced.jpg)।

दाएँ: कनिष्क ने *महायान* बौद्ध धर्म का उद्घाटन किया। कैनवस पर एक तैल चित्रण, 1910। श्रेय: एम्ब्रोस डुडले। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kanishka-Inaugurates-Mahyana-Buddhism.jpg)।

बाएँः ग्रीक अक्षर "BOΔΔO" (बुद्ध) के साथ कनिष्क का एक सिक्का। प्रत्यक्ष स्रोतः सीएनजी सिक्के। (http://www.cngcoins.com)। चित्र स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Kanishka_I.jpg)।

दाएँः कनिष्क द्वारा निर्मित किला मुबारक, पंजाब के बठिंडा में स्थित। श्रेयः en: उपयोगकर्ताः Guneeta। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Qila_Mubarak_in_Bathinda.jpg)।

ईरानी सासानिडों की विजय के कारण कुषाणों का पतन होने लगा। शीर्ष केंद्र होने के कारण बैक्ट्रिया ईरान के हाथों में चला गया था (चक्रवर्ती 2013: 180)। इसी काल में भारत के विभिन्न हिस्सों में अनेक प्रकार के स्थानीय और उप-क्षेत्रीय रियासतों का पुनरुत्थान हुआ था।

14.6.5 गैर राजतंत्र / *गण* शासन / कबीले पर आधारित राज्य-व्यवस्था

इस काल में उत्तर भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग आदिवासी या कबीले-आधारित राज्य-व्यवस्थाओं का भी उद्भव हुआ। आर्जुनायन मथुरा (राजस्थान में अलवर क्षेत्र) के दक्षिण-पूर्व में दिखाई दिए; मालव पंजाब में उत्पन्न हुए और बाद में राजस्थान चले गए। यौधेय पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के क्षेत्रों में रहते थे। कुनिंद शिवालिक पहाड़ियों के नीचे तथा त्रिगर्त रावी और सतलुज नदी घाटियों के बीच रहते थे। यौधेय पाणिनि के समय भी पेशेवर योद्धाओं के रूप में प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि इन्होंने शक राजा रूद्रदमन को पराजित किया था। इनमें से कई जनजातियों ने महाकाव्य नायकों और किंवदंतियों के माध्यम से क्षत्रिय होने का दावा किया था और उनके सिक्के, जैसे कि यौधेय, अक्सर *गण* या *जनपद* के नाम से जारी किए जाते थे (थापर 2002: 211)। दूसरी जनजातियाँ, जैसा कि उनके बारे में लोकप्रिय है, गणतांत्रिक थीं। इस काल में सिबि, मालव, त्रिगर्त प्रमुख थीं।

इन *जनपदों* ने उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत को छिन्न-भिन्न कर दिया था, साथ ही, अयोध्या, कौशाम्बी, मथुरा और अहिच्छत्र जैसी स्वतंत्र प्रांतों ने भी अपनी शक्ति का पुनः दावा किया, जो पहले मौर्यों के आगे झुक गए थे।

14.6.6 पश्चिम भारत के शक-*क्षत्रप*

पश्चिमी भारत में शक-क्षत्रप सत्ता में आए। इससे पहले, वे कुषाणों के सामंत थे और उन पर निष्ठा रखते थे। धीरे-धीरे, वे आगे आए और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की। प्रारंभिक शताब्दियों सी.ई. में क्षत्रप शासकों की क्षहरात और कर्दमक दो जातियाँ थीं। भूमक और नहपाण, क्षहरात वंश के महत्वपूर्ण शासक थे और वे कुषाणों के प्रति वफादार थे।

चष्टन कर्दमक वंश का संस्थापक था। उसे कुषाणों के दक्षिणी-पश्चिमी प्रांत के वायसराय के रूप में नियुक्त किया गया था (सिंह 2009: 379)। कर्दमकों ने क्रमशः *क्षत्रप* और *महाक्षत्रप* के साथ वरिष्ठ और कनिष्ठ शासकों की प्रथा का पालन किया। रुद्रदमन प्रथम, कर्दमक वंश का प्रसिद्ध शासक था। 150 सी.ई. में वह सिंहासन पर बैठा। उसकी विजयों के बारे में जूनागढ़ शिलालेख में अंकित है। इसमें उल्लेख है कि मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात और उत्तरी कोंकण इस शासक द्वारा विजित क्षेत्र थे। संभवतः उसने सातवाहन वंश के सातकर्णी शासक गौतमीपुत्र सातकर्णी को दो बार हराया था (सिंह 2009: 381)।

14.6.7 सातवाहन वंश

मौर्य काल के बाद कई स्थानीय शासकों ने विदर्भ, पूर्वी दक्कन, कर्नाटक और पश्चिमी महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में शासन करना शुरू कर दिया। सातवाहन साम्राज्य का निर्माण कई स्थानीय केंद्रों के एकीकरण से हुआ था। सातवाहनों का संबंध संभवतः आंध्र जनजाति के किसी कबीले या शाखा से था, जिसकी शक्ति प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. के आस-पास दक्कन और पश्चिमी भारत में धीरे-धीरे बढ़ रही थी (चक्रवर्ती 2013ः 181)। माना जाता है कि प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. के आसपास उनका शासन शुरू हुआ था और तीसरी शताब्दी की शुरुआत में समाप्त हुआ था। सिमुक को इस राजवंश के संस्थापक के रूप में जाना जाता है जिसका राजनीतिक केंद्र प्रतिष्ठान या पैठन था।

प्राकृत भाषा में लिखित नासिक शिलालेख में सातवाहन शासक गौतमीपुत्र सातकर्णी का उल्लेख *एकाब्राह्मण* के रूप में किया गया है (सिंह 2009ः 383)। इस राजवंश के एक और शासक सतकर्णी प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया था, जो नानाघाट शिलालेख में उल्लिखित है। ये तथ्य बताते हैं कि स्थानीय शासकों ने सातवाहन वंश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे आरंभिक स्वदेशी जनजातियाँ थीं जो एक राजतंत्र व्यवस्था में परिवर्तित हो गई थीं। इस राजवंश के शासकों ने वैदिक कर्मकांडों को अपनाकर स्वयं को पवित्र करने का प्रयास किया होगा।

बाएँः चूना पत्थर से निर्मित पटिया (slab) तीसरी शताब्दी बी.सी.ई.। इस पटिया को पहली बार पहली शताब्दी बी.सी.ई. में बनाया गया था। जब अमरावती के महान स्तूप को सातवाहन शासकों के संरक्षण में पुनर्निर्मित किया गया था, तब एक बुद्ध आकृति प्रवेश द्वार में मानव रूप में बनाई गई थी। ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में संरक्षित। श्रेयः ग्रिफ़िंडोर। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:British_Museum_Asia_14.jpg)।

दाएँः महाराष्ट्र के अमरावती में गौतमीपुत्र सातकर्णी की वर्तमान मूर्ति। श्रेयः कृष्णा चैतन्य वेलगा। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gautami_Putra_Satkarni_Statue_in_Amaravathi.jpg)।

सातवाहन साम्राज्य में आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर कर्नाटक, दक्षिण मध्य प्रदेश और सौराष्ट्र शामिल थे। माना जाता है कि ओडिशा के चेदी राजवंश के खारवेल ने सातवाहन शासक सातकर्णी प्रथम के अधिकार को चुनौती दी थी, फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि उनके नियंत्रण में एक विशाल क्षेत्र था। यह उनके द्वारा ली गई उपाधि *दक्षिणापथ* के स्वामी से समझा जा सकता है।

गौतमीपुत्र सातकर्णी इस वंश का प्रसिद्ध शासक था। उसके काल में साम्राज्य अपने शिखर

पर पहुँच गया था। नासिक गुफा के शिलालेख में "शकों, पहलवों और यवनों का नाश करने वाले, क्षत्रियों को उखाड़ फेंकने वाला और सातवाहनों के वैभव के संयोजक" के रूप में उसका उल्लेख मिलता है (सिंह 2009: 383)। उसके समय में सातवाहन साम्राज्य की सीमा उत्तर में मालवा और सौराष्ट्र से लेकर दक्षिण में कृष्णा डेल्टा तक और पूर्व में बरार से लेकर पश्चिम में कोंकण तट तक थी। शिलालेख में यह भी उल्लेख है कि उसके शासनकाल में बौद्ध भिक्षुओं को निवास के लिए भूमि का एक टुकड़ा दान किया गया था। इतिहास में पहली बार नियमों और शर्तों के साथ भूमि दी गई थी, अर्थात् भूमि में शाही प्राधिकरण द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, यह राज्य नियंत्रण से मुक्त होगा और भूमिधारक कुछ विशेषाधिकारों का आनंद ले सकेंगे (सिंह 2009: 384)। संभवतः, यज्ञश्री सातकर्णी, जिसे गौतमीपुत्र यज्ञ श्री के नाम से भी जाना जाता है, पूर्वी और पश्चिमी दक्कन को नियंत्रित करने हेतु सातवाहन वंश का अंतिम शासक था। सातवाहनों के क्रमिक पतन के बाद कई राजवंशों जैसे दक्षिण क्षेत्र में वाकाटक, मैसूर में कदंब, महाराष्ट्र में अभिरास और आंध्र क्षेत्र में इक्ष्वाकु का उदय हुआ (सिंह 2009: 383)।

बाएँ अथवा मध्यः गौतमीपुत्र सातकर्णी के सिक्के, लगभग 108-132 सी.ई., लॉस एंजिल्स काउंटी कला संग्रहालय, कैलिफोर्निया, यू.एस. में संरक्षित। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Gautamiputra_Satakarni_(%3F)_LACMA_M.84.110.3_(1_of_2).jpg; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Gautamiputra_Satakarni_(%3F)_LACMA_M.84.110.3_(2_of_2).jpg)।

दाएँः गौतमीपुत्र यज्ञ सातकर्णी के सिक्के, लगभग 167-196 सी.ई.। श्रेयः क्लासिकल न्यूमिस्मैटिक ग्रुप (http://www.cngcoins-com)। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gautamiputra_Yajna_Satakarni.jpg)।

सातवाहन साम्राज्य को छोटे प्रांतों में विभाजित किया गया था, जिन्हें *अहार* कहा जाता था। प्रत्येक प्रांत नागरिक और सैन्य अधिकारियों के अधीन था। अधिकारियों के लिए उपयोग किए जाने वाले पद निम्नलिखित हैं:

- *अमात्य,*
- *महाभोज,*
- *महासेनापति,* और
- *महारथी*

अमात्य सर्वोच्च अधिकारी था। ग्राम सबसे निम्न प्रशासनिक इकाई थी। नगर प्रशासन के प्रमुख जिन्हें *नगरसभा* और ग्राम प्रशासन के प्रमुख *ग्रामसभा* के नाम से जाने जाते थे, इनका उल्लेख सातवाहन काल के स्रोतों में भी मिलता है। दोनों अधिकारी स्वतंत्र रूप से अपने कार्य करते थे। भिक्षुओं के लिए गुफाओं के निर्माण-कार्य के देखभाल के लिए शासक द्वारा नियुक्त किए जाने वाले एक विशेष अधिकारी *उपरक्षित* का भी उल्लेख है।

उपर्युक्त पदों से संकेत मिलता है कि उनकी प्रशासनिक प्रणाली सामंती थी। सत्ता शासक तक ही सीमित नहीं थी। बल्कि यह अधिकारियों के पदानुक्रम के अनुसार वितरित की गई थी। राजकोषीय और प्रशासनिक अधिकार सामंती प्रमुखों द्वारा भोगे जाते थे। कुछ को अपने सिक्के जारी करने की अनुमति दी गई और कुछ ने शाही परिवार के साथ वैवाहिक गठबंधन कर लिया था। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि प्रशासन को स्थानीय व्यवस्था द्वारा संचालित किया जाता था। प्रांतों और क्षेत्रों में शाही अधिकारियों का कोई हस्तक्षेप नहीं था। हालांकि, राजतंत्र का एक मजबूत तत्व राजवंश के केंद्र में मौजूद था।

एकदम दक्षिण में तीन महत्वपूर्ण राज्य थे, जो मौर्य काल के समय से थेः

- चेर, जिसने मालाबार क्षेत्र को नियंत्रित किया,
- चोलों ने दक्षिण-पूर्वी तट और कावेरी घाटी पर प्रभुत्व जमाया, और
- पाड्य जिनका केंद्र प्रायद्वीप के चारों ओर स्थित था।

इस काल के *संगम* ग्रंथ हमें उस क्षेत्र, जहाँ इन तीन राज्यों ने शासन किया था, के समाज, पारिस्थितिकी, राजनीति और अर्थव्यवस्था की काफ़ी जानकारी देते हैं। हम जानते हैं कि दक्षिण में तीन राज्यों के प्रमुख (चेरों-चोलों-पाड्यों) निम्न विकसित क्षेत्रों के प्रमुखों के साथ लगातार युद्ध करते थे। उदाहरणस्वरूप, *वेलिर* सरदार, दक्षिण-पूर्वी तट पर रोमन व्यापार के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियंत्रित करने हेतु प्रसिद्ध थे।

यद्यपि मौर्योत्तर काल में विभिन्न राजवंशों द्वारा साम्राज्यों के निर्माण हेतु प्रयास किए गए थे, लेकिन उनमें से ज्यादातर एक-दूसरे का विरोध कर रहे थे। इसके अलावा उप-क्षेत्रीय शक्तियों को पूरी तरह से दबाया नहीं जा सकता था। इसलिए, जहाँ एक तरफ़ मौर्यों की राजनीतिक गिरावट ने कई स्थानीय शक्तियों के उत्थान की स्थिति पैदा की थी, वहीं मौर्य काल के दौरान हुआ आर्थिक विस्तार बेरोक-टोक जारी था। मौर्यों के अधीन मगध साम्राज्य में संसाधनों की कमी नहीं थी, बल्कि उसके संगठन और नियंत्रण का संकट था।

14.7 मौर्योत्तरकाल : अर्थव्यवस्था और समाज

इस अवधि में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में गतिशील परिवर्तन देखा गया।

राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत कृषि था। पहली बार सातवाहन और कलिंग राज्यों में स्थायी कृषि का प्रसार देखा गया था। नासिक के शिलालेख से हमें इन क्षेत्रों में नारियल उगाने के बारे में भी जानकारी मिलती है (चक्रवर्ती 2013ः 194)। *मिलिंदपन्हो* में खरपतवार हटाने से लेकर फसलों की कटाई तक कृषि के आठ विभिन्न चरणों का उल्लेख है। यह इस काल में होने वाली फसलों की किस्मों और विभिन्न प्रकार के चावल की खेती (शाही और मोटे) की गणना करता है। तक्षशिला और सांची से हल का लौह फलक, कुल्हाड़ी, प्रहार, हुकुम और दरांती जैसे कृषि उपकरणों के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं (चक्रवर्ती 2013ः 194)। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि *गहपति* (बड़े ज़मींदार) और *कुटुम्बिका* और *हलिका* (काश्तकार) बौद्ध *संघ* के दानकर्ता या संरक्षक के रूप में दिखाई देते हैं। यह आर्थिक दृष्टि से काश्तकारों की उच्च स्थिति को दर्शाता है। सिंचाई की सुविधा प्रदान करने की राज्य और व्यक्तिगत पहल इस काल में भी जारी रही। शक शासक रुद्रदमन प्रथम के शासनकाल में सुदर्शन झील की मरम्मत की गई थी। कलिंग के नंदों द्वारा नहरों का निर्माण किया गया था। नासिक शिलालेख में दर्ज है कि नहपान के शासनकाल में जलाशय बनाए गए थे। एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि थियोडोरस नाम के एक ग्रीक ने तक्षशिला के पास एक जलाशय खुदवाकर दान किया था (चक्रवर्ती 2013ः 194)।

इस काल में उप-महाद्वीपों के बीच व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि देखी गई। गंगा डेल्टा में ताम्रलिप्ति के साथ उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला से जुड़ा एक महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग उत्तरापथ था। उत्तर भारत के अन्य प्रमुख व्यापार बिंदु थेः

- उत्तर-पश्चिम में पुष्कलावती,
- पश्चिम में पटल और भृगुकच्छ, और
- दक्षिण में मुजिरिस। (सिंह 2009ः 407)

कुषाण और सातवाहन छोटे पैमाने पर लेन-देन के लिए सिक्कों का उपयोग करते थे। सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों ने व्यापारिक गतिविधियों को सुविधाजनक बना दिया था। *धर्मशास्त्रों* में स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं का मुनाफा तथा कर से संबंधित प्रावधान बना था। *जातकों* में लंबी यात्रा की जानकारी मिलती है। इसमें यात्रा के लिए बैलगाड़ी, रथ और पैदल लोगों के लिए विभिन्न सुविधाओं का उल्लेख है। थके हुए यात्रियों के आराम के लिए विश्राम गृह बनवाए गए थे (सिंह 2009ः 406)।

लंबी दूरी के समृद्ध व्यापारिक संबंध इस काल में एक अन्य ऐतिहासिक परिवर्तन था। रोमन साम्राज्य में चीन के रेशम की भारी मांग थी। रेशम पूर्वी एशिया के दूर दराज क्षेत्रों के पास भूमार्ग से होकर पहुँचता था। रेशम मार्ग के दो रास्ते थे – उत्तरी और दक्षिणी रेशम मार्ग। बैक्ट्रिया दक्षिणी रेशम मार्ग पर स्थित था। महत्वपूर्ण मुद्दा यह था कि जब कुषाणों ने सत्ता में प्रवेश किया और बैक्ट्रिया पर कब्जा कर लिया, तो रोमन साम्राज्य ने भारतीय उपमहाद्वीप से व्यापार का एक वैकल्पिक तरीका अपनाया। इसने कुषाणों को अपार बल प्रदान किया। यह साम्राज्य रेशम मार्ग के आधार पर फला-फूला। दक्षिण-पश्चिम मानसूनी हवाओं की खोज ने हिंद महासागर में समुद्री व्यापार की संभावनाओं को उत्पन्न किया।

पेरिप्लस और टॉलेमी के *ज्योगर्फी* में उल्लेख है कि चीनी रेशम ने उत्तर-पश्चिमी भारत में बैक्ट्रिया और काबुल के माध्यम से प्रवेश किया, मथुरा पहुँचा और वहाँ से उज्जयिनी। उज्जयिनी से व्यापारी और उत्पाद बंदरगाह शहर बेरिगाजा पहुंचा। यहाँ से चीनी रेशम लाल सागर और पूर्वी भूमध्य क्षेत्र के बंदरगाहों तक पहुँचता था (चक्रवर्ती 2013ः 202)। इसने भारतीय व्यापारियों और रोम के बीच व्यापारिक संबंधों का मार्ग प्रशस्त किया। भारत से निर्यात में शामिल थेः

- हीरे, मोती जैसे कीमती रत्न;
- हाथी दांत के उत्पाद;
- बेहतरीन वस्त्र; तथा
- मसाले।

रोमन साम्राज्य में काली मिर्च की माँग अधिक थी। आयात होने वाली वस्तुओं में शामिल थेः

- चीनी रेशम,
- विशिष्ट मिट्टी के बर्तन जैसे अरेटीन बर्तन,
- आयातित एम्फ़ोरा, और
- भूमध्यसागरीय मदिरा (चक्रवर्ती 2013ः 204-205)।

भारत तथा पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच व्यापार संपर्क इस काल में तेज हो गया था।

इस काल में उत्तर-पश्चिम भारत में फलते-फूलते व्यापार संबंधों और प्रवासी समूहों के निरंतर सम्पर्क ने शिल्प विशेषज्ञता के लिए पृष्ठभूमि प्रदान की। *मिलिंदपन्हो* में शिल्प में विशिष्ट 60 प्रकार के लोगों का उल्लेख है जैसेः

- कुम्हार,
- बढ़ई,
- धातु कर्मी,
- बेंत का सामान बनाने वाले
- बांस के सामान के निर्माता,
- हाथीदांत के कारीगर आदि।

इन कारीगरों का संगठन गिल्ड (*श्रेणियाँ)* मौर्योत्तर काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। *श्रेणी* पेशेवरों, व्यापारियों या कारीगरों का एक समूह था, जिसमें व्यवसायों से संबंधित वे अपने सामान्य हितों और नीतियों पर फैसला लेते थे। पश्चिमी दक्कन के शिलालेखों में निम्नलिखित श्रेणियों का उल्लेख हैः

- बुनकर,
- कुम्हार,
- आटा निर्माता,
- तेल मिल,
- बांस श्रमिक, और
- व्यापारी।

इन समूहों का शाही अधिकारियों के साथ घनिष्ठ संबंधों का पता चलता है (सिंह 2009ः 404)।

ब्राह्मणवादी साहित्य *मनुस्मृति* और *याज्ञवाल्क्य स्मृति* चर्तु-*वर्ण* व्यवस्था को संरक्षण प्रदान करता है। साथ ही कई जातियों को समायोजित भी करता है। दो अलग-अलग वर्णों के मेल से पैदा होने वाली संतानों को *जाति* का दर्जा दिया गया था तथा विशिष्ट या वंशानुगत व्यवसायों द्वारा जातियों को निरूपित किया जाता था। *मनुस्मृति* में क्षत्रियों के रूप में *व्रात्य क्षत्रियों* का भी उल्लेख है, जिन्हें अनुष्ठान न करने के कारण निम्न माना जाता था (सिंह 2009ः 418)। राज्य समाज के क्रमिक प्रसार से उत्पन्न ब्राह्मणवादी संरचना में जातियों का प्रसार आदिवासी समूहों के अवशोषण के कारण हो सकता है। मध्य और पश्चिम एशिया से आने वाली विदेशी जनजातियों को *व्रात्य क्षत्रियों* के रूप में आत्मसात किया जाता था। इससे पहले, उन्हें बाहरी लोगों (*यवनों*) के रूप में माना जाता था, लेकिन धीरे-धीरे पतित क्षत्रियों के रूप में उन्हे *ब्राह्मण* साहित्य में जगह दी गई (चक्रवर्ती 2013ः 210)। महिलाओं की स्थिति के बारे में *मनुस्मृति* में पत्नियों की सुरक्षा और उन्हें पुरुषों के नियंत्रण में रखने पर ज़ोर दिया गया। इसमें कहा गया है कि महिलाओं को पिता, फिर पति और फिर बेटे के संरक्षण में होना चाहिए। घर में महिलाओं को एक अधीनस्थ का दर्जा दिया गया है, बेटे को प्राथमिकता दी गई तथा बेटी और महिलाओं को घरेलू क्षेत्र तक सीमित रखा गया है। उच्च वर्णों के लिए विवाह के आदर्श रूप जैसे *ब्रह्म, दैव, आर्ष* और *प्रजापत्य* की अनुमति थी और निम्न वर्णों के लिए *असुर, गन्धर्व, राक्षस* और *पैशाच* विवाह निर्धारित थे। अगर हम *महाभारत* में देखें तो अर्जुन और सुभद्रा के बीच का विवाह *राक्षस* विवाह था। आश्चर्य है कि नियामक साहित्य में विवाह के *स्वयंवर* रूप का उल्लेख नहीं है (चक्रवर्ती 2013ः 212)। दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के *स्मृति* साहित्य में देखा गया कि महिलाओं की संपत्ति (*स्त्रीधन*) को मान्यता दी गई और इस संबंध में निर्देश भी दिए गए थे।

सातवाहन शासक अपने नाम के आगे माता का गोत्र लगाते थे। इससे पता चलता है कि माता को महत्वपूर्ण माना गया होगा, क्योंकि उनके नाम के माध्यम से वंश का पता लगाया जाता है। शिलालेखों से संकेत मिलता है कि सातवाहन वंश की महिलाओं को दान देने का अधिकार दिया गया था। अन्य पुरालेखों में बताया गया है कि बड़ी संख्या में महिलाएँ, जिनका संबंध शाही वर्ग से नहीं था, वे भी बौद्ध स्थलों पर दानकर्ता थीं। इससे पता चलता है कि इन महिलाओं के पास कुछ आर्थिक स्वतंत्रता थी।

बोध प्रश्न 2

1) इंडो-ग्रीक कौन थे?

....

....

....

....

....

2) शक वंश की राजनीतिक प्रकृति पर चर्चा करें।

....

....

....

....

....

3) कनिष्क पर एक टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

....

4) कुषाण शासन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

5) सातवाहन वंश की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

6) i) निम्नलिखित का मिलान करें।

1) खारवेल	क) जूनागढ़ शिलालेख
2) रुद्रदामन	ख. हाथीगुम्फा शिलालेख
3) कनिष्क	ग. नासिक गुफा शिलालेख
4) गौतमीपुत्र सातकर्णी	घ. राबटक शिलालेख

ii) निम्नलिखित का मिलान करेंः

1) यौधेय	क. यू-ची जनजाति
2) कुषाण	ख. पेशेवर योद्धा
3) रुद्रदमन	ग. आंध्र वंश
4) सातवाहन	घ. कर्दमक वंश

7) निम्नलिखित दिए गए सही वाक्यों के सामने सही (✓) का तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (×) का चिह्न लगाएँः

1) अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ गौतमपुत्र सतकर्णी द्वारा मारा गया था।

2) पुष्यमित्र शुंग ओडिशा के तटीय और पूर्वी भाग में एक महत्वपूर्ण शासक के रूप में उभरा।

3) यौधेय-कुनिंद शब्द का प्रयोग उन आक्रमणकारियों के समूह के लिए किया जाता है जो पार्थिया से उत्तर-पश्चिमी भारत में आए थे।

4) कुषाण साम्राज्य ने भारत के माध्यम से चीन से पश्चिम एशिया तक रेशम व्यापार को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5) शक संभवतः आंध्र जनजाति के थे, जिनकी शक्ति दक्कन क्षेत्र में उत्पन्न हुई थी।

14.8 सारांश

इस इकाई में हमने भारतीय उपमहाद्वीप के प्रथम साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की स्थापना पर चर्चा की। इसमें मौर्यों के उद्भव और वंशवादी इतिहास के बारे में जाना। राज्य के घटकों और प्रशासन के विस्तृत तंत्र पर प्रकाश डाला गया है। मौर्य राज्य की प्रकृति को समझने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोतों का सहारा लिया गया। *अर्थशास्त्र* में शासन से संबंधित आवश्यक मामलों पर प्रकाश डाला गया है। अशोक के शिलालेखों से अशोक की शाही घोषणाओं का पता चलता है और मेगस्थनीज़ के लेखों में चंद्रगुप्त मौर्य के काल में राज्य और समाज के कामकाज को शामिल किया गया। पहले की सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाएँ इस काल में भी जारी रहीं और फली-फूली। इस विशाल और विषम साम्राज्य को एक धागे में पिरोने तथा मजबूत करने में जिन शाही नीतियों ने योगदान दिया, उनका यहाँ अध्ययन किया गया है।

मौर्योत्तर काल को विविध और गतिशील राज्य व्यवस्थाओं की अवधि के रूप में जाना जा सकता है। शुंगों और कण्वों के शासन में ब्राह्मणवादी समाज को पुनर्गठित करने का प्रयास

दिखाई देता है। शक, पह्लव और कुषाणों के आक्रमणों ने सामाजिक प्रवाह को बढ़ाया और शासन के विभिन्न पहलुओं, संस्कृति और धार्मिक प्रथाओं के बीच तालमेल बिठाने की कोशिश की। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में विदेशियों द्वारा राजतंत्र स्थापित किया गया। सिंधु-गंगा के विभाजित क्षेत्र पर यौधेयों, अर्जुनयानों आदि में आदिवासी राज्य व्यवस्थाओं को भी देखा गया। सातवाहन और कलिंग ने नए क्षेत्रों में स्वदेशी राज्य की शुरुआत की। यहाँ शहर, विशेष शिल्प और व्यापार के संजाल का भी विस्तार किया गया था।

14.9 शब्दावली

***सप्तांग* राज्य** : *अर्थशास्त्र* में इस शब्द का प्रयोग राज्य प्रणाली के सात आवश्यक अंगों को परिभाषित करने के लिए किया गया है। इसमें *स्वामी* (राजा), *अमात्य* (मंत्री), *जनपद* (क्षेत्र और प्रजा), *दुर्ग* (किलेबंद राजधानी), *कोष* (कोष), *दंड* (न्याय) और *मित्र* (पड़ोसियों के साथ संबंध) शामिल थे।

***वर्ण* व्यवस्था** : समाज को *ब्राह्मण*, क्षत्रिय, *वैश्य* और *शूद्र* चार वर्णों में बाँटा गया। इन वर्णों की स्थिति को भी क्रमवार तरीके से रखा गया। इन वर्णों के कर्तव्यों को ब्राह्मणवादी स्रोतों में तय किया गया है। जिसमें *ब्राह्मण* कर्मकांड करने वाले, क्षत्रिय अन्य वर्णों की रक्षा करने वाले, *वैश्य* व्यापारिक गतिविधियों को करने वाले तथा *शूद्र* ऊपरी तीन वर्णों की सेवा करने वाले होते थे।

धम्म : यह संस्कृत शब्द धर्म का प्राकृत शब्द है। धर्म शब्द का अर्थ है – कर्तव्य या धार्मिकता। बौद्ध सिद्धांत में इसका उपयोग बुद्ध के शिक्षाओं के लिए किया जाता है। अशोक ने इसे व्यापक अर्थ दिया।

स्त्रीधन : माता-पिता, रिश्तेदारों या दोस्तों द्वारा शादी के समय एक महिला को उपहार के रूप में प्राप्त संपत्ति।

सीता : राजा/राज्य के नियंत्रण में भूमि।

जनपद निवेश : इस शब्द का उल्लेख *अर्थशास्त्र* में मिलता है। इसका उपयोग नए क्षेत्रों में कृषि तंत्र के विस्तार के लिए किया गया। स्थिर कृषि संसाधन-आधार को बनाए रखने के लिए *अर्थशास्त्र* में इस शब्द पर ज़ोर दिया गया।

गणसंघ : यह शासन की एक प्रणाली के बारे में बताता है, जहाँ राजनीतिक शक्ति का प्रयोग शासकों के समूह द्वारा किया जाता था। एक शासक की अवधारणा यहाँ नहीं थी। इन शासकों की सभाओं के माध्यम से राजनीतिक निर्णय सामूहिक रूप से लिए जाते थे।

14.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 14.3.1 देखिए।

2) उपभाग 14.3.1 देखिए।

3) उपभाग 14.3.1 देखिए।

4) उपभाग 14.3.8 देखिए।

5) भाग 14.4 देखिए।

6) i) 1 – ग, 2 – घ, 3 – क, 4 – ख

ii) 1 – घ, 2 – क, 3 – ङ, 4 – ग, 5 – ख

7) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓ v) ✓

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 14.6.3 देखिए।

2) उपभाग 14.6.4 देखिए।

3) उपभाग 14.6.5 देखिए।

4) उपभाग 14.6.5 देखिए।

5) उपभाग 14.6.8 देखिए।

6) i) 1 – ख, 2 – क, 3 – घ, 4 – ग

ii) 1 – ख, 2 – क, 3 – घ, 4 – ग

7) (i) × (ii) × (iii) × (iv) ✓ (v) ×

14.11 संदर्भ ग्रन्थ

चक्रवर्ती, रणबीर (2013) *एक्सप्लोरिंग अर्ली इंडिया अपटू ए.डी.1300*, दिल्ली : मैकमिलन.

फुस्समन, जी, (1987-88) सेन्ट्रल एंड प्रोविशियंल एडमिनिस्ट्रेशन इन ऐन्शियंट इंडिया : द प्रोब्लम् ऑफ द मौर्यन इम्पायर. *इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू*, भाग 14, पृ. सं. 1-2, 43-72.

जयसवाल, के. पी. (1955) *हिन्दू पॉलिटी.* बैंगलूरः बैंगलोर प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग कं., (1918).

झा, डी. एन. (2009) *ऐन्शियंट इंडिया इन हिस्ट्रोरिकल आउटलाइन.* नई दिल्लीः मनोहर पब्लिशर्स, रिवाइज्ड एंड एनलार्जड एडिशन.

बोगार्ड, लेविन, जी. (1985) *मौर्यन इंडिया.* नई दिल्लीः अभिनव.

राय चौधुरी, एच. सी. (1987) *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियंट इंडिया.* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, (रिवाइज्ड एडिशन).

शर्मा, आर.एस. (1991) *एसपैक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टीट्यूशन्स इन*

ऐन्शियंट इंडिया, दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमि.

शर्मा, आर.एस. (1983) *पर्सपैक्टिव्स इन सोशल एंड इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया.* नई दिल्ली, मुंशीराम मनोहरलाल.

शर्मा, आर.एस. (1983) *मैटीरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशन्स इन ऐन्शन्ट इंडिया.* दिल्ली मैकमिलन लिमि.

शर्मा, आर.एस. (2007). *इंडियाज ऐन्शियंट पॉस्ट.* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

शास्त्री, ए. एम. (2002) *अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डक्कनः प्रोब्लम्स एंड पर्सपैक्टिव्सः* संदीप प्रकाशन.

सिंह, उपिंदर (2013) *ए हिस्ट्री ऑफ ऐन्शियंट एंड अर्ली मेडीवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन एज टू द 12थ सेंचुरी.* नई दिल्लीः पीयरसन.

थापर. आर. (1983) *अशोक एण्ड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्याज़.* दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

थापर. आर. (1998) *मौर्याज़ रीविजिटेड.* कलकत्ताः के.पी. बागची एंड कं.

थापर. आर. (2002) *अर्ली इंडिया फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300.* नई दिल्लीः पेंगुइन.

इकाई 15 दक्कन और *तमिलाहम्* में आरंभिक राज्य निर्माण*

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सातवाहन वंश के विषय में जान सकेंगे जिसने दक्कन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की;
- सातवाहनों के अन्तर्गत प्रशासन की प्रकृति समझ सकेंगे; और
- इस समय में समाज में हुए परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-7 से ली गई है।

आप यह भी जान सकेंगे कि :

- आरंभिक काल में दक्षिण भारत या *तमिलाहम्* किन परिस्थितिकी प्रदेशों में बंटा था;
- किस प्रकार जीवन यापन के विभिन्न तरीके एक साथ अस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था;
- किस प्रकार विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र कार्य करते थे; और
- कैसे वे राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते थे।

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने उत्तर मौर्य काल में उतरी भारत में व्यापार के प्रसार के बारे में पढ़ा। इसका संबंध नगरों की संख्या में वृद्धि और कला एवं स्थापत्य कला के विकास से था। इस इकाई में आप दक्कन भारत में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। प्रथम सदी बी.सी.ई. के आस पास दक्कन में जिस ताकतवर वंश का उदय हुआ वह सातवाहन वंश था। यहाँ पर हम सातवाहनों के अंतर्गत दक्कन की राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

सातवाहनों के अधीन दक्कन में आरंभिक राज्य उत्पत्ति की जानकारी लेने के बाद आप जानेंगे कि इस काल के दौरान तमिल क्षेत्र में उसी प्रकार की स्थिति नहीं थी। इस क्षेत्र में केवल मुख्यितंत्र विद्यमान था, राज्य शक्ति जैसी चीज का नामोनिशान नहीं था। राज्य के लिए एक क्षेत्र विशेष में केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। क्षेत्र के विभिन्न स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित होने पर ही किसी राजनीतिक शक्ति का अधिकार कायम होता था। इसके अतिरिक्त राज्य के लिए एक नियमित कराधान व्यवस्था और व्यवस्थित सेना का होना आवश्यक था। इस कराधान और सेना को व्यवस्थित करने के लिए राज्य के पास नौकरशाही या विभिन्न स्तरों के अधिकारियों का एक दल होना चाहिए। दूसरी तरफ मुखियातंत्र में ऐसी व्यापक व्यवस्था नहीं होती है। मुखियातंत्र वंशानुगत अधिकार पर आधारित एक ऐसा समाज होता है, जिसमें एक मुखिया का शासन होता है। उसके अधिकार क्षेत्र में वे लोग होते हैं जो उसके साथ संबद्ध कबीले के नियमों और सगोत्रता के सूत्र में बंधे होते हैं। मुखिया अपने लोगों के सगोत्रीय संबंधों का संस्थागत रूप होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में लोगों से राजस्व के तौर पर नियमित रूप से कर नहीं वसूल किया जाता है, बल्कि स्वेच्छा से लोग समय-समय पर नज़राना दिया करते हैं। इस इकाई में आप विभिन्न प्रकार के मुखियाई अधिकारों और *तमिलाहम्* में उनके राजनीतिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

15.2 स्रोत

सातवाहन शासकों को दूसरे नाम आन्ध्राओं से भी जाना जाता है। इन राजाओं के नामों की सूची *पुराणों* में भी पायी जाती है। इन सूचियों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में दूसरे साक्ष्यों के साथ आलोचनात्मक तुलना किये बिना उपयोग करने में बहुत सी कठिनाइयाँ होती हैं। उदाहरण के तौर पर, विभिन्न *पुराणों* में राजाओं के नाम एवं उनके शासनकाल में काफी अन्तराल है। इससे भी अधिक बड़ी समस्या यह है कि इन राजाओं के विषय में सूचना केवल कल्पित एवं किंवदंतियों में निहित हैं। इसलिए वास्तविकता एवं किंवदंतियों के बीच अन्तर करने के लिए इन स्रोतों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिए। यदि अन्य स्रोतों जैसे कि सिक्कों व शिलालेखों के साथ *पुराणों* का अध्ययन किया जाये तो वे काफी उपयोगी हैं। सातवाहनों ने काफी बड़ी संख्या में सीसे, चांदी व तांबे के मिश्रित सिक्कों को ढलवाया। उनके

चांदी के सिक्कों पर राजा का चित्र एवं नाम खुदा हुआ है। बौद्ध गुफाओं से पत्थर पर खुदे लेख एवं लिपिबद्ध किये दान के विवरण प्राप्त हुए हैं जिनको सातवाहन राजाओं एवं रानियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में साधारण लोगों ने बनवाया। इन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद सामान्यतः विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि सातवाहनों ने प्रथम बी.सी.ई. के आसपास अपना शासन करना प्रारंभ किया। उनका सबसे प्रारम्भ का साक्ष्य महाराष्ट्र राज्य के नासिक के पास एक गुफा में पत्थर पर उत्कीर्ण लेख के रूप में पाया गया है।

ब्राह्मी लिपि में अंकित सातवाहन सिक्का, पहली शताब्दी बी.सी.ई.। बिंटिश संग्रहालय। श्रेय : पीएचजी सीओएम। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Satavahana1stCenturyBCECoinInscribedInBr hmi(Sataka)Nisa.jpg)।

15.3 राज्य की उत्पत्ति के विषय में

अब हम एक प्रश्न उठाते हैं राज्य क्या है और राज्य की उत्पत्ति ने समाज में कैसे परिवर्तन किये? राज्य की उत्पत्ति के कारणों के विषय में कई मत दिये जाते हैं। राज्य की उत्पत्ति के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। कुछ विशेष मामलों में व्यापार के विकास एवं नगरों के फैलाव के कारण राज्य की उत्पत्ति हुई। अन्य दूसरे मतों के अनुसार आबादी के दबाव एवं विजय के कारण उस समय की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ।

सामान्यतः विद्वान लोग इस तथ्य से सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करने के लिए राज्य एक सक्षम औज़ार है। एक राज्य भली भांति परिभाषित एक क्षेत्र पर नियंत्रण रखता है और कर तथा राजस्व को एकत्रित करने के लिए एक प्रशासनिक तंत्र को बनाकर रखता है। वह एक स्थायी सेना को भी रखता है जो कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने में मदद करती है। लेकिन इन सबके साथ-साथ समाज में असमानता एवं वर्ग विभेदन भी बढ़ता है। यहाँ शासक और शासित के मध्य स्पष्ट भेद है। शासन कर्त्ता अपने लाभ एवं उपयोग के लिए समाज के संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर शासित वर्ग शाही परिवार के सदस्यों, राज्य के कुलीनों, बहुत से अधिकारियों एवं सेवा के रख-रखाव के लिए आवश्यक धन एवं राजस्व उपलब्ध कराते थे। इस प्रकार कबीलाई समाज एवं राज्य समाज में मूल भूत अन्तर राजनीति के नियंत्रण की प्रकृति में निहित है। राज्य व्यवस्था के अंतर्गत विशेषज्ञात्मक प्रशासनिक व्यवस्था शासक एवं शासित को अलग करती है। कबीलाई समाज में सामान्यतः एक कबीले के द्वारा राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया जाता है जिसके पास अपने निर्णयों को लागू करने के कोई अधिकार नहीं होते। कबीले की स्थिति सदस्यों की वफादारी पर निर्भर करती है और अधिकतर निर्णयों को एक साथ लिया जाता है।

15.4 पूर्ववृत्त

आपने इकाई 7 में पढ़ा कि दूसरी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. में पश्चिम दक्कन में ताम्रपाषाण बस्तियों का प्रसार हुआ। बाद में प्रथम सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के द्वितीय भाग में लोहे का प्रयोग करने वाली जातियों ने पूर्वी दक्कन पर अपना अधिकार कर लिया। ये मुख्य रूप से ग्रामीण बस्तियाँ थीं और जिनमें बहुत बड़ी तादाद में कबीलाई लोग वास करते थे। प्रारंभिक संस्कृत साहित्य विशेषकर महाकाव्यों एवं *पुराणों* में आन्ध्रा, सबर, पुलिन्द आदि जैसी कबीलाई जातियों का वर्णन है जो दक्कन में रहती थीं। इनमें से कई जातियों के दक्कन नामों को अशोक शिलालेखों में भी उद्धृत किया गया है। परन्तु इनमें से अधिक सन्दर्भ सामान्य प्रकृति के हैं और इनके आधार पर उस निश्चित क्षेत्र को परिभाषित करना कठिन है जहाँ दक्कन में वे रहते थे।

दक्कन में परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारंभ शायद मौर्यों के प्रसार के साथ हुआ। मौर्य मुख्यतः दक्कन प्रायद्वीप के खनिज संसाधनों को शोषित करने में रुचि रखते थे। आधुनिक कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की खानों से प्राप्त किये गये सोने, हीरे एवं रत्नों को भूमि एवं समुद्र के किनारे वाले मार्गों के द्वारा उत्तर भारत में मगध को भेजा जाता था। इन मार्गों पर कई बाजार केंद्र विकसित हुए जैसे कि आंध्र प्रदेश के वर्तमान गुंटूर जिले में कृष्णा नदी के किनारे धरनिकोटा और महाराष्ट्र के सतारा जिले में करद्। इर्द-गिर्द के अनेक स्थानों पर महारठी के नाम से जाने वाले अनेक सरदार महत्त्वपूर्ण हो गये। लेकिन ये स्थानीय महारठी सरदार सातवाहनों के अन्तर्गत ही थे तथा सातवाहनों एवं महारठियों के बीच वैवाहिक संबंध थे और इस प्रकार सातवाहनों के रूप में दक्कन में प्रथम राज्य की उत्पत्ति हुई।

15.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि

दक्कन प्रायद्वीप पठारीय क्षेत्र और पूर्व एवं पश्चिमी किनारों के पर्वतीय श्रृंखलाओं के द्वारा तटीय मैदानों में विभाजित है। पश्चिम के कोंकण तटीय क्षेत्र की अपेक्षा आंध्र का तटीय क्षेत्र काफी चौड़ा है। इस पठारी क्षेत्र का सामान्यतः ढलान पश्चिम क्षेत्र से पूर्व की ओर है तथा उसके कारणवश महानदी, गोदावरी और कृष्णा जैसी नदियों का बहाव पूर्व दिशा की ओर है जिससे कि वे बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। नदियों के डेल्टा एवं घाटियों में बस्तियों के लिए काफी उत्पादक भूमि उपलब्ध होती है। दक्कन की एक भौगोलिक विशेषता शायद इस तथ्य में निहित है कि पठार के पर्वतीय क्षेत्रों को केवल दर्रों के द्वारा ही पार किया जा सकता है।

15.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा

पुराणों के अनुसार सिमुक सातवाहन ने सातवाहन शक्ति की स्थापना की। उसके भाई कन्हा या कृष्ण के विषय में हमें जानकारी नासिक के लेख से प्राप्त होती है। वंश के अनेक शासकों का विवरण रानी नागनिका के नानाघाट शिलालेख से भी प्राप्त होता है जो राजा सतकर्णी की विधवा थी तथा उसने वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया था। नानघाट एक काफी बड़ा दर्रा था जो जुन्नर के साथ समुद्र तट से जुड़ा था और इस दर्रे के ऊपर एक गुफा है जिसमें सातवाहन शासकों के चिन्ह खुदे हुए थे। दुर्भाग्यवश ये मूर्तियाँ अब पूर्णतः नष्ट हो चुकी हैं और जो अवशेष बचे हैं उनके मस्तक के ऊपर के चिन्ह उनका मात्र नाम देते हैं।

सतकर्णी के बाद गौतमीपुत्र सतकर्णी के शासनकाल तक जिन शासकों ने शासन किया उनके विषय में हमें काफी कम जानकारी है। नासिक में एक गुफा के प्रवेश द्वार पर गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का एक लेख खुदा हुआ है जिससे उसके राज्य के फैलाव एवं उसके शासन काल की घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र सतकर्णी की मुख्य उपलब्धि

यह है कि उसने पश्चिम दक्कन एवं गुजरात के क्षत्रियों को पराजित किया था। उसकी माता के इस लेख में इस तथ्य की प्रशंसा की गई है कि उसने पुनः सातवाहन गौरव को स्थापित किया था और इस तथ्य की पुष्टि मुद्रा साक्ष्यों से भी होती है। अपनी जीत के बाद गौतमीपुत्र सतकर्णी ने अपने खुद के लेख और प्रतीकों के साथ क्षत्रप नाहपण के चांदी के सिक्कों का प्रतिकार किया। *पेरिल्पस ऑफ दी ऐरिथरियन सी* के अनुसार सातवाहनों एवं क्षत्रपों के मध्य चलने वाले *संघर्ष* के कारण मुम्बई के पास स्थित बन्दरगाह में ठहरे हुए ग्रीक जहाजों को सुरक्षा के साथ भड़ौच स्थित बन्दरगाह पर भेजा गया। शायद अति आवश्यक विदेशी व्यापार को लेकर इन दोनों के बीच *संघर्ष* था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमीपुत्र सतकर्णी शासनकाल में ही सातवाहनों का शासन आंध्र प्रदेश तक फैल गया था।
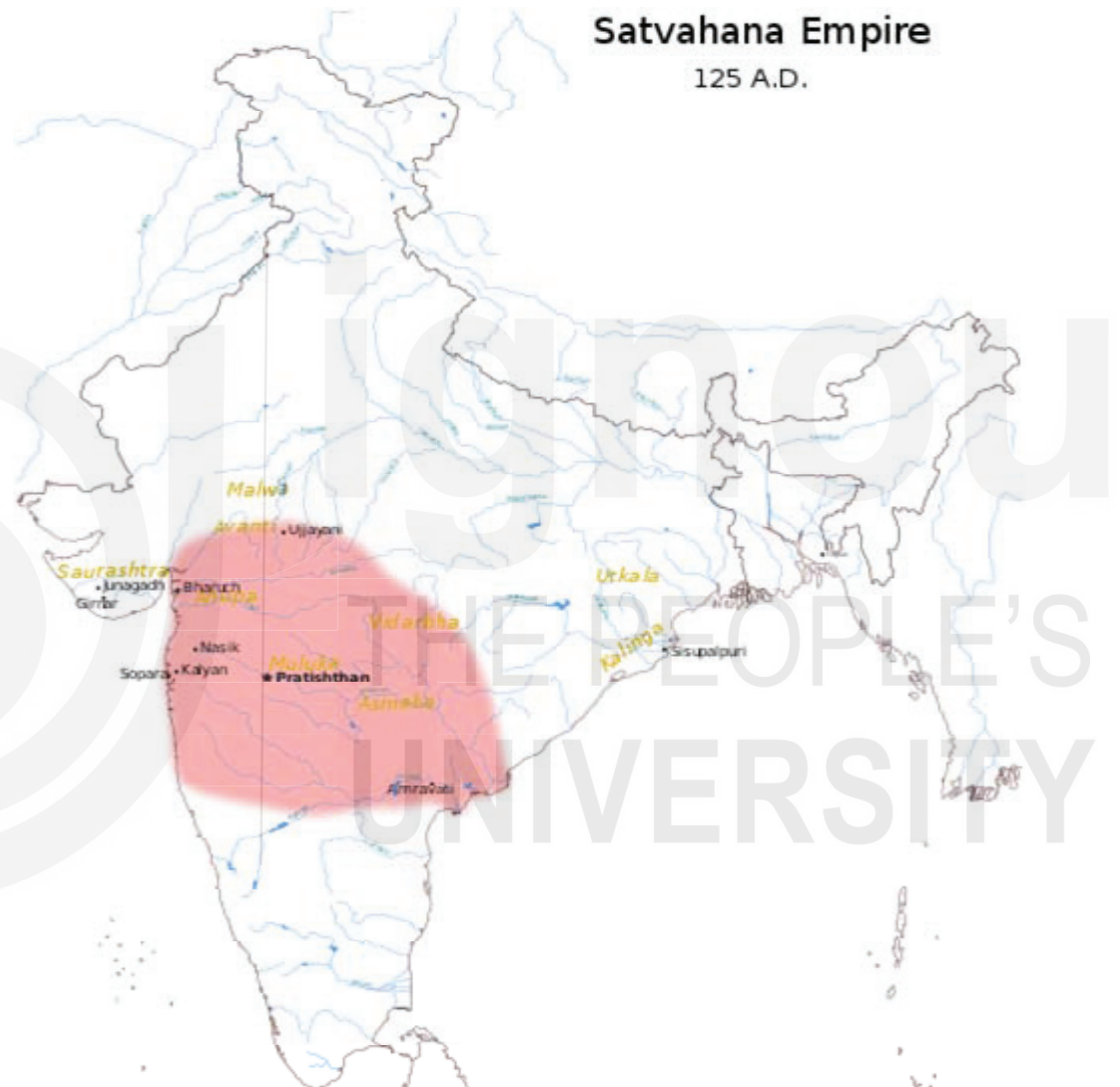
गौतमीपुत्र सातकर्णी के अंतर्गत सातवाहन साम्राज्य का विस्तार। स्रोत : *द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल,* वॉल्यूम-11. श्रेय : चेतनव। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Satvahana.svg)।

गौतमीपुत्र सतकर्णी के बाद उसका पुत्र पुलुमावि शासक हुआ और इस समय तक सातवाहनों में अपनी शक्ति का फैलाव पूर्वी दक्कन तक कर लिया था। हमें प्रथम चार सातवाहनों के लेख पश्चिमी दक्कन से बाहर अमरावती में प्राप्त होते हैं। यजनश्री सतकर्णी अंतिम महत्त्वपूर्ण सातवाहन शासक था और उसके बाद उनके साम्राज्य का विभाजन उसके उत्तराधिकारियों के बीच हो गया जिनकी एक शाखा ने आंध्र क्षेत्र में शासन किया। बाद के सातवाहन शासकों ने द्विभाषा में लिखे हुए सिक्कों को जारी किया जिसमें राजा का नाम प्राकृत भाषा में लिखा

हुआ है और मुद्रा लेख किसी एक दक्षिणी भाषा में। इस भाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि यह तमिल में हैं तो कुछ के अनुसार यह तेलगू में हैं।

क्षत्रपों के साथ-साथ प्रारम्भिक सातवाहन शासक को उडीशा का कलिंग की खारवेल शक्ति के साथ *संघर्ष* करना पड़ा। खारवेल ने प्रथम शताब्दी बी.सी.ई में कलिंग में अपनी शक्ति की स्थापना की थी। उसने सातवाहन शासक सतकर्णी की परवाह किये बगैर पश्चिम की ओर अपनी सेना को भेजा। ऐसा कहा जाता है कि सातवाहन शासक को *क्षत्रपों* और खारवेल नरेश के हाथों पराजय भोगनी पड़ी। इसको केवल गौतमीपुत्र सतकर्णी ने पुनः स्थापित किया।

सातवाहन इतिहास की यह भी एक समस्या है कि हमें सातवाहन शासकों के एवं उन छोटे सरदारों के बीच के सम्बन्धों की जानकारी बहुत कम है जो दक्कन प्रायद्वीप के अनेक क्षेत्रों में उनके शासन काल के दौरान फले फूले। उदाहरण के लिए एक क्षेत्र में सातवाहनों का महारठी एवं महाभोजों के बीच वैवाहिक संबंधों का संदर्भ मिलता है – वास्तव में नानाघाट के अभिलेख में एक महारठी सरदार एक राजकुमार पर अग्रता प्राप्त कर लेता है और नायनिका रानी स्वयं एक महारठी सरदार की पुत्री थी। महारठियों ने भी स्वयं स्वतंत्र रूप से दान किये – उनके अधिकतर अभिलेख कार्ले के आस-पास प्राप्त हुए हैं जबकि महाभोजियों के अधिकतर साक्ष्य पश्चिमी तट के क्षेत्र में मिलते हैं।
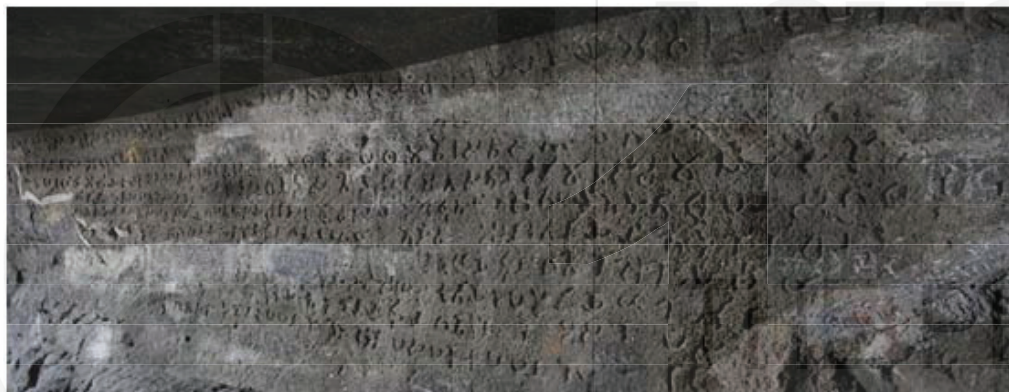
रानी नायनिका/नगनिका का लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. का नानाघाट/नानेघाट गुफा अभिलेख। श्रेय : ऐम्रोय सेस्पेआ। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Complete_view_of_Inscription_in_cave_at_Naneghat.jpg)।

15.7 बस्तियों का प्रारूप

उनके प्रारंभिक अभिलेखों के प्राप्ति स्थान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सातवाहनों ने अपने शासन का प्रारंभ पश्चिमी दक्कन से किया। गौतमीपुत्र सतकर्णी की माता का दूसरी सदी बी.सी.ई. का नासिक अभिलेख सातवाहनों के साम्राज्य की सूचना देता है। इस शिलालेख में यह भी संदर्भ है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों तट गौतमीपुत्र सतकर्णी के साम्राज्य के भाग थे जिसका तात्पर्य यह हुआ कि इस समय में सातवाहन शासन सम्पूर्ण दक्कन प्रायद्वीप पर था और यह *अहार* या जिलों में विभाजित था। इस शिलालेख में हमें पाँच *अहार* या जिलों के नाम इस प्रकार मिलते हैं – नासिक के आस-पास केंद्रित गोवर्धन *अहार*, पश्चिमी तट पर सोपारका-*अहार*, पुणे एवं सतारा जिलों के पर्वतीय क्षेत्रों को मिलाकर ममला-*अहार*, *सातवाहनिहारा* कर्नाटक के जिले बैल्लारी में, और कपूरशरा शायद गुजरात में था।
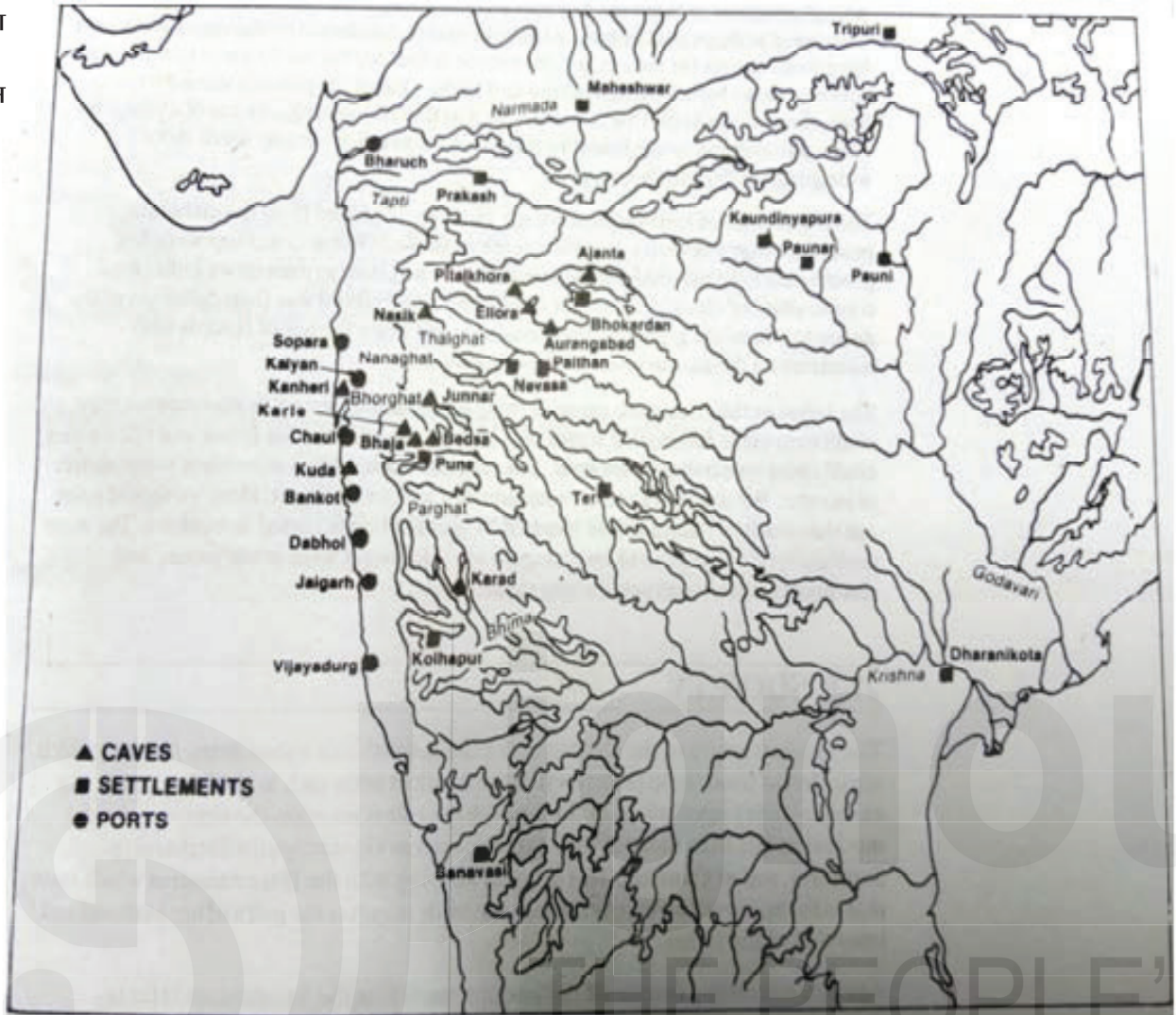
सातवाहन काल की बस्तियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-7, इकाई-27।

15.7.1 पश्चिमी तट

पश्चिमी तट पर भड़ौच, कल्याण, सोपारा और चौल एवं कोंकण तट पर दक्षिण में अनेक बन्दरगाहों की श्रृंखला थी। इन बंदरगाहों पर विक्रय वस्तुओं को देश के आंतरिक केंद्रों से पश्चिमी तट के दर्रों के बीच से लाया जाता था। प्रथम सदी सी.ई. का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ, *पेरिप्लस ऑफ दि ऐरिथरियन सी* जिसकी रचना ग्रीक के एक गुमनाम नाविक ने की थी, इस समय की यात्रा एवं व्यापार की प्रकृति को समझने में बड़ी मदद करता है। कैम्बे की खाड़ी में भड़ौच की ओर जाने वाले ऐसे रास्तों का चित्रण यह ग्रंथ करता है जो काफी संकरी जगहों से होकर गुजरते थे। इसी कारणवश जिले के शाही मछवारे इन जहाजों को स्वयं चलाकर बंदरगाह के अन्दर ले जाते थे। हमने पहले ही इस तथ्य का वर्णन किया है कि क्षत्रपों एवं सातवाहनों के बीच सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण करने और भड़ौच तथा कल्याण के बंदरगाहों के मध्य की प्रतियोगिता को लेकर युद्ध हुआ था।

15.7.2 समुद्र तट से दूर की बस्तियाँ

पश्चिमी तटों से दूर मुख्य भूभाग की ओर कार्ले की 30 किमी. की परिधि के अंतर्गत जुन्नर व नासिक के आस-पास और आगे दक्षिण में कृष्ण के ऊपरी डेल्टा में कोल्हापुर के इर्द-गिर्द ये बस्तियाँ केंद्रित थीं। यह माना जाता है कि ये सभी क्षेत्र कृषि के लिए काफी संपन्न एवं उपजाऊ थे जिससे कि ये पश्चिमी तट पर स्थित बंदरगाहों के लिए संसाधन का आधार

उपलब्ध कराते थे। इन बंदरगाहों के माध्यम से भू-मध्य सागर क्षेत्र एवं भारत के बीच प्रथम शताब्दी सी.ई. में व्यापार किया जाता था और इनका सम्पर्क भू-मार्ग के द्वारा दक्कन प्रायद्वीप के पूर्वी तट एवं आंध्र प्रदेश के व्यापारिक केंद्रों के साथ भी था। यह भड़ौच के पैंठन व टेर एवं पूर्व को आगे की ओर आंध्र के केंद्रों तक जाता था। पैंठन का प्राचीन क्षेत्र गोदावरी के इर्द-गिद्र 4 किमी. क्षेत्र में फैला हुआ था और जब कभी भी इस स्थल की खुदाई की गई तो वहाँ से बहुत सी प्राचीन वस्तुएँ जैसे कि सिक्के, सांचे ओर पकी हुई मिट्टी के पुरावशेष एवं बर्तन प्राप्त हुए हैं। परंतु सातवाहनों के निर्माण संबंधी अवशेषों के विषय में बहुत कम ज्ञान है।

टेर दक्कन के कपास उत्पादक क्षेत्र में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन करने पर यहाँ से लकड़ी के परकोटे और रंगने वाले बर्तन प्राप्त हुए हैं जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यहाँ पर कपड़ों की रंगाई का भी कार्य होता था। टेर को इसलिए भी भली भांति जाना जाता है कि वहाँ पर पायी जाने वाली हाथी दांत की बनी सुन्दर तस्वीर पोम्पेई से पायी जाने वाली प्रतिरूप के बहुत समान है। इस स्थल का सबसे महत्त्वपूर्ण अवशेष ईंटों से निर्मित चैत्य है और जो बाद में ब्राह्मणों के मंदिर के रूप में परिवर्तित हो गया।

दक्कन का दूसरा मार्ग वह था जो उज्जैन से नर्मदा पर स्थित महेश्वर से जुड़ा था तथा अजन्ता एवं पितलखोरा की गुफाओं पर से गुजरता हुआ भोकरदान और पैंठन को जोड़ता था। भोकरदान मोती बनाने का काफी बड़ा केंद्र था तथा उसको सीप एवं हाथी दांत के काम के लिए भी जाना जाता था। भोकरदान के निवासियों या भोगवर्धनियों ने मध्य भारत में सांची एवं बारहुत की गुफाओं में अंकित लेखों के अनुसार बौद्धों को दान दिया।

दक्षिण में आगे की ओर कृष्णा नदी की ऊपरी घाटी में करद नाम का एक और अन्य नगर था जिसका वर्णन बौद्ध अभिलेखों में हुआ है। इसी क्षेत्र में कोल्हापुर भी स्थित था। इस नगर के पश्चिमी भाग से तांबे की बनी वस्तुओं का ढेर प्राप्त हुआ है। इनमें से कुछ जैसे पोसाईडन की मूर्ति का आयात किया गया जबकि गाड़ियाँ एवं तांबे की नावें स्थानीय स्तर पर निर्मित की गई थीं। पास के जिले बेलगाँव में वादगाँव-माधवपुर के प्राचीन स्थल हैं जो बेलगाँव का एक उपनगर था तथा जिसकी खुदाई किये जाने पर बहुत बड़ी संख्या में सिक्के एवं दूसरी प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से जब दक्षिण में आगे की ओर बढ़ते हैं तो बनवासी का स्थल है जहाँ से सातवाहनों का एक शिलालेख मिला है। यह संभवतः एक किलेबन्द बस्ती है क्योंकि यहाँ पर एक किले की दीवार एवं खाई के चिन्ह मिले हैं। प्रायद्वीप के पार दक्कन से गुजरते मार्ग पश्चिमी दक्कन में कृष्णा नदी की नीचे की घाटी में अमरावती जैसे इन स्थलों से जुड़े थे और आंध्र प्रदेश के करीमनगर तक जाते थे। करीमनगर क्षेत्र में भरपूर रूप से फैले हुए बहुत से प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थल हैं जिनमें से हैदराबाद से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 70 किमी. दूर कोंडापुर के नाम से एक महत्त्वपूर्ण स्थल है। इस स्थल का उत्खनन करने पर पर्याप्त मात्रा में सिक्के, पकी मिट्टी की वस्तुएँ एवं बहुत से आकार की ईंटें मिली हैं जो गारा चूना में लगी हैं। पेद्दा-बंकुर आजकल एक छोटा सा गाँव है परन्तु सातवाहन शासनकाल में एक महत्त्वपूर्ण बस्ती थी जो 30 हैक्टेयर क्षेत्र में फैली थी। पेद्दा-बंकूर से लगभग 10 किमी. दूर शूलि कट्टा नाम का स्थल किलेबंद के रूप में था। यह एक कच्ची दीवार से घिरा था और इस स्थल का बहुत सा निर्माण ईंटों का है जिसकी अभी तक खुदाई नहीं की गई है। दूसरी बड़ी बस्ती कोटालिंगल थी जो सातवाहन शासन काल से पूर्व की है क्योंकि अभी हाल में प्राप्त वहाँ से सिक्के इसका प्रमाण हैं। सातवाहन कालीन बस्तियों की कच्ची दीवार से किलेबन्दी की गई और विस्तृत रूप से वे ईंटों का निर्माण थीं। उत्खनन स्थलों से बड़ी मात्रा में लोहे का कचरा एवं कच्ची धातु प्राप्त हुए हैं। करीमनगर क्षेत्र से रास्ता प्रारम्भ होकर नीचे कृष्णा घाटी में शाखाओं में विभाजित हो जाता था जहाँ पर प्रारंभिक ऐतिहासिक बस्तियाँ केंद्रित हैं। इनमें से अमरावती और धरनिकोटा विशेष रूप से मुख्य हैं जो कृष्णा नदी

के दोनों किनारों पर बसे हैं। धरनिकोटा नदी से नौ परिवहण प्रणाली के रास्ते से जुड़ा हुआ था। इस स्थल पर प्रारंभिक निर्माण कार्य लकड़ी के घाट का था और बाद में जिसका स्थान ईंटों के निर्माण ने ले लिया। परन्तु नाव चलाने वाले स्थान पर रेत भर जाने के कारण चौथी सदी सी.ई. में इस स्थल का परित्याग कर दिया गया। प्रायद्वीप के पार जाने वाले मार्गों में एक मार्ग विदर्भ होकर मध्य भारत को जाता था। उस काल के विदर्भ में पौनार, पौनि, मंढल, भटकूली और अढ़म बस्तियाँ थीं।

सातवाहन वंश के इतिहास की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इस काल में दक्कन में किलेबन्द बस्तियों का विकास हुआ और उत्खनन से हमें जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि निर्माण की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ। किलेबन्दी एवं अन्य निर्माण कार्यों के लिए ईंट का काफी प्रयोग होने लगा। छतों के ऊपरी भागों को ठोस कूटी हुयी मिट्टी से बनाया जाने लगा। छत के निचले भाग को लकड़ी के खम्भों के सहारे एवं ऊपर से खपरों की मदद से बनाया जाता था।

प्राचीन काल में जिन मार्गों का उपयोग किया गया वर्तमान रेलवे लाइन भी उन्हीं मार्गों पर बिछायी गई हैं। भोरघाट केवल एक मात्र ऐसा दर्रा है जो पश्चिमी तटों को पार करते हुए पुणे एवं मुम्बई को जोड़ता है तथा जिस पर प्रारंभिक बौद्ध गुफाएँ जैसे कि शैलरवाडी, बेडसा, भाजा, कार्ले, अम्विाले, कोंडाने पड़ते हैं।

15.8 प्रशासन

सातवाहन शासकों का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षा सरल था। शिलालेखों से ऐसे कई मंत्रियों का विवरण मिलता है जिन पर विभिन्न कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व था। अन्य कार्यों के साथ-साथ वे कोषाधिकारी एवं भूमि संबंधी दस्तावेज़ों को रखने का भी कार्य करते थे। मंत्रियों की संख्या की वास्तविक जानकारी नहीं मिलती। इन मंत्रियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से राजा के द्वारा की जाती थी और मंत्री का पद पैत्रक नहीं होता था अर्थात् पिता के स्थान पर पुत्र मंत्री नहीं बनता था। उनको राज्य द्वारा एकत्रित किये गये राजस्व से धन दिया जाता था। हमारे पास इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है कि कितना राजस्व एकत्रित किया जाता था लेकिन हम यह जानते हैं कि कर को व्यापार एवं कृषि दोनों से एकत्रित किया जाता था। सातवाहन शासकों ने प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. में जिस प्रथा का प्रारंभ किया वह यह थी कि किसी एक गाँव से प्राप्त किये गये राजस्व को *ब्राह्मण* या बौद्ध *संघ* को दान के रूप में दे दिया जाता था। इस प्रथा का गुप्त शासकों के द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

राजा के लिए भू-राजस्व के महत्त्व को इस नीति की स्पष्टता से अनुमानित किया जा सकता है कि भूमि के दान को प्रमाणित किया जाता था। इन दोनों को प्रथम बार किसी सभा या निगम सभा के बीच घोषित किया जाता था। तब इसको किसी तांबे की प्लेट या कपड़े पर किसी अधिकारी या मंत्री के द्वारा लिखा जाता था। फिर इसको दान प्राप्त कर्ता या जिसको भूमि का अनुदान किया जाता था, दिया जाता था। दस्तावेज़ों को सुरक्षित रखने वाला एक अधिकारी था जो इन विस्तृत लेखे-जोखे को संभाल कर रखता था।

इस काल के शासक अधिक से अधिक भूमि कृषि योग्य बनाने के लिए उत्सुक रहते थे जिससे कि वे अतिरिक्त राजस्व प्राप्त कर सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि जो जंगल को साफ करता था एवं उस खेत पर खेती करता था वह उस भूमि पर स्वामित्व का दावा प्रस्तुत कर सकता था। व्यापार से राजस्व प्राप्त करना राजस्व की आमदनी का एक दूसरा बड़ा स्रोत था। व्यापार के प्रसार के विषय में हम विस्तृत रूप से दूसरी इकाई में विवरण करेंगे। अधिकतम व्यापार पर नियंत्रण श्रेणियों का था जो बैंक का भी कार्य करती थी। व्यापार को प्रोत्साहित करने के

लिए राज्य विशेष कदम उठाता था। दूरस्थ व्यापार मार्गों को सुरक्षित बनाया गया था और उनके किनारे आराम गृहों का निर्माण भी किया गया।

15.9 समाज

दक्कन में सातवाहन शासकों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था की बहुत सी विशेषतायें उनसे भिन्न थीं जिनका विवरण संस्कृत ग्रंथों जैसे कि *मनुस्मृति* में हुआ है। उदाहरणार्थ, सातवाहन शासकों के बहुत से शिलालेखों में पिता के नाम के स्थान पर माता के नाम का उल्लेख हुआ है, जैसे कि गौतमीपुत्र सतकर्णी (सतकर्णी गौतमी का पुत्र)। यह *धर्मशास्त्रों* की उस परम्परा के साथ मेल नहीं खाता जिसके अनुसार मान्यता प्राप्त विवाह के बाद पत्नी के पिता का गोत्र लुप्त हो जाता है और वह पति के गोत्र को धारण करती है।

इन शिलालेखों में एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सातवाहन स्वयं को ऐसे अनोखे *ब्राह्मणों* के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने *क्षत्रियों* के अभियान को कुचल दिया। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार केवल क्षत्रियों को ही शासन करने का अधिकार था। ये शिलालेख इसलिए भी उपयोगी हैं कि आबादी के विभिन्न वर्गों द्वारा दिये गये भू-दान के प्रमाण इनमें उल्लेखित हैं जिससे कि समाज के कुछ विशेष वर्गों की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। दान करने वालों में व्यापारियों एवं सौदागरों का मुख्य रूप से संदर्भ आया है, परन्तु लुहारों, मालियों एवं मछुआरों के नामों का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। इनमें कोई संदेह नहीं कि इन कारीगरों एवं दस्तकारों को निश्चित रूप से दूरस्थ व्यापार से लाभ हुआ था। पर विशेष उल्लेखनीय यह है कि इन लोगों ने अपने नामों के साथ अपने व्यवसायों का उल्लेख किया है न कि अपनी जाति का। हमने पहले की इकाई में उद्धृत किया था कि बौद्ध ग्रंथों में समाज के विभाजन का विवरण ब्राह्मणिक ग्रंथों के विवरण से भिन्न है। यहाँ पर भिन्नता कार्य एवं दस्तकारिता पर आधारित थी और अधिकतर लोगों को उनके व्यवसाय के आधार पर जाना जाता था न कि जाति के आधार पर।

दान कर्ताओं की एक और श्रेणी थी जिनको यवनों के नाम से या विदेशियों के रूप में जाना जाता है। यवन शब्द का प्रयोग अपने मूल शब्द में आयोनियन यूनानियों से किया जाता था किन्तु प्रथम सदी सी.ई. के आसपास इस शब्द का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के विदेशियों के लिये किया जाने लगा। बहुत से यवनों ने प्राकृत नामों को धारण किया और बौद्ध भिक्षुओं को दान दिये। महिलायें स्वतंत्र रूप से अपने आप या अपने पतियों या बेटों के साथ उपहार देती थीं। सातवाहन रानियों में से नयनिका नाम की एक रानी ने वैदिक बलि अनुष्ठानों का आयोजन किया और ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को उपहार दान दिये।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि दक्कन में समाज का संचालन जैसा कि इस काल के प्रमाणों से भी जाना जाता है, ब्राह्मणिक ग्रंथों में दिये गये नियमों के अनुसार नहीं होता था। इस प्रकार प्राचीन सामाजिक संरचना का पुनर्निर्धारण करते समय ग्रंथों के संदर्भों का हमें ध्यानपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए तथा उनके तथ्यों की तुलना अन्य दूसरे स्रोतों जैसे कि शिलालेखों एवं पुरातात्विक तथ्यों के साथ करनी चाहिए।

जिन बौद्ध मठों का विवरण इस काल के स्रोतों में हुआ है इससे स्पष्ट है कि उनके व्यवहार एवं जीवन में बुद्ध के समय से काफी परिवर्तन हो चुका था। प्रारंभ में बौद्ध भिक्षुओं को कुछ ही व्यक्तिगत सामान रखने का अधिकार था। ये सामान कुछ ढीले-ढाले वस्त्रों एवं भिक्षा के पात्रों तक सीमित थे। परन्तु धीरे-धीरे बौद्ध *संघ* की सदस्यता का प्रभाव बढ़ता गया। हम देख चुके हैं कि सातवाहन राजाओं ने काफी बड़ी मात्रा में बौद्ध भिक्षुओं को धन एवं भूमि दान दिये। जिसके कारण *संघ* की सम्पत्ति में और वृद्धि हुई। इस काल के हमें कुछ ऐसे विवरण भी प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों ने स्वयं भी दान दिये।

15.10 दक्षिण भारत (*तमिलाहम्*) : क्षेत्र विशेष

प्राचीन *तमिलाहम्* के बंदरगाह। स्रोत : http://www2.demis.nl/mapserver/mapper.asp। श्रेय : लोटलिस फोटो। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ancient_tamilakam_ports.png)।

वेंकटम पहाड़ियों और कन्याकुमारी के बीच के भू-क्षेत्र को *तमिलाहम्* यानी तमिल क्षेत्र कहते हैं। इसके अंतर्गत सम्पूर्ण आधुनिक तमिलनाडु और केरल आ जाते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक पारिस्थितिकीय तथा जलवायु पाई जाती है। यहाँ वनों के आच्छादित पहाड़ियाँ, हरे मैदान, चरागाह, शुष्क प्रदेश, नम भूमि और लम्बे समुद्री तट भी हैं। तीन प्रमुख मुखियातंत्रों चेर, चोल और पांड्यों का भीतरी भू-भाग के साथ-साथ समुद्र तट पर भी नियंत्रण था। चेरों का भीतरी भू-भाग में करूर में भी पश्चिमी तट पर स्थित प्रसिद्ध प्राचीन बंदरगाह मुचरिस पर अधिकार था। भीतरी भू-क्षेत्र में उराईजूर पर और कोरोमंडल तट में पुहार पर चोलों का आधिपत्य था। इसी प्रकार पांड्यों का भू-क्षेत्रीय मुख्यालय मदुरई और तटीय मुख्यालय कोरकर था। ये इस क्षेत्र के प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे।

15.11 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका

प्राचीन तमिल काव्य में प्रदेश की प्राकृतिक विभिन्नता का सुंदर समन्वय हुआ है। यह आईनतिनै या पाँच विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों की अवधारणा के रूप में व्यक्त हुआ है। *तमिलाहम्* को पाँच *तिनैं* का समुच्चय बताया गया है, यह पाँच *तिनैं* हैं *कुरिंजि* (पहाड़ी वन क्षेत्र), *पालै* (शुष्क प्रदेश), *मुल्लै* (चारागाह क्षेत्र), *मरूतम* (नम भूमि) और *नेयतल* (समुद्र तट)।

कुछ प्रदेश ऐसे भी थे जहाँ एक से अधिक तिनैगल का अस्तित्व था। पर आमतौर पर अधिकांश तिनैंगल चारों तरफ बिखरे पड़े थे। भौगोलिक स्थितियों के कारण प्रत्येक *तिनैं* में मनुष्य के जीवनयापन का तरीका अलग-अलग था। सामाजिक समूह भी अलग-अलग थे। *कुरिंजि* प्रदेश में रहने वाले लोग शिकार और फल-फूल इकट्ठा कर अपनी जिंदगी बसर करते थे। *पालै* की सूखी भूमि के कारण, वहाँ के लोग कुछ उपजा नहीं सकते, अतः यहाँ के लोग जानवरों को चुराकर और लोगों को लूटकर अपना भरण-पोषण करते थे। *मुल्लै* के लोग पशुपालन और झूम खेती करते थे। *मरूतम* में हल से खेती की जाती थी और *नेयतल* में मछली मारना और नमक बनाना जीवनयापन का मुख्य साधन था। इस प्रकार *तमिलाहम्* के पाँच तिनैगल में भौगोलिक प्रभावों के कारण जीवन यापन के भिन्न-भिन्न तरीके अपनाये जाते थे। एक *तिनैं* के लोग दूसरे तिनैगल के लोगों से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते थे। जैसे

पहाड़ियों में रहने वाले लोग मैदानी इलाके में अपने वन्य उत्पादों जैसे शहद, मांस, फल आदि के साथ आते थे। तटीय प्रदेश में रहने वाले लोग उनके इन पदार्थों के बदले मछली और नमक की आपूर्ति करते थे। कृषि प्रदेश सभी को आकर्षित करते थे। छोटे आत्मनिर्भर तिनैगल का इस प्रकार के आदान-प्रदान और आपसी निर्भरता से अपेक्षाकृत बड़े पारिस्थितिकी में विकास हुआ। इनमें से कुछ प्रदेशों में उत्पादन की दृष्टि से स्थिति अनुकूल थी और कुछ प्रदेशों में प्रतिकूल। बेहतर उत्पादन वाले इलाके में अपेक्षाकृत विकसित सामाजिक श्रम विभाजन अस्तित्व में था। कम उत्पादन वाले इलाके में सामाजिक संरचना सरल थी और वह कुल से मिलकर बनी थी। कुल मिलाकर *तमिलाहम्* असमान रूप से विकसित तत्वों से मिलकर बने एक जटिल समाज का प्रतिनिधित्व करता था जिनकी सांस्कृतिक विरासत एक समान थी। इस समाज में कई प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ थीं, जिनमें कुल पर आधारित सरल मुखियातंत्र से लेकर राजघरानों द्वारा शासित जटिल मुखियातंत्र का अस्तित्व था। पूर्णविकसित राज्य का निर्माण होना अभी बाकी था।

15.12 राजनीतिक समाज का उद्‌भव

विभिन्न कुलों के मुखियातंत्र से राजनीतिक समाज का उद्‌भव माना जा सकता है। कुलों का यह मुखियातंत्र बड़ा भी होता था और छोटा भी। कविताओं में कुल मुखियातंत्र के मुखियाओं को श्रेष्ठ (पेरु-मकन) या मुखिया पुत्र (को-मकन) कहा गया है, इससे कुल के सदस्यों और मुखिया के बीच संबंध का भी पता चलता है। वस्तुतः इससे नातेदारी के आधार का पता चलता है। इसमें से कुछ मुखियातंत्रों ने दूसरे कुलों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने कुल में मिलाकर, रक्त संबंधीय आधार पर अतिक्रमण भी किया होगा। अपेक्षाकृत जटिल प्रकृति के बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण आक्रमणों और दूसरों के इलाकों पर कब्जा जमा कर ही हुआ है। मुखियाओं की वैवाहिक संधियों के कारण भी बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण हुआ, पर मुखियातंत्रों के विकास का मुख्य आधार उनकी सम्पत्ति थी। जिनके पास अधिक खेतिहर इलाके थे, वे मुखियातंत्र अधिक शक्तिशाली थे। समकालीन तमिल क्षेत्र में इस प्रकार के मुखियातंत्रों में चेर, चोल और पांड्य सर्वप्रमुख थे। ये मुखियातंत्र राज्य के उद्‌भव के पूर्व के चरण का प्रतिनिधित्व करते थे।

15.12.1 विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र

तमिल क्षेत्र में तीन प्रकार के मुखियातंत्र थे। इन्हें किलार (छोटे मुखिया), *वेलीर* (बड़े मुख्यिा) और वैडर (सबसे बड़े मुखिया) कोटि में विभक्त किया जाता था। किलार छोटे गाँवों (उर) के मुखिया होते थे, जहाँ रक्त संबंध का आधिपत्य था। काव्यों में कई किलारों का उल्लेख किया गया है। उनके आगे उनके अपने गाँव का नाम जुड़ा होता था जैसे उरूटूंर-किलार या उरंटूर किलार। इनमें से कुछ प्रदेशों को बड़े मुखियातंत्रों ने हड़प लिया था और उन्हें बड़े मुखियातंत्रों के अभियान में साथ देना पड़ता था। काव्य में इस बात का उल्लेख है कि किलारों को बड़े मुखियातंत्रों जैसे चेर, चोल और पांड्य के सैनिक अभियानों में विदुतोलिल (अनिवार्य सेवा) करनी पड़ती थी। इसके बदले में बड़े मुखियातंत्र किलारों को बतौर इनाम कुछ पराजित गाँवों का नियंत्रण सौंप देते थे। *वेलीर* मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र पर नियंत्रण रखते थे, पर इनमें से कुछ मैदानी इलाकों में भी जमे हुए थे। पहाड़ियों पर स्थित मुखियातंत्रों के मुखिया मुख्यतः शिकारी प्रमुख होते थे, जिसे वैडर कोमान या कुरवर-कोमान या नेडु वेट्टुवन के नाम से जाना जाता था। वेडर-कुरवर और वेट्टुवर पहाड़ी इलाके के प्रमुख कुल थे, जिसमें *वेलीर* का वर्चस्व था। इस काल के मुखियातंत्रों के प्रमुख केंद्र **वैंकटमलै** (वैंकटम की पहाड़ियाँ), **नांजिलमलै** (त्रावणकोर की दक्षिणी पहाड़ी), **परमपुरलाई** (संभवतः पोल्लाच्ची के समीप आधुनिक परम्पिकुल्लभ आरक्षित वन), **पोट्टिलमलै** (महुरै जिले की पहाड़ियाँ) आदि थे। बड़े मुखिया तंत्रों की श्रेणी में चेर, चोल और पांड्य प्रमुख राजघराने थे। इन्हें *मूवेंदर* के नाम से जाना

जाता था। इन राजघरानों का बड़े हिस्सों पर नियंत्रण था। चेरों का नियंत्रण पश्चिमी घाट में स्थित कुरिंजों पर था। चोलों का कावेरी क्षेत्र पर और पांड्यों का दक्षिण-मध्य समुद्री इलाके पर नियंत्रण था। उनके अधीन कई छोटे-छोटे सरदार थे, जो नजराना (*तियरइ*) पेश किया करते थे। उस समय तक राज्य क्षेत्र का कोई निश्चित सीमा-निर्धारण नहीं हो सकता था। इस युग में राजनीतिक अधिकार का कार्यान्वयन जनता के माध्यम से होता था न कि मूलभूत स्रोतों पर अधिकार जमाकर। जैसे कि कुरवर या वेतर या वेंट्टुवर जैसे लोगों पर नियंत्रण स्थापित कर ही कोई मुखिया सरदार बन पाता था। इन लोगों का सामूहिक तौर पर पहाड़ी या मैदानी इलाकों पर अधिकार होता था। मुखिया या सरदार सगोत्रता पर आधारित समाज से ही अधिकार प्राप्त करता था। विभिन्न स्रोतों पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता था, यह उनका वंशानुगत अधिकार होता था। यह वंशपरम्परा पर आधारित समुदाय था और वे स्वेच्छा से अपने मुखिया को नजराना देते थे। नियमित और निश्चित समय पर करों का भुगतान करना प्रचलन में नहीं था। फिर प्रमुख मुखिया की शक्ति अपने क्षेत्र की उत्पादकता और उपजाउपन पर आधारित होती थी। पशुपालक या शिकारी समुदाय के सरदार की शक्ति खेतिहर इलाके के सरदार से कम होती थी। शक्तिशाली सरदार कमज़ोर सरदार के इलाकों पर कब्जा जमा लेते थे और उनसे नजराना वसूल करते थे। इस काल में लूटमार का धन इकट्ठा करना एक आम प्रचलन था।

15.12.2 लूटमार और लूट के माल का बंटवारा

अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े और छोटे सरदार अक्सर लूटमार किया करते थे। ये सरदार अपने सगोत्रों के अलावा लूट के माल का हिस्सा सैनिकों, भाटों और चिकित्सकों को भी दिया करते थे। *कोडै* संस्था (उपहार प्रदान करने की संस्था) लूट के माल के पुनर्वितरण की प्रथा का एक अंतरिम हिस्सा थी। उपहार प्रदान करना किसी भी सरदार का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व माना जाता था। पुरनानूरू (एट्टुत्तोगै) की परम्परा में संकलित एक काव्य की अधिकांश कविताओं में सरदार की उदारता की प्रशंसा की गयी हैं। इन कविताओं के अनुसार बहादुरी और उदारता को सरदारों का प्रमुख गुण माना जाता था। स्थानीय स्रोतों के अभाव में लूटमार आय का प्रमुख स्रोत बन जाता था। पुरनानूरू में संकलित एक काव्य में ऊर्तूरकिजार नाम के सरदार का उल्लेख है, जिसके पास आय के स्रोत काफी कम थे। जब भी कोई व्यक्ति उससे उपहार मांगने जाता था, तो वह अपने लोहार को बुलाकर नया बल्लम बनाने का आदेश देता था ताकि वह लूटमार करके धन एकत्र कर उसे उपहार के तौर पर अपने आश्रितों को दे सके। इस प्रकार लूटमार और प्राप्त माल का पुनर्वितरण उस समय की राजनीतिक व्यवस्था का एक अंग बन चुका था। सरदार एक दूसरे को लूटा करते थे। लूटमार के अभियान में छोटे सरदार बड़े सरदारों का साथ देते थे और लूट के माल के समय इनकी नजर ज्यादातर पशुधन और अनाज पर होती थी। इस काल के भाटों ने अपने गायन में हाथी, घोड़े, *स्वर्ण* कमल, रथ, हीरे-जवाहरात और मलमल के कपड़े आदि उपहारों की चर्चा की है। कभी-कभी बड़े सरदार अपने आक्रमण के दौरान दूसरे सरदारों के भू-क्षेत्र पर भी अधिकार कर लेते थे। इन अधिकृत भू-क्षेत्रों को बड़े सरदार अपने सहायक छोटे सरदारों के बीच बाँट दिया करते थे। यह स्मरणीय है कि गाँव की भूमि नहीं बल्कि लोगों पर स्थापित नियंत्रण को दान किया जाता था।

15.12.3 *मूवेंदर* और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर

प्रधान शासक समुदाय के रूप में *मूवेंदर* की पुरातनता मौर्यकाल तक जाती है। अशोक की राजविज्ञप्तियों/फरमानों में उनका जिक्र मिलता है। भाट *मूवेंदर* की स्तुति एक ''राजा'' के रूप में करते हैं, और उनके अनुसार *मूवेंदर* का अधिकार पूरे तमिल क्षेत्र पर था। पर ''राजा'' के उल्लेख का यह मतलब नहीं है राज्य की स्थापना हो चुकी थी। एक राज्य के निर्माण के

लिए स्थायी सेना, नियमित कर व्यवस्था, नौकरशाही और स्थानीय प्रशासनिक निकायों का होना अनिवार्य है। अभी तक इनकी उत्पत्ति नहीं हो सकी थी। इसके बावजूद *मूवेंदर* अन्य सरदारों से बिल्कुल भिन्न था। लगातार छोटे सरदारों को अपने अधीन लाने का प्रयत्न करते रहे। तीनों शासक समुदाय – चेर, चोल और पांड्य का एक ही प्रमुख मकसद था, *वेलीर* (बड़े सरदारों) को अपने अधीन करना। *वेलीर* सरदार की परम्परा भी काफी प्राचीन थी। अशोक के फरमान में चेर, चोल और पांड्यों के साथ-साथ सत्यपुत्रों या अडैगैमान सरदारों का भी उल्लेख हुआ है। सत्यपुत्र *वेलीर* सरदारों की श्रेणी में आते थे। उनका ऊपरी कावेरी की पहाड़ियों पर स्थित लोगों पर नियंत्रण था। अन्य *वेलीर* सरदारों का अधिकार क्षेत्र *मूवेंदर* की सीमा से लगी हुई ऊँची भूमि और समुद्री तट तक फैला हुआ था। *वेलीर* सरदारों के नियंत्रण में पहाड़ी और मैदानी इलाके थे, इनमें प्रमुख हैं : धर्मपुरी, नीलगिरि, मदुरई, उत्तरी आर्कोट, त्रिचिनापल्ली, पुदुकोट्इ आदि आधुनिक जिले। तमिल क्षेत्र में लगभग पन्द्रह महत्त्वपूर्ण *वेलीर* मुखियातंत्र अस्तित्व में थे। इनमें से कुछ वेलीरों का नियंत्रण व्यापारिक स्थल, बंदरगाह पहाड़ियों के मुहाने और पहाड़ी बस्तियों जैसे महत्त्वपूर्ण केंद्रों में रहने वाले लोगों पर था। स्थान और स्रोतों से उनकी शक्ति का निर्धारण होता था। भारतीय-यूनानी व्यापार की शुरुआत होने के बाद महत्त्वपूर्ण स्थानों और व्यापारिक माल पर नियंत्रण से सरदारों का महत्त्व बढ़ गया। कविताओं में परंबुमैल के पारी के पराम्बुमलाई (पोल्लाची के समीप) पोड़िइलमलाई के अरियार (मदुरई), नंजीमलाई आंदीरन (श्रावणकोर के दक्षिण), कोडुम्बै के इरून्को-वेल (पदुक्कोट्टइ) आदि प्रमुख *वेलीर* सरदारों का जिक्र किया गया है। ऐसे सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों के *वेलीर* सरदारों को बार-बार *मूवेंदर* जैसे बड़े सरदारों का आक्रमण झेलना पड़ता था। इस भाग-दौड़ में कभी-कभी कमज़ोर सरदारों का विनाश भी हो जाता था। भूवेंदर द्वारा परंबुनाडु के *वेलीर* सरदार की सारी रियासत का नाश इसी प्रकार का उदाहरण है। युद्ध के अतिरिक्त विवाह के माध्यम से भी बड़े सरदार *वेलीर* रियासत तक पहुँचने की कोशिश करते थे। चेर, चोल और पांड्यों द्वारा वेलीरो की लडक़ी से शादी करने के कई उदाहरण मिलते हैं; सामरिक महत्त्व के क्षेत्र के सरदार पर बड़े सरदार सैन्य नियंत्रण रखते थे। उनका दमन करके बड़े सरदार उन्हें अपने अधीन कर लेते थे। *मूवेंदर* के नियंत्रण में ऐसे कई पराधीन सरदार थे, जो लूटमार के अभियान में उनका साथ देते थे।

यह स्पष्ट है कि समकालीन तमिल क्षेत्र में *मूवेंदर* सर्वशक्तिमान राजनीतिक सत्ता थी। इसके बाद *वेलीर* का स्थान आता था। जबकि किलार के ग्रामीण सरदार राजनीतिक शक्ति का प्राथमिक स्तर थे। इन्हें देखकर एक राजनीतिक पदानुक्रम का आभास होता है पर राजनीतिक शक्ति के इन तीन स्तरों को सूत्रबद्ध करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण की कोई कड़ी नहीं बन पाई थी। *मूवेंदर* द्वारा युद्ध और विवाह के माध्यम से छोटे सरदारों को अपने अधीन करने की प्रक्रिया जारी रही, पर अभी भी एक एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था का अभाव था। सगोत्रीय आधार पर संगठित कुलों पर परम्परागत अधिकार ही इस काल के राजनीतिक नियंत्रण का आधार था। परम्परागत ज्येष्ठ लोगों की सभा प्रतिदिन के सभी कार्यकलापों को संपादित करती थी। सभी स्थल को *मन्रम* कहा जाता था। अर्थात् किसी पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा इसे *पोदियिल* भी कहते थें। सरदार की सहायता के लिए ज्येष्ठों की एक सभा होती थी, जिसे *अवै* (सभा) कहा जाता था, इसकी संरचना बनावट और कार्य का अभी तक पूर्ण ब्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है। आरंभिक तमिल राजनीतिक व्यवस्था के दो और निकायों की प्रायः चर्चा की जाती है, इसे **ऐप्पेरूम कुजु** या पाँच बड़े समूह और **एणपेरायम** या आठ बड़े समूहों के नाम से जाना जाता है। संभवतः इन निकायों का विकास तृतीय शताब्दी सी. ई. के आसपास हुआ था, यह काफी बाद की गतिविधि है। इन निकायों की संरचना और कार्यों का भी कुछ निश्चित पता नहीं चला है।

बोध प्रश्न 4

1) सातवाहन काल के दौरान समाज की कुछ विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) इस काल में अंतर्देशीय व्यापारिक मार्गों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाएँ।

i) *तमिलाहम्* (तमिल क्षेत्र) के सरदार तंत्र नियमित कराधान पर आधारित थे। ( )

ii) इस काल की राजनीतिक सत्ता आर्थिक स्रोतों के नहीं बल्कि लोगों के नियंत्रण पर आधारित थी। ( )

iii) *मूवेंदर* पूर्ण रूप से विकसित राज्य था। ( )

iv) उपहार प्रदान करना सरदार का प्राथमिक सामाजिक कर्तव्य था। ( )

4) विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र किस प्रकार सहअस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान-प्रदान होता था?

....

....

....

....

....

15.13 सारांश

दक्कन के इतिहास में सातवाहन काल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि प्रायद्वीप भारत में प्रथम बार पहली सदी बी.सी.ई. में प्रारंभिक राज्य अस्तित्व में आया। राज्य का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षाकृत सरल था। सामुद्रिक एवं देश के अन्दर व्यापार का प्रसार इस काल के इतिहास

का निर्णायक कारक था। इसके कारण शासकों के राजस्व में अतिरिक्त आमदनी का समावेश हुआ और बहुत से व्यावसायिक समूहों में इसके कारण संपन्नता भी बढ़ी। इन सबका परिणाम यह भी हुआ कि संपूर्ण दक्कन प्रायद्वीप में इस काल में बहुत से नगरों एवं शहरों का विकास हुआ।

इस इकाई में आपने तमिल क्षेत्र की विभिन्न पारिस्थितिकी इकाइयों की जानकारी प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वहाँ जीवनयापन के विभिन्न तरीकों और सरदार तंत्र स्तर के राजनीतिक स्वरूप से परिचित होने का भी आपको अवसर मिला। आप इस बात से भी अवगत हुए कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था में लूटमार और लूटमार के माल के वितरण का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त आपको यह भी जानकारी मिली कि इस काल की राजनीतिक सत्ता का आधार कुल संबंध व रक्त संबंध था। तृतीय शताब्दी सी.ई. के बाद राजनीतिक संगठन के सतत् विकास की प्रक्रिया से भी आप अवगत हो गये होंगे।

15.14 शब्दावली

किल्लार : मुखिया या सरदार का सबसे छोटा तबका जिसका अपने कुल पर सीधा अधिकार होता था।

तिनै : एक विशिष्ट पारिस्थितिकी जलवायु क्षेत्र जिसमें सामाजिक समूहों और जीवनयापन के तरीके मौजूद हों।

भाट : राजस्तुति करने वाले कवि।

मन्रम/पोतियन : पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा।

पदानुक्रम : पद के अनुसार, इकाई में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के (hierarchy) के लिए किया गया है।

भौगोलिक क्षेत्र या इकाई : एक विशिष्ट पारिस्थितिकी विशेषताओं जैसे, पर्यावरण, मिट्टी के प्रकार, उर्वरता आदि से युक्त प्रदेश।

मुखियातंत्र : वंशानुक्रम पर आधारित एक समाज जिसमें एक मुखिया अपने लोगों से उनकी स्वेच्छा से नजराना प्राप्त करना था।

मूवेंदर : तीन प्रमुख शासकीय समूह, जैसे चेर, चोल और पांड्य।

वेलीर : प्रधान समूहों के ठीक बाद के प्रमुख या अपेक्षाकृत बड़े सरदार।

वेंदर : प्रधान समूह या सबसे बड़े सरदार।

15.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए भाग 15.9।
2) देखिए उपभाग 5.7.1 और 15.7.2।
3) (i) × (ii) ✓ (iii) × (iv) ✓
4) देखिए उपभाग 15.12.3।

15.16 संदर्भ ग्रंथ

चंपकलक्ष्मी, आर. (1996). *ट्रेड, आईडियोलॉजी एँड अर्बनाईजेशन : साउथ इंडिया 300 बी.सी. से 300. ऐ.डी. तक.* दिल्ली।

गुरुकल, राजन एण्ड राघव वरियर, एम. आर. (ऐड) (2000). *कल्चरल हिस्ट्री ऑफ केरल,* वॉल्यूम-1. तिरूवंथपुरम।

कैलासपथी, के. (1972). *तमिल हैरोइक पोएट्री.* ऑक्सफोर्ड।

महालिंगम, टी. वी. (1970). *रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशनस इन द लोयर कावेरी वैली.* मद्रास।

सुब्रहामण्यम्, एन (1980). *संगम पॉलिटी : द एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशियल लाईफ ऑफ द संगम तमिल्स.* रिप्रिंट, बॉम्बे।

इकाई 16 कृषक बस्तियाँ, कृषक समाज, व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार – प्रायद्वीपीय भारत*

इकाई की रूपरेखा

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-7 से ली गई है।

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य लगभग 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. तक दक्कन और दक्षिण भारत में कृषक बस्तियों के प्रसार के बारे में चर्चा करना है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- जीविका के उन विभिन्न प्रकारों के बारे में जो दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न भागों में विद्यमान थे;
- कृषक बस्तियों के प्रसार के स्वरूप;
- भूमि के स्वामित्व के स्वरूप;
- कृषि से राजस्व आय और कृषक बस्तियों में संसाधनों के पुनः वितरण;
- कृषक समाज के संगठन; और
- नए तत्वों के लागू होने तथा परिवर्तन शुरू होने के बारे में जान सकेंगे।

इस इकाई का उद्देश्य उपरोक्त अवधि के दौरान दक्षिण भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के विभिन्न आयामों पर संक्षेप में चर्चा करना भी है। इस इकाई में हम सातवाहन राज्य और चेरों, चोलों तथा पांड्यों के तथा कम महत्वपूर्ण सामंतों के अधीन सुदूर दक्षिण के क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- विनिमय का स्वरूप जिससे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न स्तरों पर व्यापार का स्वरूप निर्धारित हुआ;
- परिवहन और संचार सुविधाओं;
- व्यापार में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के;
- व्यापार में राजनीतिक प्राधिकारियों के हितों;
- दक्षिण भारत में शहरी केन्द्रों; और
- प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज पर व्यापार और शहरीकरण के प्रभाव के बारे में भी जान सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

प्रायद्वीपीय भारत में खेती के सबसे पुराने साक्ष्य नवपाषाण युग के उत्तरार्ध में पाए जाते हैं जो दूसरी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में दिनांकित हैं। नवपाषाण युग के लोग मोटा अनाज (मिलेट) जैसे रागी और बाजरा तथा दलहन जैसे काला चना और पशुओं के खाने वाले चने की खेती करते थे। नवपाषाण युग की बस्तियों की मुख्य विशेषता यह थी कि पहाड़ियों की ढलान पर सीढ़ीदार खेतों पर ही खेती की जाती थी। प्रायद्वीपीय भारत में प्रथम सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के लगभग चावल पाए गए थे जो दक्षिण में लौह युग के आरंभ होने की अवधि है। दक्कन और दक्षिण भारत में लौह युग के दौरान धान की खेती का प्रसार हुआ। ऊपरी क्षेत्रों में लौह युग के प्रारंभ की बस्तियां देखी गई हैं। लोहे के प्रयोग से खेती की तकनीकी में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं हुआ। बाद में लोहे के हल-फाल के प्रयोग से तकनीकी प्रगति हुई।

इस के साथ ही नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण भी हुआ। जुताई में बैलों को काम में लाने और लोहे के हल-फाल के प्रयोग के विस्तार से खेती अधिक इलाके में होने लगी और खेती की उपज में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इस वृद्धि के अनुसार जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। बाद में बौद्ध मठों और ब्राह्मणों जैसे धार्मिक लाभभोगियों को गांवों की भूमि दान देने की प्रथा शुरू होने से कृषक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। उन्हें मौसम की बेहतर जानकारी थी और वे मौसम के बारे में पूर्व-अनुमान भी कर सकते थे। बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भूमि देने के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में गैर-कृषक वर्ग का प्रवेश शुरू हुआ। इस प्रकार हमें दक्षिण भारत में कृषक बस्तियों के प्रसार में तीन अवस्थाओं का पता चलता है:

- **पहली अवस्था** : निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी के साथ अपरिष्कृत खेती की प्रथम अवस्था जिसमें खेती केवल पहाड़ी ढलानों तक सीमित थी।
- **दूसरी अवस्था** : प्रौद्योगिकी में पर्याप्त वृद्धि के साथ हल द्वारा खेती और नदी घाटियों में खेती का विस्तार।
- **तीसरी अवस्था** : इसमें गैर-कृषक वर्ग का कृषि क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इन वर्गों को मौसम, प्रबंधकीय क्षमता और खेती के तरीकों में उपकरणों का बेहतर ज्ञान था।

16.2 आजीविका के प्रकार

आजीविका के प्रकारों का निर्धारण कई कारकों द्वारा किया जाता है। जैसे क्षेत्र विशेष की भौगोलिक अवस्थिति, क्षेत्र की प्राकृतिक अवस्था, भौतिक संस्कृति और प्रौद्योगिकी का स्तर। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में अपरिष्कृत तकनीक काफी समय तक चलती रही, परन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों ने सामग्री उत्पादन और सामाजिक विकास में प्रगति की। तमिल क्षेत्र में आजीविका के प्रकारों में विविधताएं अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। आप अगली इकाई में पढ़ेंगे कि प्रारंभिक तमिल *संगम* कविताओं में *तिणई* (tinai) के रूप में पांच आर्थिक प्रदेशों का उल्लेख है और प्रत्येक आर्थिक प्रदेश की आजीविका का स्वरूप बिल्कुल अलग है। ये निम्नलिखित हैं:

- **कुरिंजी (*kurinji*)** – पहाड़ और वन;
- **मुल्लै (*mullai*)** – चारागाह जिनमें कम ऊँची पहाड़ियां और छितरे वन थे;
- **मरूतम (*marutam*)** – उपजाऊ कृषि मैदान;
- **नेयतल (*neytal*)** – समुद्री तट; और
- **पालै (*palai*)** – शुष्क क्षेत्र।

कुरिंजी क्षेत्र में वन जन-जातियां थीं जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से जाना जाता था, जैसे *कुरवर (kuravar), वेट्टर (vettar)* आदि। उनका मुख्य व्यवसाय आखेट और वन उत्पादों जैसे बांस, चावल, शहद और कंद-मूल एकत्रित करना था। वे पहाड़ी ढलानों पर ''काटना और जलाना'' विधि से खेती करते थे और ज्वार, बाजरा तथा दलहन पैदा करते थे। वे विभिन्न प्रकार के औज़ारों जैसे फावड़ा, दराती और लौहे की नोकयुक्त कुदाल का प्रयोग करते थे। ऐसे पहाड़ी इलाके वे थे जहां मिर्च तथा मसालों की अन्य प्रजातियां काफी मात्रा में पैदा होती थीं। साहित्य में मिर्च की खेती और बागानों में सिंचाई सुविधाओं का वर्णन मिलता है।

मुल्लै (mullai) के चारागाहों पर ग्वालों का अधिकार था जो इटैयर/इडैयर *(itayar/ idaiyar)* के नाम से जाने जाते थे। उनकी आजीविका का साधन पशुपालन था। वे दूध उत्पादों का विनियम करते थे। झूम कृषि भी करते थे और मोटे अनाज तथा दलहन एवं मसूर पैदा करते थे।

मरूतम (कृषक क्षेत्र) अधिकतर उपजाऊ नदी घाटियों में थे जो धान और गन्ने की खेती के लिए उपर्युक्त क्षेत्र थे। वे लोग जो *उषवर (ushavar)* कहलाते थे, जिसका अर्थ हलवाहा है, खेतों की जुताई में संलग्न थे और अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में धान पैदा करते थे।

अन्य तिणों के लोग चावलों और प्रमुख खाद्यान्नों के लिए *मरूतम* क्षेत्रों पर निर्भर थे।

नेयतल लोग, जो *परतवर (paratvar)* थे, मछली पकड़ने और नमक उत्पादन में संलग्न थे। वे अपनी आजीविका उपार्जन के लिए मछली और नमक का विनियम करते थे।

पल्लै क्षेत्र की ग्रीष्म ऋतु एक नियतकालिक घटना है। वहां ग्रीष्म ऋतु के दौरान पानी की दुलर्भता के कारण खेती संभव नहीं थी। इसलिए उस क्षेत्र में कुछ लोग ऐसे थे जो राहजनी, डकैती और पशुओं की चोरी करते थे। नमक के व्यापारी और अन्य वस्तुओं के व्यापारी कारवां में इस क्षेत्र से गुजरते थे। बहुधा ये कारवां *मरवर* (maravar) वर्गों के लोगों द्वारा लूटे जाते थे।

उपर्युक्त चर्चा से आजीविका के निम्नलिखित प्रकार वर्गीकृत किए जा सकते हैं:

- आखेट और वन उत्पादों का संग्रहण,
- पशुपालन,
- खेतों की जुताई,
- मछली पकड़ना और नमक बनाना,
- राहजनी।

तालिका-1 भू-आकृति विभाजन, निवासी और व्यवसाय

क्षेत्र	भौगोलिक लक्षण	निवासी	व्यवसाय
कुरिंजी	पर्वतीय और वन	आखेट और संग्रहण (*कुरवर और वेटटर*)	आखेट, भोजन संग्रहण, काटना और जलाना खेती
मुल्लै	चारागाह, कम ऊंची पहाड़ियाँ और छितरे वन	चरवाहे (*आयर और इटैयर*) (*Ayar and Itaiyar*)	पशुपालन, झूम कृषि
मरूतम	नदी घाटियां और मैदान	किसान (*उषवर* और *वेल्लालर*) (*ushavar and vellaler*)	मछली पकड़ना, मोती के लिए गोता लगाना, नमक बनाना
पल्लै	शुष्क क्षेत्र, ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ी क्षेत्रों की चारागाह भूमि का परिवर्तन	डाकू (*एयिनर, मरवर*) (*Eyinar, Maravar*)	राहजनी, डकैती और आखेट

16.3 कृषक बस्तियों का प्रसार

दक्कन और दक्षिण भारत में नवपाषाण युग से लौह युग तक जनसंख्या में वृद्धि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। यह परिवर्तन लौह युग के कई स्थानों पर दिखाई देता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप ऊपरी क्षेत्रों (Upland Areas) से उपजाऊ नदी घाटियों में बस्तियों का प्रसार हुआ और अंशतः पशुपालन से और कुछ झूम खेती से व्यवस्थित कृषि अर्थव्यवस्था अपनाई गई। इस जीवन शैली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं:

- नदी घाटियों में बस्तियों का संकेन्द्रण;
- कुछ स्तरों पर दस्तकारी विशेषज्ञता;
- लोहे के औज़ारों और उपकरणों का व्यापक प्रयोग;
- लोहे के हल-फाल की नई प्रौद्योगिकी;
- लघु सिंचाई सुविधाओं का प्रबंध; और
- शुष्क भूमि फसलों से अधिक उपज देने वाली धान की आर्द्र भूमि फसलों में परिवर्तन।

पुरातत्व संबंधी स्थलों में ये परिवर्तन सम्पूर्ण दक्षिण भारत में यत्रतत्र दिखाई देते हैं। ये आम तौर पर महापाषाणीय स्थलों के नाम से जाने जाते हैं। आप पिछली इकाइयों में से एक में महापाषाण के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। कृषक बस्तियों पर चर्चा करने से पहले हम संक्षेप में महापाषाणों के बारे में बताएंगे।

महापाषाण का शाब्दिक अर्थ ''बड़ा पत्थर'' है। इसका संबंध लोगों की वास्तविक बस्तियों से नहीं है, बल्कि कब्र के चारों ओर पत्थरों के वृत्त में कब्र के स्थान से है। कुछ आवासीय स्थानों जैसे विरूक्कमपुलियर, अलाकरै आदि में ऐसे स्थल प्रकाश में आए हैं परन्तु वे बहुत कम हैं। महापाषाण की शुरुआत लगभग 1000 बी.सी.ई. मानी जाती है। परन्तु बहुत से मामलों में इन्हें पाँचवी से पहली शताब्दी बी.सी.ई. माना जाता है। कुछ स्थानों में वे इससे भी बाद के थे। कब्र के सामान में विभिन्न वस्तुएं जैसे मानव अस्थियाँ, विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, एक विशेष प्रकार का लाल और काला भांड, आकृति बने ठीकरें, लोहे के औज़ार और हथियार, मनके तथा आभूषण, उपासना की वस्तुएं और कई अन्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इन महापाषाणयुगीन अवशेषों से हमें दक्षिण भारत में लौह युग की कृषक बस्तियों की भौतिक संस्कृति की जानकारी मिलती है। इसके अलावा, उनसे तत्कालीन तमिल कवियों द्वारा किए गए प्रमाणों की पुष्टि भी होती है।

16.3.1 तमिल क्षेत्र की बस्तियों में कृषि उत्पादन

तमिल क्षेत्र में कृषि लोहे के हल-फाल की सहायता से की जाती थी। फावड़ा, हल और दराती भी विभिन्न कृषि कार्यों के लिए प्रयोग में लाए जाते थे। लोहार को लोहे के धातुकर्म का ज्ञान था और कुछ स्थानों पर लोहा पिघलाने के लिए प्रयुक्त भट्टियां भी थीं। ऐसे स्थानों से लौहचूर्ण भी प्राप्त हुआ है। गहरी जुताई के लिए लोहे के नोक वाला हल आवश्यक है। धान और गन्ने के लिए गहरी जुताई आवश्यक है। हल के उपयोग के बारे में साहित्य और शिलालेखों में प्रमाण मिलते हैं। *तमिलाहम्* गुफ़ा शिलालेखों में हल-फाल के व्यापारी को दाता के रूप में चित्रित किया गया है। बैलों और भैसों को हल जोतने के काम में लाया जाता था। ताकतवर पशुओं को खेतों की जुताई पर लगाने से कृषि कार्यों में अधिक कार्य-कुशलता आई।

सिंचाई-सुविधाएं कभी स्थानीय किसानों द्वारा और कभी राजाओं तथा सामंतों द्वारा जुटाई जाती थीं। नदी के पानी को छोटी नालियों से खेतों में ले जाया जाता था। *तमिलाहम्* में कावेरीपट्टनम के समीप प्राचीन जलाशयों के अवशेष पाए गए हैं। उस क्षेत्र में कम वर्षा के कारण सिंचाई महत्वपूर्ण थी। उपजाऊ *मरूथम* में धान और गन्ना दो प्रमुख फसलें थीं। दलहनों की भी खेती होती थी। उस समय के साहित्य से पता चलता है कि लोगों को मौसम की कुछ जानकारी थी जो खेती की सफलता के लिए आवश्यक है।

उषवर *(Ushavar)* और *वेल्लालर* (*Vellaler*) प्रमुख किसान थे। *उषवर* का शाब्दिक अर्थ 'हलवाहा' है और *वेल्लालर* का अर्थ 'भूमि का मालिक' है। कृषि के लिए श्रमिकों का एक स्रोत

हलवाहों का वर्ग है। *अटियोर* (*Atiyor*) और *विनैवलार* (*Vinaivalar*) का उल्लेख खेतों में काम करने वाले व्यक्तियों के रूप में किया गया है।

अटियोर का अर्थ संभवतः गुलाम है और *विनैवलार* का अर्थ मजदूरी करने वाला कामगार। इनके मज़दूरी की दर ओर दूसरी शर्तों के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। बड़े परिवारों के सदस्य कृषि उत्पादन के विभिन्न कार्यों में लगे हुए पाए गए हैं। केवल परिवार के श्रम के आधार पर उत्पादन आवश्यकता से अधिक नहीं हो पाता था। फिर भी इस कठिनाई के बावजूद कृषि बस्तियों में भिन्न-भिन्न वर्ग बने रहे जैसे लोहार, बढ़ई, भाट, नृतक, जादूगर, पुजारी, भिक्षु आदि।

16.3.2 दक्कन में बस्तियां

सातवाहन काल (लगभग पहली सदी बी.सी.ई. से तीसरी सदी सी.ई) के दौरान नदी के मैदानों, समुद्र तटों और पठारी भाग के दक्कन में बस्तियों की संख्या में समग्र वृद्धि हुई। गोदावरी घाटी में सबसे अधिक बस्तियां थीं। सातवाहन बस्तियों की भौतिक संस्कृति में दक्कन की महापाषाणकालीन बस्तियों की अपेक्षा कुछ सुधार दिखाई देते थे। हल-फाल, दराती, फावड़ा, कुल्हाड़ी और तीर के नोक सहित औज़ार और उपकरण थे। कुदाल में निरंतर कुछ न कुछ सुधार होता रहा परन्तु यह उचित ढंग से सकोटर था। करीमनगर और वांरगल के क्षेत्रों में कच्चा लोहा उपलब्ध था। इन क्षेत्रों में लोहे की खुदाई से यह पता चलता है कि महापाषाण युग में भी इसका प्रचलन था। सातवाहन काल में दक्कन में सोने की खदानों के प्रमाण मिलते हैं। इन विकास कार्यों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धातुकर्म उन्नत अवस्था में था।

तालाबों और कुंओं के रूप में सिंचाई सुविधाओं की उन्हें जानकारी थी। पानी उठाने के लिए रहटों का प्रयोग किया जाता था। तालाबों और कुंओं की खुदाई प्रशंसनीय कार्य समझा जाता था। कुछ शासकों की तालाब निर्माताओं के रूप में शिलालेखों में प्रशंसा की गई है। धनी लोग तालाब और कुएं बनवाते थे।

दक्कन के लोगों को धान रोपाई का ज्ञान था। ईसवी सदी की पहली दो शताब्दियों में कृष्णा और गोदावरी नदियों के मैदानों में प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र थे। काली मिट्टी वाली भूमि में कपास की खेती की जाती थी और आंध्र का कपास विदेशों में भी प्रसिद्ध था। समुद्रतटीय क्षेत्रों के विकास में नारियल की पैदावार का बहुत बड़ा योगदान रहा। दक्कन के विभिन्न भागों में आम के वृक्षों और इमारती लकड़ी के अन्य वृक्षों के रोपण के बारे में भी सुना जाता है।

दक्कन में श्रमिकों का स्रोत मजदूरी पर श्रमिक और गुलाम थे। **द परिप्लस ऑफ द इराइथरियन सी (The Periplus of the Erythraean Sea)** में वर्णन है कि गुलामों को अरब से लाया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में स्पष्ट अंतर और वर्ग भेद था। तमिल क्षेत्र में ''उच्च'' और ''निम्न'' वर्ग के बीच अंतर था। ''उच्च वर्ग'' में शासक और सामंत तथा *वेल्लाल* और *वेलीर* वर्ग आते थे जो भूमि के मालिक थे। ''निम्न वर्ग'' में साधारण किसान, भाट और नृतक तथा कामगार आदि थे। दक्कन के उन क्षेत्रों में यह अंतर और अधिक निश्चित रूप से उभरा जहां स्थानीय विकास कार्यों और उत्तर के आदर्शों तथा विचारधारा का सम्मिलन पहले हुआ था।

16.4 स्वामित्व अधिकार

सम्पदा और सम्पत्ति के आधार पर सामाजिक अंतर के फलस्वरूप स्वामित्व के आधार की समस्या उत्पन्न होती है। सुदूर दक्षिण में हमने देखा है कि वहां कुछ *वेल्लाल* वर्ग थे जो ज़मीन के मालिक थे। इससे प्रतीत होता है कि दूसरों की जमीन में मजदूरी पर काम करने की अपेक्षा स्वयं भूमि का मालिक होना अच्छा समझते थे। कभी-कभी सामंत अपने सैनिकों

और भाटों को *ऊर (Ur)* बस्तियां दे देते थे। इसके परिणामस्वरूप, जिस व्यक्ति को ज़मीन दी गई थी उसे उन *ऊर (Ur)* बस्तियों से आय संग्रह करने का अधिकार मिल जाता था।

आम तौर पर खेतों का सामूहिक स्वामित्व होता था और सामंतों के करों का भुगतान करने के बाद उत्पाद का उपयोग भी सामूहिक रूप से होता था। दक्कन में भूमि स्वामित्व का स्वरूप अधिक स्पष्ट है। वहां *गहपति (Gahapati)* परिवार थे जो भूमि के स्वामी और व्यापारी दोनों होते थे। एक शिलालेख के अनुसार पश्चिमी दक्कन के नाहापन *क्षत्रप* शासक का दामाद उशावदत्त ने एक ब्रह्मण से ज़मीन का एक हिस्सा खरीदा और उसे बौद्ध *संघ* को दान में दिया। इससे यह स्पष्ट है कि भूमि का स्वामित्व व्यक्गित भी होता था। इस कार्य में स्वामी को 40,000 *कहापन (Kahapana)* सिक्के मिले। सातवाहन राजाओं ने भूमि और यहां तक कि गांव भी धार्मिक लाभभोगियों का दान में दिए। साधारण भक्तों ने बाद में इस प्रथा का अनुसरण किया। उस काल के शिलालेखों से पता चलता है कि व्यक्तिगत स्वामित्व में थोड़ी-थोड़ी ज़मीन होती थी।

बोध प्रश्न 1

1) सही (✓) अथव गलत (✗) का निशान लगाइएः

   i) *तमिलाहम्* क्षेत्र में आजीविका के विविध प्रकार स्पष्ट दिखई देते हैं।

   ii) पांच *तिणई* दक्कन, आंध्र, तमिलनाडू और केरल थे।

   iii) *पल्लै* क्षेत्र एक नियतकालिक घटना है।

   iv) दक्षिण भारत में कृषि की तृतीय अवस्था कृषि के क्षेत्र में गैर-कृषि वर्ग का प्रवेश है।

   v) महापाषाण युगीन स्मारक नवपाषाण युग के अवशेष हैं।

   vi) कुदाल से मोटे अनाज की खेती नहीं की जा सकती थी।

   vii) तमिल क्षेत्र की नदी घाटियों में सिंचाई की सुविधाओं की जानकारी नहीं थी।

   viii) सामंत मंदिरों को गांव दान में देते थे।

   ix) दक्कन में व्यक्ति भूमि के स्वामित्व का हकदार नहीं था।

2) प्राचीन *तमिलाहम्* के पर्यावरणीय क्षेत्रों के बारे में पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) *मुल्लै* (चारागाह) में आजीविका के प्रकारों के बारे में पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

   ....

   ....

....

....

4) प्राचीन दक्षिण भारत में कृषि प्रधान गांव की विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

5) दक्कन में कृषक बस्तियों में औज़ारों और उपकरणों तथा सिंचाई-सुविधाओं के बारे में पांच पक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

6) दक्कन में भूमि स्वामित्व के बारे में पांच पक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

16.5 राजस्व और अधिशेष वसूली

आय का मुख्य स्रोत भूमि राजस्व है। राज्य द्वारा भू-राजस्व की वसूली एक संगठित तंत्र के माध्यम से की जाती थी। हम इस भाग में भू-राजस्व और इसकी वसूली के बारे में चर्चा करेंगे।

16.5.1 कृषि से राजस्व

तमिल साहित्य में सामंतों द्वारा प्राप्त अंशदान का उल्लेख *इरै* (irai) और *तिरै* (tirai), दो किस्मों के रूप में किया गया है। *इरै* अधिक नियमित अंशदान और *तिरै* शुल्क-प्रतीत होता है। दुर्भाग्यवश, हमारे पास तत्कालीन अभिलेखों से राजस्व वसूली की दर और तरीके के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। राजस्व वसूली के लिए शासकों को भद्र और नर्म व्यवहार करने की हिदायत दी जाती थी। इससे यह प्रतीत होता है कि किसानों से अपना हिस्सा लेने में प्राधिकारियों द्वारा ज़ोर-जबरदस्ती और ज़्यादतियां की जाती थीं।

सातवाहनों के शासनकाल में दक्कन में राजस्व प्रणाली संभवतः अधिक नियमित थी, परन्तु इस संबंध में भी अधिक स्पष्ट ब्यौरे नहीं हैं। हम करों के कुछ नामों जैसे *कर, देय, मेय* और *भाग* के बारे में सुनते हैं।

इन शब्दों के असली महत्व या राज्य द्वारा वसूले गए राजस्व की राशि के बारे में कुछ मालूम नहीं है। बौद्ध संघों और ब्राह्मणों को ग्रामदान में दान किए गए गाँवों का राजस्व भी शामिल था। ऐसे मामलों में कुछ छूटों का उल्लेख है। ये छूट निम्नलिखित थीं:

i) किसी प्रकार के शुल्क की वसूली के लिए राजा के सैनिकों के प्रवेश के विरूद्ध;

ii) गांव से किसी भी वस्तु को अपने अधिकार में लेने के लिए शाही अधिकारियों के विरूद्ध।

इनसे यह स्पष्ट होता है कि:

- साधारणतया, जब सैनिक गांव में आते थे तो ग्रामवासियों को उन्हें धन या कुछ वस्तुएं देनी पड़ती थी; अथवा
- सैनिकों को राजस्व वसूली का अधिकार मिला हुआ था।

ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्र *गौलमिक (Gaulmika)* के अधीन थे जो एक छोटी सैन्य इकाई का प्रभारी था। जब बौद्ध मठों अथवा ब्राह्मणों को भूमि दी जाती थी तो राज्य को यह आश्वासन देना पड़ता था कि ग्रामीण क्षेत्रों में तैनात सैनिक उनके अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

16.5.2 तमिल क्षेत्र में संसाधनों के अर्जन और वितरण के तरीके

उन लोगों तक संसाधन कैसे पहुंचे जिन्हें उनकी आवश्यकता थी? दक्कन में सुगठित राज्य प्रणाली के अधीन नियमों और प्रथाओं के अनुसार विनियोजन के तरीके विनियमित किए गए थे। आपने पिछली इकाई में पढ़ा है कि सुदूर दक्षिण में अभी नियमित राज्य प्रणाली विकसित होनी थी, इसलिए वहां संसाधनों के वितरण की कोई सुनियोजित प्रणाली नहीं थी।

तमिल क्षेत्र में कृषक बस्तियों में संसाधन वितरण के कई तरीके विद्यमान थे। यहां हम उपहार द्वारा पुनर्वितरण के महत्वपूर्ण तरीकों का वर्णन करेंगे। उपहार संभवतः संसाधन परिचालन का सबसे अधिक आम तरीका था। प्रत्येक उत्पादनकर्ता अपने उत्पादन का कुछ भाग उन व्यक्तियों को दे देता था जो कार्य करते थे। उत्कृष्ट भोजन अथवा वस्तु का उपहार पुनर्वितरण का साधारण रूप था। लूट-पाट और आक्रमणों से पहले और बाद में योद्धाओं को दावतें दी जाती थीं। गरीब गायक और नर्तकियां, जो सामंतों की प्रशंसा में गाते और नाचते थे, भरपेट भोजन और वस्त्रों की चाह में एक दरबार से दूसरे दरबार में भटकते रहते थे। कभी-कभी दावत के अलावा उपहार की वस्तुओं में आयातित उत्कृष्ट शराब, रेशमी वस्त्र तथा *स्वर्ण* आभूषण भी दिए जाते थे। *ब्राह्मण* पुजारियों और योद्धाओं को बहुधा अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में गांव और पशु उपहार में मिलते थे। प्राचीन तमिल क्षेत्र में ब्राह्मणों को गांव दान में देने से *ब्राह्मण* बस्तियों का आविर्भाव हुआ। समृद्ध और शक्तिशाली व्यक्तियों के तीन वर्गों द्वारा उपहार के माध्यम से पुनर्वितरण कार्य किया जाता था। ये तीन वर्ग थे: कृषक बस्तियों के राजा *वेंतर (Vendar)*, छोटे सामंत *वेलीर (Velir)* और समृद्धशाली कृषक परिवार *वेल्लालर (Vellalar)*।

16.5.3 वसूली में ज़्यादतियां

उपहारों के वितरण को संभव बनाने के लिए यह आवश्यक था कि केन्द्र में संसाधन एकत्र किए जाते। यह केन्द्र मुखिया का निवास स्थान होता था। केन्द्र से उपहारों का वितरण पुनर्वितरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। संसाधनों को एकत्र करने के लिए बहुधा कृषक क्षेत्रों की लूट-पाट की जाती थी। अनाज और पशु लूटे जाते थे। लूट में जिस वस्तु को वे नहीं ले जा सकते थे उसे वे नष्ट कर देते थे। किसानों की बस्तियों को जला दिया जाता

था, शत्रुओं की फसलों को नष्ट कर दिया जाता था और समृद्ध बागानों को बंजर भूमि में बदल दिया जाता था : उन लुटेरों के दुष्कार्यों में से कुछ ये थे। पहाड़ी क्षेत्रों और चारागाहों के *मारवर (maravar)* लड़ाकुओं को सामंतों द्वारा बस्तियां लूटने के काम में लाया जाता था। ऐसे लुटेरों के लूट के माल को *मारवर* लड़ाकूओं में पुनर्वितरित किया जाता था और प्रायश्चित्तिक धार्मिक अनुष्ठानों के लिए उपहार और पारिश्रमिक स्वरूप *ब्राह्मण* पुजारियों को दिया जाता था। किसानों की असुरक्षित दुर्दशा और जिस प्रकार उन्हें आतंकित किया जाता था और उनका शोषण होता था, इसका प्रमाण *संगम* साहित्य के कई गीतों में मिलता है।

गरीबों और किसानों पर की गई इन सभी ज्यादतियों के बावजूद युद्ध को प्रभावशाली उत्साहपूर्वक मनाया जाता था। इसे एक प्रथा का रूप दिया गया था। युद्ध-पूजा का प्रचार उन योद्धाओं के साहस की प्रशंसा के माध्यम से किया जाता था जिनके स्मारक पत्थर पंथ वस्तुओं या पूजा/उपासना की वस्तुओं स्वरूप बनाए जाते थे। *पण (Pana)* गायक सामंतों और उसके सैनिकों के वीरोचित गुणगान करते थे। संसाधनों की कमी के कारण लूट का माल हथियाना ज़रूरी होता था। कभी-कभी ज़्यादतियों के फलस्वरूप संसाधन नष्ट हो जाते थे। सामंतों के स्तर पर पुनर्वितरण का तंत्र अपने आप में परस्पर विरोधी था।

16.6 सामाजिक संगठन

इस भाग में हम *तमिलाहम्* और दक्कन के क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक समूहों और प्रथाओं के बारे में पढ़ेंगे। आइए सबसे पहले तमिल क्षेत्र के बारे में चर्चा करें।

16.6.1 तमिल समाज

प्राचीन *तमिलाहम्* में समाज का स्वरूप मूलतः आदिवासी था। उसमें नातेदारी संगठन गणचिन्ह पूजा और जनजाति पूजा एवं प्रथाएं विद्यमान थीं।

पलानी, तमिलनाडु के निकट पाई गई लगभग दो सहस्राब्दियों पुरानी *संगम* कालीन चित्रकारी। श्रेय : गोपीकुमार.ईला। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sangam_age_paintings,_Palani,_Tamil_Nadu_in_India_-_2.jpg)।

सभी तिणौं (पर्यावरणीय क्षेत्रों) में जनजाति रीति-रिवाज़ विद्यमान थे, परन्तु प्रमुखतया कृषि क्षेत्रों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे। इन क्षेत्रों में सामाजिक संगठन जटिल हो रहे थे। यह धीरे-धीरे पुराने नातेदारी संबंधों के टूटने और वैदिक *वर्ण* अपनाने के कारण हो रहा था। सामाजिक वर्ग भेद या विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच असमानताएं उभर रहीं थीं और ''उच्च'' तथा ''निम्न'' के बीच बहुत अंतर हो गया। भूमिधारी *वेल्लालर* और *वेल्लाल* किसान कृषक बस्तियों में मूल उत्पादक वर्ग बन गए।

शिल्प विशेषज्ञता केवल कृषि उत्पादन के लिए प्रारंभिक/अल्पविकसित और सहायक/पूरक थी। हम लोहारों (*कोल्लन*) और बढ़ई (*तच्चन*) के बारे में सुनते हैं। विस्तृत परिवार उनकी उत्पादन इकाई थी। बुनाई उनका अन्य व्यवसाय था।

ग्रामवासियों की धार्मिक पूजाएं और उपासना प्रथाएं पुराने आदिवासी धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार थीं जिनके लिए धार्मिक अनुष्ठान वर्गों का होना आवश्यक था, जैसे *वेलन, वेन्ट्वन* आदि। वे अध्यात्मिक तत्वों और उनके प्रबंध की देखभाल करते थे। परन्तु समाज ''पुजारी प्रधान'' नहीं था। वहां पर्याप्त अधिशेष था, जिसके फलस्वरूप व्यापारी वर्ग समृद्धिशाली था।

वे जिस वस्तु का व्यापार करते थे उसके नाम से जाने जाते थे। इस प्रकार हम *उमणर* (नमक का व्यापारी), *कुल वाणिगर* (अनाज का व्यापारी), *अरुवै वाणिगर* (वस्त्रों का व्यापारी), *पोन् वाणिगर* (*स्वर्ण* व्यापारी) आदि के बारे में सुनते हैं। बाद में ये व्यापारी *वर्ण* व्यवस्था के अंतर्गत आ गए। उस समय तक *वर्ण* व्यवस्था का सुदूर दक्षिण में काफी प्रभाव हो गया था। तमिल व्याकरण की प्राचीनतम उपलब्ध कृति *तोलकाप्पियम* में यह वर्णन मिलता है कि तमिल समाज चार वर्णों में बंटा हुआ था। इस कृति के अनुसार व्यापारी *वैश्य* वर्ग के थे। दूर दक्षिण में, विशेष कर मदुरै और तिरूनेलवेल्लि क्षेत्रों में, पांड्य देश में इन व्यापारियों को कुछ असनातनी धार्मिक वर्गों से जुड़ा हुआ पाया गया है। उन्हें इस क्षेत्र के प्रारंभिक शिलालेखों में जैन और बौद्ध धर्म तपस्वियों के गुफा निवासदाता के रूप में वर्णित किया गया है। असनातनी सम्प्रदाय के योगियों की उपस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र में उनके कुछ अनुयायी थे।

यह स्वाभाविक है कि प्रमुख वर्गों ने *मरूतम के कृषक* क्षेत्रों में अपने केन्द्र इस कारण से स्थापित किए कि केवल वहां ही गैर-उत्पादनकर्ता वर्गों को आजीविका के लिए आवश्यक अधिशेष संसाधन उपलब्ध थे। कृषि क्षेत्र *मरूतम* के सामंतों ने यह दावा करना शुरू किया कि वे *सूर्यवंश* या *चन्द्रवंश* के वंशज हैं, जैसा कि उत्तर भारत के क्षत्रिय हैं।

सामंत कृषक बस्तियों में किसानों का शोषण करते थे और समीपवर्ती क्षेत्रों के *मरवा* वर्गों की सहायता से अधिशेष वसूल करते थे। वे बहुधा गांवों को लूटते थे। *संगम* कविताओं में नायकों के युद्ध और युद्धोचित गुणों का वर्णन है। *पाण* गायकों और *विरालि* नश्तकों के कार्य नायकों और उनकी वीरता का बखान करना था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन *तमिलाहम्* के कृषक *मरूतम* क्षेत्र में समाज में प्राचीन जनजाति प्रथाओं और वैदिक आदर्शों तथा सिद्धांतों का सम्मिश्रण है।

16.6.2 दक्कन में समाज

दक्कन में सभी तीनों धार्मिक व्यवस्थाओं अर्थात् सनातन धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के काफी अनुयायी थे। सातवाहन शासकों ने वैदिक कर्मकांड को प्रश्रय किया। उदाहरण के लिए, सातवाहन परिवार की प्रारंभिक रानी नागनिका कई वैदिक धार्मिक अनुष्ठान करती थी और वैदिक ग्रंथों में उल्लिखित उपहार देती थी। जैन धर्म के उस क्षेत्र में कुछ अनुयायी थे और इस अवधि में *दिगम्बर* सम्प्रदाय के कुछ प्रसिद्ध उपदेशक भी हुए। मूल *संघ* के संस्थापक कोडकुंडाचार्य, जो दक्षिण में लोकप्रिय हुए, इसी क्षेत्र में रहते थे। बौद्ध धर्म लोकप्रिय आंदोलन के रूप में फैला और बहुत बड़ी संख्या में लोग इसके अनुयायी बने। इनमें अधिकांश व्यापारी और दस्तकार थे। बौद्ध धर्म के *महायान* सम्प्रदाय ने भी काफी लोकप्रियता प्राप्त की। शासक वर्ग, धनी व्यक्तियों और कामगारों ने *विहारों* और *स्तूपों* को उदारतापूर्वक दान दिया। *महायान* मत के भाष्याकार आचार्य नागार्जुन ने दक्षिण में बहुत ख्याति अर्जित की। कुछ विदेशी तत्वों जैसे यवनों, शकों और पल्लवों ने भी या तो वैदिक धर्म या फिर बौद्ध धर्म अपनाया। इस प्रकार, इस काल में समाज में विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों का सम्मिश्रण देखा गया है। विदेशी वंशों के शासक अपने शिलालेखों में प्राकृत का प्रयोग करते थे और बाद में संस्कृत का प्रयोग करने लगे तथा यहां तक कि उन्होंने भारतीय व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम भी ग्रहण किए।

समाज का चार वर्गों में विभाजन का सिद्धांत दक्कन में सर्वविदित था। लोगों को उनके व्यवसाय के अनुसार संबोधित करने की प्रथा लोक प्रचलित थी। *हलक* (हलवाहा), *गोलिक* (गड़रिया), *वर्धकी* (बढ़ई), *कोलिक* (बुनकर), *तिलपिसक* (तेली) और *कमार* (धातुकर्मी) कुछ ऐसे ही व्यावसायिक स्तर थे। जाति अनुशासन बहुत ही लचीले थे। ऐसा विदेशी तत्वों के साथ सम्मिश्रण के कारण हुआ। संयुक्त परिवार प्रणाली समाज की सामान्य विशेषता थी।

सामाजिक जीवन में पुरुष का प्रभुत्व स्पष्टतः प्रमाणित था। कभी-कभी महिलाएं अपने पति की उपाधियाँ स्वीकार करते हुए पाई गई, जैसे *भोजिकी, महारथिनी, महासेनापतिनी* आदि।

16.7 नए तत्व और सामाजिक परिवर्तन

दक्कन में पहली शताब्दी सी.ई. के दौरान कृषक व्यवस्था में कुछ नए तत्व पहली बार दिखाई दिए। सातवाहन और *क्षत्रप* शासकों ने धार्मिक लाभार्थियों जैसे बौध भिक्षुओं और ब्रह्मणों को भूमि-खंड और यहां तक कि पूरे-पूरे गांव दान में दिए। भूमि के साथ-साथ गांव से राजस्व वसूल करने के अधिकार तथा खदानों पर अधिकार जैसे कुछ आर्थिक विशेषाधिकार भी अनुदानग्राहियों को हस्तांतरित किए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि दान में किसानों पर कुछ वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार भी शामिल थे। शाही अनुदानों ने ग्रामवासियों को गाँव का दौरा करने वाले प्रशासनिक अधिकारियों और सैनिकों को अनिवार्य भुगतान से मुक्त किया। व्यक्तियों को दिए गए पिछले कई अनुदान अस्थायी थे। परन्तु अब उन्हें स्थायी बनाने की प्रवृत्ति उभरने लगी थी।

शासकों द्वारा धार्मिक लाभार्थियों को स्वीकृत विशेषाधिकार और छूट तथा भूमि पर स्थायी अधिकार ने अत्यन्त शक्तिशाली स्थिति प्रदान की। कृषि क्षेत्र में इन नए विकास कार्यों से भूमि व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था में गंभीर और दूरगामी परिवर्तन आए जिन्हें निम्नानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता हैः

i) पहला, धार्मिक लाभार्थियों को नए आर्थिक और प्रशासनिक विशेषाधिकार सहित जो गांव मिले थे, उन गांवों में वे शक्तिशाली प्राधिकारी बन गए और वे उन पर अध्यात्मिक नियंत्रण भी रखते थे।

ii) दूसरा, भिक्षुओं और पुजारियों को गांव देने से गैर-काश्तकार भूमि स्वामियों की एक श्रेणी बनी। बौद्ध भिक्षु और *ब्राह्मण* पुजारी स्वयं खेती नहीं करते थे। उन्हें अपनी भूमि पर काम करने के लिए अन्य लोगों को लगाना पड़ता था। इस प्रकार वास्तविक हलवाहा भूमि और उसके उत्पाद से अलग हो गया।

iii) तीसरा, इस प्रकार के निजी स्वामित्व ने वनों, चारागाहों, मत्स्य क्षेत्रों और जलाशयों पर पहले के सामूहिक अधिकारों को समाप्त कर दिया।

iv) चौथा, लाभार्थियों का अधिकार ने केवल भूमि पर था बल्कि उन किसानों पर भी था जो खेती में काम करते थे। इसके फलस्वरूप किसानों के अधिकार क्षीण हो गए और वे दास बन गए।

दक्कन में विद्यमान ये परिवर्तन अनुवर्ती शताब्दियों में अन्यत्र भी प्रचलित हुए। अंत में, भूमि देने की प्रथा से अन्य विशेषताओं के साथ-साथ ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनी जिसे कुछ विद्धानों ने ''भारतीय सामंतवाद'' की संज्ञा दी है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित पर सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाइएः

   i) *इरै* और *तिरै* राजस्व की दो मदें थीं जिन्हें नकद लिया जाता था।

   ii) *गोलमिक* (*gaulmikas*) सातवाहन के ग्रामीण प्रशासक थे।

   iii) भाट और नृतक पशुओं और भूमि का उपहार पाने के लिए एक दरबार से दूसरे दरबार में घूमते रहते थे।

iv) प्राचीन तमिल क्षेत्र में लूट-पाट युद्ध एक प्रथा बन गई थी।

v) चारागाहों में सामाजिक जटिलता दिखाई देने लगी।

vi) *तोलकाप्पियम* के अनुसार व्यापारी क्षत्रिय वर्ग थे।

vii) मदुरै और तिरूनेलवेल्लि क्षेत्रों में जैन और बौद्धों जैसे असनातनी सम्प्रदायों के योगियों को गुफा निवास दान में दिए गए।

viii) कोंडकुंडाचार्य *दिगम्बर* सम्प्रदाय के *महासंघ* के संस्थापक थे।

ix) समाज का चार वर्णों में विभाजन का मत दक्कन में सुविदित था।

2) प्राचीन दक्षिण भारत में लूट-पाट युद्धों के बारे में पांच पंक्तियों लिखिए।

....

....

....

....

....

3) प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में अधिशेष के विनियोजन में अधिकता के बारे में पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

4) तमिल क्षेत्र में दस्तकारी वर्गों के बारे में पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

5) दक्कन में धार्मिक वर्गों को सातवाहन भूमिदान के बारे में टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

6) बौद्ध भिक्षुओं और *ब्राह्मण* पुजारियों की भूमि दान के परिणामों के बारे में अनुच्छेद लिखिए।

....

....

....

....

....

16.8 व्यापार के प्रकार

आपने प्राचीन दक्कन और सुदूर दक्षिण में कृषक बस्तियों और कृषक समाज के बारे में पढ़ा है। इस खंड में हम व्यापार और शहरीकरण के रूप में अर्थव्यवस्था के अन्य ऐसे पहलुओं पर चर्चा करेंगे जिनसे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायता मिली।

प्रायद्वीप भारत में व्यापार की वृद्धि और शहरी केन्द्रों को उद्‌भव कोई पृथक घटना नहीं थीं, बल्कि उन अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों से बहुत अधिक जुड़ी हुई थी जो उस समय इस क्षेत्र में हो रहे थे। वे परिवर्तन निम्नलिखित कारकों से उत्पन्न हुए थे :

- प्रमुख नदी घाटियों में कृषि की प्रगति द्वारा उत्पन्न प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न भागों में समाज के अन्दंर परिवर्तन। कुछ हद तक यह महाद्वीपीय महापाषाणकालीन संस्कृति की लौह प्रौद्योगिकी तथा सिंचाई से जुड़ी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हिस्सों में कृषि उत्पाद अधिशेष मात्रा में उपलब्ध थे।

- प्रायद्वीपीय भारत में मौर्य-राज्य के विस्तार के फलस्वरूप उत्तर भारत के साथ अधिक सम्पर्क बना तथा व्यापारियों, सौदागरों तथा अन्य व्यक्तियों का अधिक आवागमन हुआ। इसका प्रमाण *अर्थशास्त्र* में दक्षिणी मार्ग (*दक्षिणापथ*) के लाभों के वर्णन मिलते हैं। इसके अलावा समुद्र तट के साथ सम्पर्क भी थे। इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत में पहले की विनिमय प्रणाली और जालतंत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

- पहली सदी बी.सी.ई. के आसपास पश्चिम के रोमन विश्व में भारतीय सामान की मांग बढ़ी और इसमें एक और कारण जुड़ा जिससे वहां के सौदागर तथा जहाज प्रायद्वीपीय भारत के निकटतम सम्पर्क में आए। इससे व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

- इन सभी में फिर दस्तकारी विशेषज्ञता या दस्तकारी की मदों के उत्पादन में दक्षता की प्रगति जुड़ी, जिसके फलस्वरूप स्थानीय विनिमय के लिए या दूरस्थ व्यापार के लिए समाज के ऊंचे सदस्यों की आवश्यकता हुई। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के मिट्‌टी के बर्तन, मनके बनाना, शीशे का काम, वस्त्रों की बुनाई – इन सभी के लिए भिन्न भिन्न दक्षता की आवश्यकता हुई।

फिर भी यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इन परिवर्तनों द्वारा भारत का प्रत्येक भाग समान रूप से प्रभावित नहीं हुआ। कुछ ऐसे स्थान थे या ऐसे स्थान बने रहे जिनमें पिछली संस्कृति ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा, दक्कन और सुदूर दक्षिण में दक्कन के भिन्न-भिन्न भागों में परिवर्तन अधिक सुस्पष्ट थे। शुरू में सुदूर दक्षिण में परिवर्तन धीरे-धीरे और सीमित क्षेत्र में हुए।

व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन अध्ययन किया जा सकता है :

- स्थानीय लेन-देन और दूरस्थ व्यापार में विनिमय तंत्र,
- श्रेणियों का संगठन,
- परिवहन, भंडारण तथा नौवहन,
- विनिमय का माध्यम,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्र, और
- व्यापार तथा शहरीकरण द्वारा उत्पन्न आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन।

आपने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और उनके उत्पादों के बारे में पढ़ा। प्रत्येक क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों की वस्तुओं से किसी वस्तु का विनिमय करना होता था। साथ ही, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी ऐसी वस्तु की कमी होती थी जो उनके समाज के लिए आवश्यक थी। कृषि क्षेत्र खाद्यान्न और गन्ना पैदा करते थे, किन्तु नमक और मछली के लिए उन्हें तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। तटीय क्षेत्रों में नमक और मछली का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में होता था परन्तु चावल और प्रमुख भोजन धान उत्पादक क्षेत्रों में लाना पड़ता था। पहाड़ी क्षेत्र इमारती लकड़ी और मसालों आदि में समृद्ध थे परन्तु खाद्यान्नों और नमक के लिए उन्हें कृषि क्षेत्रों तथा तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की पारस्परिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विनिमय संबंध उभरे। दक्षिण में उपलब्ध कुछ वस्तुओं की मांग उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों में हुई और यहां तक इन वस्तुओं की मांग अन्य देशों तथा संस्कृतियों में भी हुई। उन सुदूरवर्ती देशों द्वारा स्थल मार्ग या समुद्री मार्ग से सम्पर्क बनाए गए और आवश्यक वस्तुएं प्राप्त की गई। इस प्रकार हम व्यापार के तीन स्तरों की पहचान कर सकते हैं :

i) स्थानीय व्यापार

ii) दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

iii) दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

16.8.1 स्थानीय व्यापार

स्थानीय विनिमय के संदर्भ में लेन-देन का सबसे सामान्य तरीका वस्तु विनिमय था। वस्तु विनिमय की अधिकांश वस्तुएं तत्कालिक उपभोग की थीं। सुदूर दक्षिण में वस्तु विनिमय की नियमित वस्तुएं नमक, मछली, धान, दूध उत्पाद, जड़ें, मृग मांस, शहद और ताड़ी थी। नमक का विनिमय धान से होता था, धान का विनिमय दूध, दही और घी से होता था, मछली तथा शराब के लिए शहद दिया जाता था, मृग मांस और ताड़ी के लिए चावल पपड़ियां (rice flakes) और गन्ना दिया जाता था। अत्यन्त दुर्लभ, विलासिता की वस्तुएं जैसे मोती तथा हाथी दांत भी वस्तु विनिमय की मदें थीं। वे भी उपभोग की वस्तुओं जैसे चावल, मछली, ताड़ी आदि के लिए दी जाती थीं।

तमिल दक्षिण क्षेत्र वस्तु विनिमय प्रणाली में ऋण लेने की प्रथा से अनभिज्ञ नहीं था। किसी वस्तु की निश्चित राशि का ऋण लिया जा सकता था और बाद में उसी प्रकार तथा उसी मात्रा में वही वस्तु लौटा दी जाती थी। यह प्रथा *कुरीटिरपई* कहलाती थी।

विनिमय दर निश्चित नहीं थी। वस्तुओं की कीमत केवल मोल-तोल से ही तय की जाती थी। धान और नमक केवल दो वस्तुएं ही ऐसी थीं जिनके लिए सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निश्चित विनिमय दर थी। धान के बराबर माप में नमक दिया जाता था।

सातवाहन शासन के अधीन दक्कन में सिक्कों का आम प्रचलन था। इस पर भी वस्तु विनिमय का प्रचलन जारी था। मिट्टी के बर्तन, कड़ाही/तवा, खिलौने और हल्के गहने जैसे दस्तकारी उत्पाद ग्रामीण क्षेत्रों में विनिमय वस्तुएं थीं।

सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं :

i) विनिमय की अधिकांश मदें उपभोग की वस्तुएं थीं।

ii) विनिमय लाभोन्मुखी नहीं था।

iii) उत्पादन की तरह वितरण भी आजीविका का साधन था।

16.8.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

भारत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सम्पर्क यदि काफी प्राचीन नहीं रहा हो तब भी वह कम से कम चौथी शताब्दी बी.सी.ई. पुराना तो था ही। विंध्याचल पर्वत श्रृंखलाओं के दक्षिण में उस क्षेत्र के जो भी संसाधन थे वे उत्तर भारत में ज्ञात थे। प्राचीन बौद्ध साहित्य में जिस मार्ग का हवाला मिलता है वह गंगा की घाटी से गोदावरी की घाटी में जाता था। यह *दक्षिणा पथ* के नाम से जाना जाता था। *अर्थशास्त्र* के रचयिता कौटिल्य ने इस दक्षिणी मार्ग के लाभों के बारे में लिखा है। कौटिल्य के अनुसार दक्षिण राज्य क्षेत्रों में शंखों, हीरों, जवाहरातों, रत्न-मणियों और *स्वर्ण* विपुल मात्रा में था। इसके अलावा, यह मार्ग उन क्षेत्रों से होकर जाता था जो समृद्ध खनिज पदार्थों और मूल्यवान वस्तुओं से भरपूर थे। उनके कथनानुसार उस समय इस मार्ग से बहुत से लोगों का बार-बार आना-जाना होता था। वह मार्ग दक्षिण के प्रतिष्ठान नगर सहित वहां के बहुत से केन्द्रों से होकर जाता था। प्रतिष्ठान नगर बाद में सातवाहन राजाओं की राजधानी बना। इस उत्तर-दक्षिण की अधिकांश मदें विलास की वस्तुएं थीं जैसे मोती, रत्नमणि और *स्वर्ण*। उत्तर और दक्षिण के बीच उत्तम किस्मों के वस्त्रों का व्यापार भी होता था। संभवतः, श्रेष्ठ कोटि का रेशम कलिंग से आता था। इस महीन रेशम का नाम *कलिंग* था, स्पष्ट है कि इस रेशम का नाम उस स्थान के नाम पर था जहां इसका उत्पादन होता था। यह एक ऐसी मद थी जिसे तमिल के सामंत पसंद करते थे। जो भाट, सामंतों की प्रशंसा का गुणगान करते थे उन्हें बेशकीमती उपहार के रूप में *कलिंग* रेशम मिलता था। उत्तर कृष्ण मृद्भांड (एन.बी.पी.) नाम के सुन्दर किस्म के मिट्टी के बर्तन सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय थे। पुरातत्वविदों ने खुदाई में पांड्य वंश के प्रारंभ के राज्यों में कुछ उत्तर कृष्ण मृद्भांडों को निकाला है।

उपर्युक्त मदों के अलावा दक्षिण में मिट्टी के टूटे बर्तनों और मसालों की कुछ मदें भी मिली हैं। इनमें जटा मांसी और मालावथुम (मरहम बनाने के लिए जड़ी-बूटी) भी शामिल थे। इन मदों को पश्चिमी देशों में जहाज से ले जाया जाता था।

उत्तरी भारत के व्यापारी बहुत बड़ी मात्रा में चांदी के आहत सिक्के भी लाते थे। दक्षिण के भिन्न-भिन्न स्थानों से खुदाई के दौरान बहुत बड़ी मात्रों में ये सिक्के पाए गए। ये उत्तर और दक्षिण के बीच वाणिज्यिक सम्पर्क के प्रमाण हैं। उत्तर भारत के साथ दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था और इस व्यापार का लाभ केवल शासक वर्ग और उनके व्यक्तियों को ही होता था।

16.8.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

प्रथम-द्वितीय शताब्दी सी.ई. के दौरान सातवाहनों की नौसेना, नाविकविद्या और व्यापार क्षमताओं का प्रतीक वासिष्ठिपुत्र श्री पुलमवी के सीसे के सिक्के पर अंकित/चिन्हित भारतीय जहाज। ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में संरक्षित। श्रेयः पी. एच. जी. कॉम। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Indian_ship_on_lead_coin_of_Vashishtiputra_Shri_Pulumavi.jpg)।

भारतीय वस्तुएं जैसे मसाले, रत्न-मणियों, इमारती लकड़ी, हाथी-दांत और कई अन्य मदों की मांग पश्चिमी देशों में बहुत अधिक थी। इन वस्तुओं का मुख्य स्रोत दक्षिण भारत था। प्रारंभिक काल से ये वस्तुएं पश्चिमी देशों को समुद्री मार्ग से जाती थीं। रोमन विश्व से सीधा व्यापार था, इसमें बहुत बड़े पैमाने पर लेन-देन होता था और इससे लाभ भी बहुत अधिक होता था। हमारे पास इसके प्रमाण लगभग पहली शताब्दी बी.सी.ई. से हैं और यह प्रायद्वीपीय भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस प्रायद्वीपीय भरत से रोम के वाणिज्यिक सम्पर्क की दो अवस्थाओं का हम उल्लेख करेंगे:

i) प्रथम अवस्था में, बिचौलिए के रूप में अरब देश।

ii) दूसरी अवस्था में, मॉनसूनी हवाओं के ज्ञान के फलस्वरूप सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया था।

काफी समय तक अरब सागर में नौवहन तट के साथ-साथ होता था। यह बहुत कठिन और खर्चीला था। अरब देशों ने ईस्वी सदी शुरू होने से पहले समुद्र का मुख्य मार्ग बनाते हुए भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध बना लिए थे। अरब देशों की भौगोलिक स्थिति पूरब पश्चिम के व्यापार में उनकी एकाधिकार की स्थिति बनाने के लिए बहुत सुविधाजनक थी। उन्हें अरब सागर में पवन प्रणालियों का भी कुछ ज्ञान था जिसे उन्होंने व्यापार रहस्य के रूप में गोपनीय रखा था। इस प्रकार अरब देशों ने बिचौलिए का काम किया तथा प्रायद्वीपीय भारत से व्यापार में काफी लाभ अर्जित किया।

मॉनसूनी हवाओं की ''खोज'' से, जिसका श्रेय हिप्पालुस नाम के नाविक को है, रोमनों द्वारा भारत के साथ सीधा संबंध स्थापित हुआ। इससे रोमन और प्रायद्वीप भारत के बीच व्यापार में वृद्धि का सूत्रपात हुआ। रोमन अपना सामान भारतीय बंदरगाहां में लाते थे जिनमें कच्चा माल और तैयार उत्पाद, दोनों होते थे। कच्चे माल में तांबा, टीन, सीसा, पुखराज, चकमक, शीशा (मनका बनाने के लिए कुछ सामग्री के रूप में) होता था। तैयार उत्पादों में उत्तम कोटि की शराब, सुंदर बनावट के वस्त्र, मनमोहक आभूषण, *स्वर्ण* और चांदी के सिक्के तथा भिन्न-भिन्न किस्मों के श्रेष्ठ मिट्टी के बर्तन होते थे।

रोमनों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में प्रायद्वीपीय भारत से पश्चिमी देशों की वस्तुएं जहाज में लादी जाती थीं। उन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

i) मसाले और औषधीय जड़ी-बूटियां जैसे जट मांसा, मालबाथरूम, सिनबार।

ii) मूल्यवान रत्न, अल्प मूल्य रत्न जैसे बेरिल, ऐगेट (गोमेद), कर्नीलियन, जैस्पर और ओनीक्स तथा शंख मोती एवं हाथी-दांत भी ।

iii) इमारती लकड़ी जैसे तेन्दु, सागौन, चंदन की लकड़ी, बांस।

iv) रंगीन सूती वस्त्र और मलमल की वस्तुएं तथा नील एवं लाख जैसी रंजक सामग्री।

निर्यात की उपर्युक्त वस्तुओं में मनके और सूती वस्त्र तैयार माल होते थे।

भारतीय माल के लिए रोमन अधिकतर सोना देते थे। निर्यात की अधिकांश वस्तुएं स्थानीय रूप से उपलब्ध थीं और भारतीय व्यापारियों द्वारा स्वयं ही दक्कन तथा दक्षिण भारत में सौदे एकत्रित किए जाते थे। उन्हें बंदरगाहों तक लाने के लिए गाड़ियों और पुलिंदों को खींचने के लिए भारवाही पशुओं को काम में लाया जाता था। यद्यपि दक्कन तथा दक्षिण भारत में समुद्री व्यापारी थे, परंतु अधिकतर विदेशी समुद्री व्यापारी ही पश्चिमी देशों को सामान भेजते थे। दक्षिण भारत के व्यापारिक संबंध श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया से थे। इस व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएं कुछ मसाले, कैम्फर और चंदन की लकड़ी थी। संभवतः तमिल मूल के व्यापारी इस व्यापार में पहल करने वाले थे। श्रीलंका के व्यापारी भी *तमिलाहम्* आते थे। तमिल ब्राह्मी अक्षरों के शिलालेखों में उनका उल्लेख है जो ईलम (श्रीलंका) से आए थे। परन्तु इस व्यापार के विस्तृत ब्यौरे ज्ञात नहीं हैं।

16.9 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू

बहुधा उत्पादक भी थोड़ा-बहुत स्थानीय व्यापार करते थे। मछली पकड़ने और नमक बनाने का काम पूर्णतः *परतवस* समुदाय द्वारा किया जाता था। ये समुदाय *नेयतल* (तटीय) प्रदेश में रहते थे। इनका उल्लेख *संगम* साहित्य में किया गया है। इस प्रकार वे अपना सम्पूर्ण समय इन कार्यों में लगाते थे। इसलिए मछली और नमक के वितरण में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाए गए।

मछुआरे परिवारों की महिलाओं द्वारा मछलियाँ समुद्र तट के निकटवर्ती क्षेत्रों में ले जाई जाती थीं। वे ग्रामीण मेलों और अन्य ग्रामीण समागम के स्थानों में दिखाई देती थीं।

नमक एक अनिवार्य वस्तु होने के कारण उसकी मांग सर्वत्र थी। नमक के वितरण का काम अलग दल करता था। नमक के व्यापारियों का *तमिलाहम्* में *उमनास* के नाम से जाना जाता था।

तटीय क्षेत्रों और निकटवर्ती ग्रामों में *उमनास* फेरीवाली स्त्रियाँ अपने सिर पर नमक की गठरियां ले जाती थीं और मुख्य रूप से धान के बदले इसे देती थीं।

भीतरी ग्रामीण क्षेत्रों में नमक *उमनास* ले जाते थे। नमक के बड़े-बड़े थैले गाड़ियों में ले जाए जाते थे, जिन्हें बैल अथवा गधे खींचते थे। नमक के व्यापारी बड़े-बड़े झुंडों में जाते थे। नमक के ये कारवां *उमन्चतु* कहलाते थे। वे नमक को स्थानीय उत्पादों के बदले देते थे। इस प्रकार *उमनचतु* क्षेत्र के विभिन्न भागों से सौदे की वस्तुएं एकत्रित कर्ता के रूप में कार्य करते थे।

उमनास अपने परिवार के साथ कारवाँ में जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार के सदस्यों के अलावा, अन्य कोई संगठन नमक के व्यापारी के रूप में नहीं था। नमक व्यापारियों के अलावा अनाज (*कूल वाणिगर*), कपड़े (*अरूवै वाणिगर*), *स्वर्ण* (*पोन वाणिगर*), चीनी (*पानीटा वाणिगर*) के व्यापारी थे। इनका वर्णन कुछ योगियों के निवास स्थान दाता के रूप में

तमिलाहम् की कुछ प्राचीन गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वे धनाढ्य थे। उनके व्यापार और संगठन के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। सुदूर दक्षिण में तिरूवेल्लारी के व्यापारियों के संगठन का एक शिलालेख में उल्लेख है जिसमें उस संगठन का नाम *निकम्ट्टोर* बताया गया है, इसका अर्थ *निगम* अर्थात व्यापार *संघ* का सदस्य है।

तमिलाहम् में व्यापारियों का संगठन एक दुर्लभ बात थी, परन्तु दक्कन में व्यापारियों का *संघ* एक नियमित घटना थी। वहां कई कस्बे थे और प्रत्येक कस्बे का संभवतः *संघ* (या *निगम*) होता था। प्रत्येक *संघ* का एक मुखिया (*सेट्टी*) था और उसका कार्यालय होता था। व्यापारियों का *संघ* बैंक के रूप में काम करता था। यह जमा राशि लेता था और धन ब्याज पर भी देता था। बुनकरों, कुम्हारों, तेलियों, बांस का काम करने वालों, ठठेरों आदि के *संघ* थे। इस बात की जानकारी दक्कन के शिलालेखों में मिलती है। परिवार इकाई की अपेक्षा कार्यकारी इकाई के रूप में *संघ* अधिक कुशल था। एकता की शक्ति के अलावा *संघ* अपने सदस्यों को वित्तीय सहायता सहित सभी प्रकार की सहायता देने में सक्षम था। इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को ग्राहक ढूंढने की ज़िम्मेदारी से भी राहत मिलती थी। इस प्रकार, सातवाहनों के अधीन राज्य क्षेत्रों में व्यापार के संगठन की प्रणाली अपेक्षाकृत उन्नत थी।

16.10 विनिमय सुविधाएं

लम्बी दूरी के व्यापार में परिवहन, भंडारण और नौवहन की सुविधाएं विशेष रूप से प्रासंगिक हैं जिनमें बहुत बड़े पैमाने पर वस्तुओं को ले जाने की समस्या होती है। सुदूर दक्षिण में मिर्च, धान और नमक को ले जाने की समस्या थी जिन्हें बहुत बड़ी मात्रा में ले जाना होता था। पश्चिमी देशों से पश्चिमी दक्कन में इमारती लकड़ी की भी बहुत भारी मांग थी। भारवाही पशु और ठेले अंतर्देशीय परिवहन के लिए प्रयुक्त किए जाते थे।

तमिलाहम् में कई रास्ते थे जो नदी घाटियों में भीतरी बस्तियों, बंदरगाहों और राजधानियों को जोड़ते थे। ऐसा ही एक मार्ग कावेरी की घाटी के पश्चिमी क्षेत्र से चोल बंदरगाह कावेरी-पुम्पट्टिम को जाता था। एक अन्य मार्ग पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र से कांचीपुरम् को जाता था। कांचीपुरम् स्थानीय सामंत की राजधानी थी और पश्चिमी तट का एक प्रसिद्ध नगर था।

नमक कारवाँ और अन्य व्यापारी ऐसे यात्री थे जो इन मार्गों से जाते थे। कारवाँ बड़े-बड़े दल बनाकर जाते थे। व्यापारियों के अलावा बहुधा भाट, चारण, नृतक, संदेशवाहक, भिक्षु आदि भी ऐसे मार्गों से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते रहते थे। ये लोग भी कारवां के साथ जाना पसंद करते थे क्योंकि यात्रा अधिकतर खतरनाक होती थी। अधिकांश मार्ग घने जंगलों और पहाड़ों के ऊपर से होकर जाते थे जहां जंगली जनजातियां रहती थीं। व्यापारियों को राहजनी का खतरा रहता था और शासकों से किसी प्रकार के प्रभावी संरक्षण के अभाव में कारवां के साथ उनके अपने अंगरक्षक नियुक्त रहते थे।

सातवाहनों के अधीन राज्य क्षेत्रों में स्थिति कुछ भिन्न थी। उत्तर से दक्षिण को मुख्य मार्ग उज्जैयिनी से सातवाहन राज्य की राजधानी प्रतिष्ठान (पैठन) शहर को जाता था। प्रतिष्ठान से यह दक्कन के पठार को पार करते हुए दक्षिण के प्रसिद्ध शहर कांची और मदुरै को जाता था। ईसवी काल के प्रारंभ में विकसित मार्गों का जाल इस पुराने मार्ग को पश्चिमी तट के अंतर्देशीय बाज़ारों तथा कस्बों और बंदरगाहों को क्षेत्र के भीतरी भाग के उत्पादक क्षेत्रों से मिलाता था। गोदावरी और कृष्णा की उपजाऊ घाटियों में भी मार्गों के ऐसे जाल थे जो तटीय शहरों को भीतरी भागों से जोड़ते थे।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्कन की कुछ प्राचीन प्रसिद्ध बौद्ध गुफ़ाएँ तथा धार्मिक केन्द्र इन व्यापारी मार्गों पर स्थित थे। व्यापारी कारवां के लिए ये धार्मिक केंन्द्र बहुत से मामलों में उपयोगी थे। उन्हें भोजन और आवास देने के अलावा वे उन्हें ऋण तक भी देते थे।

शासक भी इन मार्गों की देखभाल में रुचि दिखाते थे। उन बौद्ध धार्मिक स्थापनाओं को वे उदारतापूर्वक दान देते थे जो इन मार्गों पर स्थित थे। उन्होंने बंदरगाह नगरों में विश्रामगृह बनवाए और मार्गों में प्याऊ स्थापित किए। उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी भी नियुक्ति किए गए। दुर्भाग्यवश, मार्गों की सुरक्षा प्रबंधों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। बहुधा मार्गों में नदियां पार करनी पड़ती थीं। ऐसे स्थलों पर नौघाट स्थापित किए गए थे और व्यापारियों से कर वसूल किया जाता था। कुछ नौघाट निःशुल्क भी थे।

लम्बे समुद्र तट और कई नदियों के प्रवाह की जानकारी होने के फलस्वरूप दक्षिण भारतीय लोग समुद्री तथा नदियों के नौवहन को जानते थे। नौघाटों को पार करने तथा नदियों के नौवहन के लिए छोटी नौकाओं का प्रयोग किया जाता था। बड़े जहाज़ों के निर्माण तथा उनके प्रयोग से समुद्री यात्रा संभव हुई।

तमिलाहम् में नौवहन मुख्य रूप से तटवर्ती क्षेत्रों में सीमित था। श्रीलंका के साथ कुछ व्यापारिक संबंध थे। श्रीलंका (*ईलम*) के व्यापारियों का उल्लेख दक्षिण भारत के शिलालेखों में मिलता है। इसी प्रकार, श्रीलंका के कुछ प्रारंभिक शिलालेखों में तमिल व्यापारियों का उल्लेख दानदाताओं के रूप में मिलता है। इन प्रमाणों से पता चलता है कि तमिल के व्यापारी समुद्र व्यापार में भाग लेते थे।

दक्कन में ऐसे भी व्यापारी थे जो खास तौर पर समुद्री व्यापार में संलग्न थे। भारूकच्छ में जहाजों की उपस्थिति के बारे में उस समय के साहित्य से जानकारी मिलती है।

प्रायद्वीपीय भारत के व्यापारी, विशेषतः वे जो ढक्कन के थे, विदेशी व्यापार में संलग्न थे। मिस्र और अलेक्ज़ेड्रिया में कुछ भारतीय व्यापारियों की जानकारी उस समय के विदेशी साहित्य में मिलती है।

राजा के प्राधिकारी समुद्री व्यापार के महत्व को जानते थे। वे व्यापारियों को सुविधाएं देते थे। भारूकच्छ में आने वाले जहाजों का मार्ग-दर्शन स्थानीय नौकाएं करती थीं और बंदरगाहों में उनके लिए अलग स्थान की व्यवस्था की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में *तमिलाहम्* के बड़े सामंत समुद्र व्यापार को कई तरीकों से प्रोत्साहित करते थे। समुद्र के किनारे प्रकाश स्तम्भ बनाए गए थे, कई ऐसे जहाज घाट थे जहां रोमन जहाजों से उतारे गए सामान पर सामंतों की मुहर लगाई जाती थी। भंडारण की सुविधा दी जाती थी और गोदामों में सामान के संरक्षण की व्यवस्था भी की जाती थी। सुदूर दक्षिण में और दक्कन में भी समुद्री व्यापार की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने ''निर्देशित व्यापार'' कहा है। दोनों क्षेत्रों के बीच अंतर यह है कि दक्कन में ये विशेषताएं अधिक सुस्पष्ट हैं, जबकि *तमिलाहम्* में वे गौण स्तर पर हैं।

16.11 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के

यद्यपि वस्तु-विनिमय लेन-देन का सबसे सामान्य तरीका था, फिर भी चर्चाधीन अवधि मे विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्कों का प्रचलन था। प्रारंभिक प्रायद्वीप भारत के ज्ञात सिक्कों को मोटे तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

- विभिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के
- रोमन सिक्के

16.11.1 विभिन्न किस्मों के स्थानीय सिक्के

प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के चलते थे। प्राचीन तमिल साहित्य में उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है जिसमें *कास, कनम पोन* और *वेनपोन* नामक सिक्कों का उल्लेख है। परन्तु इन नामों के अनुरूप वास्तविक सिक्के नहीं पाए गए हैं। दक्कन शिलालेखों में *काहापण* के प्रयोग का विवरण मिलता है, जो चांदी के सिक्के थे और स्थानीय रूप से बनाए जाते थे तथा *सुवर्ण* जो सोने के सिक्के होते थे, वे या तो रोमनों के थे अथवा *कुषाणों* के थे।

भिन्न-भिन्न प्रकार के सिक्के भिन्न-भिन्न धातुओं से बनाए जाते थे, जैसे सीसा, पोटिन (तांबे, जस्ते, सीसे और टिन का यौगिक), तांबा और चांदी। उनमें सबसे प्राचीन आहत सिक्के थे जैसा कि आपने एक पिछली इकाई में पढ़ा है। लगभग छठी-पांचवी शताब्दी बी.सी.ई. उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत में इन्हें बनाया जाने लगा। प्रायद्वीपीय भारत में भी विभिन्न प्रकार के आहत सिक्कों की ढलाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। अन्य किस्म के सिक्कों को बनाने में कई प्रकार की तकनीकों जैसें कास्टिंग, डाइ-स्ट्राइकिंग का धीरे-धीरे प्रयोग किया जाने लगा। दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. से छोटी-छोटी बस्तियों के राजाओं या महत्वपूर्ण *महारथी* सदस्यों तथा अन्य परिवारों ने अपने नाम से सिक्के बनाने शुरू किए। इसी क्रम में भिन्न-भिन्न धातुओं के सातवाहन शासकों के सिक्के संभवतः पहली शताब्दी बी.सी.ई. में आए। उत्तरी दक्कन, गुजरात, मालवा तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में *क्षत्रपों* के चांदी के सिक्कों की अत्यधिक मांग थी। इस प्रकार, लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. और दूसरी शताब्दी सी.ई. के अंत के बीच की अवधि में स्थानीय सिक्कों की बहुत सी किस्में बनी और ये प्रायद्वीपीय भारत में प्रचलित थीं।

16.11.2 रोमन सिक्के

प्राचीन तमिल साहित्य में *यवन* (रोमन) जहाजों का उल्लेख मिलता है जो *तमिलाहम्* में बहुत बड़ी मात्रा में सोना लाते थे तथा काली मिर्च से इसका विनिमय होता था। रोमन सम्राट टिबेरियस ने 22 सी.ई. में सेनेट को लिखा था कि साम्राज्य की सम्पत्ति क्षुद्र वस्तुओं के बदले विदेशी में जा रही हैं। प्रथम शताब्दी सी.ई. में **द नेचुरल हिस्ट्री** (The Natural History) के लेखक प्लिनी ने शिकायत की थी कि प्रत्येक वर्ष रोम की अतुल सम्पत्ति विलास की वस्तुओं के लिए भारत, चीन और अरब में जा रही थी। इन कथनों की पुष्टि प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न स्थानों जैसे आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में भारी मात्रा में पाए गए रोमन सिक्कों से होती है। अधिकांश सिक्के लगभग पहली शताब्दी बी.सी.ई. और तीसरी शताब्दी सी.ई. के बीच की अवधि के हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस अवधि के दौरान प्रायद्वीपीय भारत से रोमन सम्पर्क बहुत अधिक था।

अधिकांश रोमन सिक्के सोने और चांदी के हैं। तांबे के सिक्के यद्यपि नगण्य हैं परन्तु पूर्ण अज्ञात नहीं हैं। रोम से धन उन वस्तुओं को खरीदने के लिए लाया जाता था जो पश्चिमी देशवासियों को प्रिय थे। ये वस्तुएं थोक में रोमन वस्तुओं के विनिमय के माध्यम से नहीं ली जा सकती थीं। बड़े सौदे सोने के सिक्कों के माध्यम से होते थे। चांदी के सिक्कों का उपयोग अपेक्षाकृत छोटे सौदों के लिए किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि रोम का सोना मुद्रा के रूप में नहीं अपितु एक बहुमूल्य धातु के रूप में लिया जाता था। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि दक्षिण भारतीयों द्वारा रोम का सोना आभूषणों के लिए प्रयुक्त किया जाता था।

पुदुकोट्टई, तमिलनाडु में उत्खनन द्वारा प्राप्त रोक के सोने के सिक्के। ब्रिटिश म्यूजियम संग्रह, लंदन। श्रेयः अपलोडाल्ट। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Roman gold coins excavated in Pudukottai India one coin of Caligula 31 41 and two coins of Nero 54 68.jpg)।

कुछ मुद्राशास्त्रियों का मत है कि रोमन सिक्के और आहत सिक्के देश में साथ-साथ प्रचलन में थे। रोमन सिक्के भी आहत सिक्कों के लगभग बराबर वज़न के थे। कुछ भंडारों (hoards) में उन्हें आहत सिक्कों के साथ पाया गया है। दोनों ही लगभग एक जैसे ही घिसे हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि भंडारों (hoards) में रखने से पहले वे काफी समय तक प्रचलन में रहे। दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों को नकलें भी प्रचलन में थीं, विशेषकर कोरोमंडल समुद्र तट पर जहां कुछ रोमन व्यापार के केन्द्र थे। संभवतः ऐसी बस्तियों की आवश्यकतों को पूरा करने के लिए नकली सिक्के बनाए गए होंगे।

16.12 व्यापार से राजस्व

खजाने की आय के नियमित स्रोत के रूप में राजस्व की वसूली सरकार की कार्यकुशलता सहित कई कारकों पर निर्भर करती है। उस समय प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न प्रदेशों में राजनीतिक परिस्थितियां एक समान नहीं थीं। इसलिए राजस्व प्रणाली भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न थी। भारवाही पशुओं और गाड़ियों पर सौदा ले जाने के लिए पथकर वसूला जाता था जिसे *उल्कु* कहा जाता था।

यह शब्द संस्कृत शब्द *शुल्क* का व्युत्पन्न रूप है जिसका अर्थ चुंगी है। इससे यह प्रतीत होता है कि चुंगी की विचार उत्तर भारत से लिया गया है। तथापि यह कहा जाता है कि दक्षिण के सभी अभिषिकत सामंत और कम महत्वपूर्ण सामंत विशेषकर यवनों के साथ व्यापार करने में बहुत इच्छुक होते थे। इससे स्पष्ट है कि वाणिज्य से उन्हें अच्छी आमदनी होती थी।

चोल राज्य के बंदरगाह नगर कावेरीपुम्पपट्टिनम में सौदों की वस्तुओं पर चोल मुहर लगाने के लिए चोल शासक के प्रतिनिधि होते थे। इस मुहर में बाघ का चित्र अंकित था। वस्तुओं पर कर भी लिया जाता था। दुर्भाग्यवश, इस संबंध में विस्तृत ब्यौरे उपलब्ध नहीं हैं। इसके अलावा ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहनों के राज्य में कराधान अधिक नियमित और प्रणालीबद्ध रहा है। व्यापार की प्रत्येक वस्तु पर चुंगी वसूल की जाती थी। प्रत्येक प्रमुख शहर में व्यापारियों पर सीमा शुल्क और विभिन्न कर लगाए जाते थे, परन्तु कहीं भी ऐसे करों और चुंगियों की दरों का उल्लेख नहीं है। कर-आय का एक और स्रोत नौघाट था। कहा जाता है कि पश्चिमी भारत के *क्षत्रप* शासक नाहापण का दामाद और प्रतिनिध उशवदत्त ने नदियों पर कर-रहित नौघाटों की व्यवस्था की थी।

राजस्व नगर या वस्तु के रूप में लिया जाता था। दस्तकारों को अपने उत्पादों पर शुल्क देना पड़ता था। इसे *कारुकर* के नाम से जाना जाता था (*कारु* = दस्तकार और *कर* = चुंगी)। इस अपूर्ण सूचना से कोई भी यह कह सकता है कि शासन करने वाले वर्ग को व्यापार और वाणिज्य से पर्याप्त आय प्राप्त होती थी।

बोध प्रश्न 3

1) प्राचीन दक्षिण भारत में वस्तु विनिमय प्रणाली की विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में सही (✓) या गलत (✕) का निशान लगाइए:

   i) वस्तु विनियम की अधिकांश मदें विलासिता की थीं।

   ii) *कुरिएटिरप्पई* का अर्थ वह वस्तु विनिमय है जिसमें किसी वस्तु की निश्चित मात्रा ऋण में ली जाती है और बाद में उसी रूप में तथा उसी मात्रा में वापिस की जाती है।

   iii) कौटिल्य ने सोचा कि दक्षिणी मार्ग श्रेष्ठ था क्योंकि यह अन्य मार्गों की अपेक्षा कम खतरनाक था।

   iv) दक्षिण भारत पश्चिमी देशों के केवल कच्चे माल का निर्यात करता था और पश्चिमी देशों से तैयार माल का आयात करता था।

   v) दक्कन में व्यापारी *संघ* बैंक के रूप में काम करते थे जो जमाराशि लेते थे और ऋण पर धन देते थे।

   vi) *तमिलाहम्* में कई ऐसे मार्ग थे जो भीतरी क्षेत्रों को नदी घाटियों की बस्तियों, तटीय कस्बों और शासक सामंत की राजधानियों से जोड़ते थे।

   vii) सातवाहन शासकों ने व्यापार मार्गों में जल विभाजक बनवाए थे और उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी नियुक्त किए थे।

   viii) चाहे उत्तर में पाए गए हों या दक्षिण में, आहत सिक्कों का वज़न समान था।

   ix) प्राचीन दक्षिण भारत में रोमन *स्वर्ण* सिक्कों का उपयोग केवल आभूषणें के लिए किया जाता था।

   x) व्यापारियों द्वारा दिया गया कर *कारूकर* कहलाता था।

3) *तमिलाहम्* में नमक कारवां पर पाँच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

4) दक्कन व्यापारी संगठनों के बारे में एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

5) लगभग 50 शब्दों में प्राचीन दक्कन और दक्षिण भारत में व्यापारी मार्गों के तुलनात्मक अनुभव का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

6) प्राचीन भारत में स्थानीय सिक्कों पर पाँच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

7) चांदी के आहत सिक्कों पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

8) रोमन सिक्कों और दक्षिण भारत में उनके उपयोग पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

16.13 तोल और माप

विनिमय की विकसित प्रणाली के लिए नियमित माप और तोल आवश्यक हैं। इससे किसी वस्तु को तोलना, मापना और गिनना संभव है; जब कोई उसे खरीद रहा है या बेच रहा है तो विनिमय आसान और कारगर हो जाता है। क्रेयता और विक्रेयता को खरीदी गई या बेची गई वस्तु की मात्रा या आकार के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता। दक्कन में जहां व्यापार केन्द्रों में विभिन्न वस्तुओं का व्यापार एक नियमित कार्य था वहां सही-सही माप का विचार भी अवश्य विद्यमान रहा होगा। भिन्न-भिन्न मूल्य वर्ग के सिक्के जारी किए गए थे और भूमि *निवर्तना* के सदंर्भ में मापी जाती थी।

सुदूर दक्षिण में *मा* और *वेलि* भूमि के माप थे। यहां कर देने के लिए अनाज *अम्बनम* में तोला जाता था। संभवतः यह बड़ा तोल था। छोटे मापों के रूप में *नलि, उलक्कु,* और *अलक्कु* भी जाने जाते थे।

वज़न को तराजू से तोला जाता था। तराज़ू शायद एक डंडा होता था जिस पर निशान लगे होते थे। छोटी से छोटी वस्तु भी तराजू से तोली जा सकती थी। तराजू पर सोना तोलने की बात भी हमें बताई गई है। दिन-प्रतिदिन के लेन-देने अनाज *येल,* धान अनाज (*नेल*), अंगुलियों और हाथ की लंबाई के अनुसार रेखीय माप में व्यक्त किए जाते थे।

16.14 शहरी केन्द्र

उपर्युक्त चर्चा के दौरान हमने प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार के वाणिज्यिक विस्तार के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया है। इस प्रारंभिक व्यापार से कई शहरी केन्द्रों के उद्‌भव और विकास में बहुत प्रोत्साहन मिला। हम दक्कन के उन केन्द्रों का वर्णन शुरू करेंगे जहां शहरी विकास के स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं।

पश्चिमी और पूर्वी समुद्र तटों पर कई बंदरगाह थे। आन्ध्र के तटीय प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा के ढहाना में कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र थे। यहां ये जहाज मलय प्रायद्वीप और पूर्वी द्वीपसमूह को जाते थे। परन्तु पश्चिमी बंदरगाह भारूकच्छ (भरूच), सोपारा और कल्याण भारतीय-रोमन व्यापार की प्रारंभिक अवस्था में अधिक पुराने और महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं।

भीतरी इलाके में बड़े और छोटे शहरी केन्द्र थेः प्रतिष्ठान (पैठण), टगरा (टेर), भोगवर्धना (भोकरदना), करहाटका (कराड), नासिक, वैजयंती, धान्यकटका, विजयपुरी नागार्जुनकोंडा आदि थे। हम निम्नलिखित कारकों का पता कर सकते हैं जिनके फलस्वरूप इन केन्द्रों का उद्‌भव हुआ, जो सामान्य ग्रामीण बस्तियों से भिन्न थे :

i) कृषि का भीतरी प्रदेश जो शहरी केन्द्र में रहने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों के उपभोग के लिए आवश्यक अतिरिक्त अनाज पैदा करने में सक्षम था।

ii) व्यापारी, कारीगर, हस्तशिल्पी जैसे व्यावसायिक वर्गों का उदय जो खाद्यान्न उत्पादन से सीधें जुड़े हुए नहीं थे।

iii) ऐसे संगठनों का उदय जो व्यापारियों और कारीगरों के कार्यों को संगठित करते थे।

iv) स्थानीय और विदेशी विनिमय में आवश्यक वस्तुओं के संग्रह की सुविधाएं तथा नौवहन विकास।

v) केन्द्रों को अधिशेष सामग्री भेजने तथा सहायता और सुरक्षा भी प्रदान करने के लिए सक्षम शासक वर्ग।

vi) मुद्रा प्रणाली का आविर्भाव।

vii) लेखन प्रक्रिया का विस्तार जो गणना, लेखांकन और पंजीकरण के लिए आवश्यक है।

कार्यात्मक दृष्टि से शहरी केन्द्र विभिन्न श्रेणियों के थे। जैसे प्रशासनिक केन्द्र, संग्रहकर्ता केन्द्र, छावनी, विदेशी व्यापार केन्द्र, विपणन और विनिर्माण केन्द्र। तथापि, इनमें से अधिकांश कार्य एक ही शहरी केन्द्र में किया जा सकता था।

अधिकांशतः *संगम* कविताओं तथा अन्य साहित्यिक लेखों के आधार और कुछ सीमा तक पुरातत्व के आधार पर *तमिलाहम्* में तीन अलग-अलग किस्म के केन्द्रों का पता लगाया जा सकता है :

- ग्रामीण विनिमय केन्द्र;
- अंतर्देशीय विपणन नगर; और
- बंदरगाह

विभिन्न *तिनई* (पर्यावरणीय क्षेत्रों) के बीच जीविका की वस्तुओं के विनिमय की प्रक्रिया के दौरान सम्पर्क स्थलों के रूप में कई केन्द्रों का आविर्भाव हुआ। अधिकतर ये सम्पर्क स्थल पारंपरिक मार्गों के मिलन केन्द्र पर होते थे। इनमें से कुछ केन्द्र नियमित विनिमय कार्यों के कारण बहुत सक्रिय हुए। इसलिए आधुनिक परिभाषा के अनुसार इन स्थानों को ''शहरी'' केन्द्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। फिर भी, समकालीन समाज उन्हें सामान्य कृषक बस्तियों से भिन्न समझता था। अंतर्देशीय कस्बों जैसे उदैपुर (वर्तमान तिरुचिरापल्लि के समीप), कांची (कांचीपुरम्) और मदुरै में बाज़ार थे। वे पूर्णतः शहरी केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।

पट्टिनम (बंदरगाह नगर) भी शासकों के संरक्षण में काफी सक्रिय थे। ऐसे कई केन्द्र थे। पूर्वी तट पर पुहार अथवा कावेरीपम्पटिटनम चोल राज्य में; अरिक्कमेडु, कोरकइ पांड्य राज्य में; पश्चिमी तट पर मुसिरी और तोंडि (चेर राज्य), बकरे और नेलेयंदा समुद्री व्यापार के केन्द्र थे और अरिक्कमेडु जैसे कुछ नगर यवनों की बस्तियां थी। मुसिरा बहुत व्यस्त बंदरगाह था, यहां हर प्रकार के जहाजों की भीड़ रहती थी और बड़े-बड़े गोदाम और बाजार थे।

चूंकि बंदरगाहों पर व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था इसलिए *पट्टिनम* स्थानीय विनिमय तंत्र के साथ निकटता से नहीं जुड़े थे। वे मुख्य रूप से विदेशी व्यापार के केन्द्र; बने रहे और शासक तथा धनी वर्ग उनके ग्राहक थे। इस प्रकार इन केन्द्रों की प्रगति का कारण विदेशी व्यापार था। विदेशी व्यापार के ह्रास से ये केन्द्र भी कमज़ोर पड़ गए और धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

इसलिए निम्नलिखित के अभाव के फलस्वरूप इन शहरी केन्द्रों का स्वरूप बना थाः

क) स्थानीय विनिमय संजाल से संबंध,

ख) दस्तकारी विशेषज्ञता,

ग) मठों और व्यापार संगठनों जैसी संस्थाओं का सहयोग।

16.15 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव

ऐसा नहीं लगता कि प्रारंभिक व्यापार और शहरी विकास कार्यों से *तमिलाहम्* के सामाजिक जीवन में बहुत अधिक आधारभूत परिवर्तन आए। स्थानीय विनिमय आजीविका-प्रधान था। इसका तात्पर्य यह है कि वे मदें जो स्थानीय विनिमय के माध्यम से लोगों को प्राप्त होती थीं वे विभिन्न वर्गों के लोगों के नियमित खपत की होती थीं। दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास

की वस्तुओं का होता था जो केवल सामंतों के नातेदारों और उनके प्रतिनिधियों तक सीमित था। वैयक्तिक व्यापारियों की सम्पत्ति एवं समृद्धि, जैसा कि भिक्षुओं को उनके उपहार में दिखाई देता है, बहुत प्रभावशाली नहीं थे।

कारीगरों और व्यापारियों का कोई संगठन नहीं था। वे परिवार के सदस्यों या निकटतम संबंधियों की तरह मिल-जुलकर काम करते थे। इस प्रकार वे केवल जनजाति स्वरूप के नातेदारी संबंधों के अनुसार काम करते थे।

किन्तु दक्कन में स्थिति भिन्न थी। स्थानीय व्यापारी वर्ग की भागीदारी दूरस्थ व्यापार के लिए भी आवश्यक थी। इसलिए इस व्यापार के लाभ समाज के निचले स्तरों में भी आए। कारीगरों, शिल्पियों और व्यापारियों की सम्पत्ति और समृद्धि बौद्ध मठों को उनके दान में झलकती है।

कारीगरों और व्यापारियों के *संघ* संगठनों के कारण पुराने नातेदारी संबंध टूटने लगे और हस्तशिल्प की वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापार के कार्यों में नए किस्म के संबंध बनने लगे।

शासकों, वाणिज्य वर्गों और बौद्ध मठों के बीच संबंधों से दक्कन की अर्थव्यवस्था और समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हुए।

बोध प्रश्न 4

1) नीचे दिए गए कथनों में सही (✓) और गलत (✕) का निशान लगाइए:

   क) *मा* और *वेलि* रेखीय माप थे।

   ख) प्रारंभिक के दक्षिण भारत में तटीय कस्बों की अपेक्षा अंतर्देशीय कस्बे अधिक सक्रिय थे।

   ग) संघों ने कारीगरों और व्यापारियों के बीच उत्पादन संबंधों में कुछ परिवर्तन शुरू किए।

   घ) विलास की वस्तुओं का प्रचलन सम्राट के सदस्यों और उनके परिवारों में ही था।

   च) दक्कन में दूरस्थ व्यापार स्थानीय विनिमय तंत्र पर आश्रित नहीं था।

2) मठों और व्यापारियों के बीच संबंधों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) स्थानीय व्यापारियों और कारीगरों पर व्यापार तथा शहरीकरण के प्रभाव पर एक टिप्पणी लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

16.16 सारांश

इस इकाई में हमने प्रायद्वीपीय भारत की कृषि बस्तियों और कृषक समाज के कई पहलुओं पर चर्चा की। आपने इस पाठ से सीखा हैः

- तमिल क्षेत्र के विभिन्न उपक्षेत्रों के आर्थिक कार्यकलाप,
- कृषि बस्तियों का प्रसार,
- भूस्वामित्व की समस्या,
- संसाधानों का संग्रहरण और वितरण,
- तमिल क्षेत्र और दक्कन में सामाजिक संगठन की मुख्य विशेषताएं,
- वे नए परिवर्तन जो ईस्वी सदी की शुरू की शताब्दियों में कृषि व्यवस्था में लागू किए गए और इन तत्वों द्वारा लाए गए परिवर्तन।

इस इकाई में प्राचीन प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करने का भी प्रयास किया गया है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में भी पढ़ा है :

- विभिन्न प्रकार के व्यापार और तरीके जिनमें विनिमय होता था,
- कारीगरों और व्यापारियों के *संघ*,
- विनिमय सुविधाएं जैसे परिवहन, भंडारण और नौवहन,
- विभिन्न प्रकार के सिक्के जो विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्रों के विशिष्ट लक्षण और कार्य,
- प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार और शहरीकरण का प्रभाव।

16.17 शब्दावली

आहत सिक्के : इन सिक्कों के निर्माण में धातु को पीट-पीटकर चपटा बनाया जाता था और तब उन्हें पट्टियों में काटा जाता था। खाली चद्दर को अपेक्षित भार के टुकड़ों में काटा जाता था। पहले तो ये टुकड़े वर्गाकार या आयताकार थे। सही भार के लिए इनके किनारों को छीला जाता था। इसलिए इन सिक्कों का आकार एक जैसा नहीं होता था। पंचित्र से उन पर प्रतीक चिन्हों का ठप्पा लगाया जाता था। प्रत्येक पंचित्र का प्रतीक बिल्कुल पृथक होता था।

निर्देशित व्यापार : इसका संबंध उस व्यापार से है जिसमें व्यापार के केन्द्र होते थे इन केन्द्रों में लंगरगाह और भंडारण की सुविधाएं तथा नागरिक एवं कानूनी संरक्षण और भुगतान विधि पर कराकर जैसी सुविधाएं दी जाती थीं।

निगम : व्यापारियों और कारीगरों का संघ।

पोतिन : तांबा और टीन का यौगिक।

मुद्राशास्त्री : वे विद्वान जो सिक्कों के अध्ययन में विशेषज्ञ होते हैं।

पण : तमिल क्षेत्र के प्राचीन गायक जो सामंतों की प्रशंसा में गीत गाते थे।

कर्त्तन और दहन खेती : कृषि का अपरिष्कृत तरीका। पहाड़ी ढलानों में पेड़ों और झाड़ियों को काटा जाता है और उन्हें जलाया जाता है। इस प्रकार, जमीन तैयार की जाती है और बीज बोया जाता है।

झूम खेती : खेती का एक तरीका जिसमें खेती का स्थान समय-समय पर बदला जाता है। एक ही स्थान को बार-बार उपयोग करके उनकी उर्वरता को नष्ट होने से बचाने के लिए ऐसा किया जाता है।

तिनइ/तिनैं : प्रारंभिक तमिल क्षेत्र में भूमि के भू-आकृतिक विभाजन के लिए प्रयुक्त प्रजातिगत शब्द।

16.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) ✓ ख) ✕ ग) ✓ घ) ✓ ड.) ✕ च) ✕ छ) ✕ ज) ✕ झ) ✕
2) आपको अपने उत्तर मे *कुरिंजी, मुल्लै* आदि के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.2 देखिए।
3) आपको चारागाहों और पशु-पालन के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.2 देखिए।
4) भाग 16.3 देखिए।
5) आपको हल-फाल, दराती, फावड़ा आदि जैसे औज़ारों तथा तालाब एवं कुंए से सिंचाई के बारे में लिखना चाहिए। उप-भाग 16.3.2 देखिए।
6) आपको *वेल्लालर, गहपति* आदि और उनके अधिकारों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.4 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) क) ✕ ख) ✓ ग) ✕ घ) ✓ ड.) ✕ च) ✕ छ) ✓ ज) ✓ झ) ✓
2) आपको कृषक क्षेत्रों पर आक्रमणों के बारे में लिखना चाहिए। उपभाग 16.5.3 देखिए।
3) आपको किसानों पर हुई ज्यादतियों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.5.3 देखिए।
4) भाग 16.6 देखिए।
5) आपको धार्मिक तथा अन्य प्रयोजनों के लिए दान में दी गई भूमि और गाँवों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.7 देखिए।
6) आपको धार्मिक लाभार्थियों को दिए गए दान द्वारा कृषि क्षेत्र में आए परिवर्तनों के बारे में लिखना चाहिए। भाग 16.7 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) उप-भाग 16.8.1 देखिए।
2) क) ✕ ख) ✓ ग) ✕ घ) ✕ ड.) ✓ च) ✓ छ) ✓ ज) ✓ झ) ✕ न) ✕
3) भाग 16.9 देखिए।
4) भाग 16.9 देखिए।
5) भाग 16.10 देखिए।
6) भाग 16.11 देखिए।
7) भाग 16.11 देखिए।
8) भाग 16.11 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) क) ✕ ख) ✕ ग) ✓ घ) ✕ ड.) ✕
2) भाग 16.14 देखिए।
3) भाग 16.15 देखिए।

16.19 संदर्भ ग्रन्थ

ल्यूडेन, डी. (1985) *पैज़ेंट हिस्ट्री इन साउथ इंडिया।* न्यू जर्सी।

नीलकंठ शास्त्री, के. ए. (1958) *ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडियाः फ्रॉम अर्लियेस्ट टाइम्स टू विजयनगर।* म्रदास।

पाराशर – सेन, आलोका (एडि.) (1993) *सोशल एण्ड इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ द अर्ली डेक्कनः सम इंटरप्रिटेशन्स।* नई दिल्ली।

रे, एच. पी. (1986) *मोनैस्टरी एण्ड गिल्ड, कॉमर्स अंडर द सावावाहनाज़* । नई दिल्ली।

याज़दानी, जी. (एडि.) (1982) *द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन।* रिप्रिंट, दिल्ली।

इकाई 17 तमिल भाषा और साहित्य का विकास*

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगें कि:

- तमिल साहित्य कितना पुराना है;
- तमिल वीर और प्रेम का काव्य क्या है;
- उनकी रचना एवं वर्गीकरण कैसे किया गया;
- उनकी साहित्यिक विशेषतायें क्या हैं; और
- उस काल की दूसरी रचनायें क्या हैं?

17.1 प्रस्तावना

आपने पिछले इकाई में पढ़ा कि किस प्रकार से *तमिलाहम्* में नई बस्तियों का विकास हुआ और कैसे कृषि का फैलाव एवं व्यापार की उन्नति हुई। व्यापार के कारण लोग बाहर से आकर बसते हैं और प्रदेश के अन्दर ही स्थानीय एवं बाह्य लोगों के बीच पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया के लिये अवसरों का प्रारंभ होता है। संस्कृतियों के पारस्परिक संबंधों की प्रक्रिया किसी क्षेत्र में भाषा एवं साहित्य के विकास में सहायता करती है। इस इकाई में आप तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-7 से ली गई है।
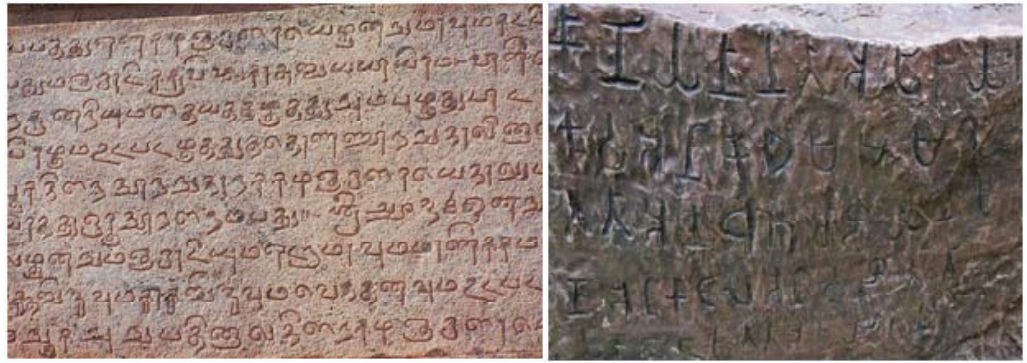
बाएंः राज राजा चोल द्वारा 1003 और 1010 सी.ई. के बीच निर्मित किए गए तंजावुर बृहदेश्वर मंदिर, तमिलनाडु की दीवारों पर मिली प्राचीन तमिल लिपि। श्रेयः सिम्फनी सिम्फनी। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ancient_Tamil_Script.jpg)।

दाएं : चेन्नई के दक्षिण छित्र में मिला प्राचीन तमिल (लगभग 6वीं शताब्दी बी.सी.ई – 6वीं शताब्दी सी.ई.) में लिखा लगभग 2वीं शताब्दी बी.सी.ई. का मंगुलम ब्राह्मी शिलालेख। इसमें पांडियन राजा नेदुनचेझियान प्रथम और जैन भिक्षुओं का उल्लेख है। श्रेयः सोडाबॉटल। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mangulam_inscription.jpg)।

17.2 प्रारम्भिक साक्ष्य

लगभग 3वीं सदी बी.सी.ई. के आस-पास तमिल पूर्णतः साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी, अर्थात् ऐसी भाषा के रूप में जिसकी अपनी स्वयं लिखने की एक प्रणाली थी। तमिल साहित्यिक परंपरा अर्थात् तमिल भाषा में लेखन की परंपरा के संदर्भ में सबसे प्रारंभिक प्रमाण मदुरई की पहाड़ियों में बनी जैन एवं बौद्ध गुफाओं से प्राप्त तमिल ब्राह्मी के शिलालेख हैं। ये शिलालेख उन लोगों और संस्थाओं की पट्टिकाओं के रूप में हैं जिन्होंने इन गुफाओं को दान दिया। उनमें मुख्य अरिजापट्टी (मौथलम, मदुरई) कारूंगलाकूति (मैलूर, मदुरई), कौंगरपुलियाम्कूलम (मदुरई), अजकरमलई (मदुरई) हैं। इन लेखों में तमिल के ऐसे बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनको स्थानीय स्तर पर संस्कृत, प्राकृत या पालि भाषाओं से ग्रहण किया गया है। *निगम्ततोर* (निगम का सदस्य) और *वणिकन* (वह पुरुष जो *वणिकम्/वणिगम्* अर्थात् व्यापार में संलग्न है) शब्दों को उदाहरण के रूप में बताया जा सकता है कि इनको तमिल भाषा में संस्कृत से ग्रहण किया गया है। इसको भी भली-भाँति जान लेना चाहिए कि इन लेखों में जिस तमिल भाषा का प्रयोग किया गया है वह तमिल साहित्य की भाषा से काफी अलग प्रकार की है। यह अन्तर इसलिए आया क्योंकि उत्तर की ओर से देशान्तर करने वाले जैन एवं बौद्ध धर्मों के अनुयाइयों ने काफी बड़ी संख्या में संस्कृत और प्राकृत या पालि की उक्तियों का प्रयोग किया। इन उक्तियों को तमिल भाषा की भाष्य प्रणाली के अनुरूप ही ग्रहण किया गया। इन लेखों में जिस ढंग से व्यक्तियों, व्यावसायिकों एवं स्थानों के नामों का प्रयोग हुआ है उस से तमिल का साहित्यिक भाषा के रूप में सूत्राधार मिलता है। इन लेखों का लेखन काल सामान्यतः लगभग 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के मध्य का है। तमिल भाषा के वीर काव्यों की लोकप्रियता *संगम* साहित्य के नाम से है और यह साहित्य ही तमिल साहित्य की प्राचीनतम परम्परा का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

17.3 प्रेम और वीरता के काव्य

तमिल के वीर काव्यों को *संगम* साहित्य इसलिये कहा गया है क्योंकि इनको *संगम* के द्वारा एकत्रित और वर्गीकृत किया गया। *संगम* विद्वानों की एक संस्था थी। इन कविताओं की रचना स्वयं *संगम* के द्वारा नहीं की गई थी। वास्तव में ये कवितायें *संगम* से अधिक पुरानी हैं। *संगम* का इतिहास किवदंतियों से भरा पड़ा है। परम्परा के अनुसार प्रारंभ में तीन *संगम*

अस्तित्व में थे परन्तु अन्ततः उनमें से एक ही *संगम* के द्वारा किये गये कार्य जीवित रह सके। पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि ये *संगम* दरबारी कवियों की संस्थायें थीं। परन्तु अब यह स्वीकृत तथ्य है कि वे साहित्यिक विद्धानों के द्वारा गठित की गई थीं। *संगम* और वीर काव्यों की रचना के मध्य समय-अंतराल है उसके कारण *संगम* साहित्य मिथ्या नाम जैसा हो गया हैं। कुल मिलाकर तमिल वीर काव्य लोक कथाओं की उत्पत्ति था। ये भाट कवियों की परम्परा के महत्व को अभिव्यक्त करती है। ये भाट कवि अपने आश्रयदाता सरदारों की प्रशंसा में गाते हुए घूमते रहते थे। फिर भी, सभी काव्यात्मक रचनायें घूमक्कड़ भाट कवियों की रचना नहीं थीं। उनमें से कुछ की रचना विद्धान कवियों ने की थी जिन्होंने भाट कवियों की परंपरा का अनुकरण किया। कापिलर, पारानर, अव्वायर और गौतमनार इस काल के जाने-पहचाने कवि थे। ये विद्धान भाट कवि थे और इनको साधारण भाट कवियों से अलग *पुलावर* के नाम से जाना जाता है। साधारण भाट कवियों को *पनार* कहा गया है। यह साहित्य किसी विशेष सामाजिक समूह या गुट से संबंधित नहीं है बल्कि साधारण जीवनयापन का एक भाग ही है। ये कवितायें कई शताब्दियों में फली फूलीं जिससे ऐसा लगता है कि तमिल भाषा एवं साहित्य का क्रमिक विकास हुआ। वे न केवल अपनी वास्तविक पहचान को कायम रखने में सफल हुई बल्कि वे वर्गीकृत काव्य-संग्रह या चुनिन्दा संग्रह का अभिन्न अंग बन गई।

पहली दो तमिल *संगमों* के पिता और अध्यक्ष, महर्षि (महान ऋषि) अगस्तयार। लखी सराय, बिहार में पाई गई और अमरीका के लॉस एंजिल्स काउंटी संग्रहालय में संरक्षित मदुरै, पांडियन राजवंश की 12वीं शताब्दी की पत्थर की मूर्तिकला। श्रेयः विकिमीडिया लव्स आर्ट पार्टिसिपेंट ''टीम-ए''। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:WLA_lacma_12th_century_Maharishi_Agastya.jpg)।

17.3.1 वर्गीकरण

अब हम वर्गीकृत काव्य संग्रहों से कुछ विशेष काव्यात्मक शीर्षकों एवं परिपाटियों से प्राप्त की गई कविताओं को देखेंगे। *एट्टूतोगै* अर्थात् कविताओं के आठ संग्रह और *पत्तुप्पाट्टू* अर्थात् दस काव्य संग्रह-ऐसे काव्य संग्रहों की दो श्रेणियां हैं जिनमें वीर गाथा काव्यों का वर्णन है। *एट्टूतोगै* के अन्तर्गत *नट्रिनाइ, कुरून्तौकाइ, ऐन्कुरूनुरू, पातिरूप्पडू* आदि काव्य संग्रहों के

समूह हैं। उदाहरणार्थ, *मूल्लैप्पाट्टू, मदूकिक्कंज, कुरून्जीप्पहू* आदि काव्य संग्रह *पट्टूपट्टू* के अन्तर्गत हैं। काव्य संग्रहों को *अकम* में विभाजित किया गया है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिनिष्ठ प्यार या प्रेम जैस विषयों का वर्णन है और *पुरम* के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ जैसे लूट और सर्वनाश विषयों का वर्णन हुआ है। काव्य संग्रहों की इन श्रेणियों में *अकम* और *पुरम* जैसे शीर्षकों पर कवितायें हैं। अकनानूरू काव्य ग्रंथ में *अकम* शीर्षक पर लिखी गई *चार सौ* कवितायें है और *पुरानानुरू* काव्य संग्रह में *पुरम* शीर्षक पर आधारित कवितायें हैं और ये दोनों *एट्टूतौगे* श्रेणी में ही आते हैं। इसी भांति दोनों *अकम* और *पुरम* काव्य संग्रह *पत्तू पत्तू* श्रेणी में आते हैं। वीर काव्य ग्रंथों के अलावा *संगम* साहित्य के वर्गीकृत ग्रंथों के अन्तर्गत तमिल व्याकरण का ग्रंथ *तोल्काप्पियम* और 18 धर्मोपदेशों के वर्णन से परिपूर्ण ग्रंथ *पतिनेन्कीश्कणक्कू* भी आता है। *तिरुक्कुरल* द्वारा रचित सुप्रसिद्ध *तिरूक्कूरल* इन 18 धर्मोपदेशों में से एक हैं। *तोल्काप्पियम* और *पतिनेन्कीश्कणक्कू* दोनों की रचना *एट्टूतौगे* और *पत्तू पत्तू* काव्यों के संकलन के बाद हुई। वीर काव्य संग्रहों के संकलन की तकनीकी एवं शैली बाद में की जाने वाली रचनाओं से विशिष्ट प्रकार का अन्तर रखती हैं।

तमिलनाडु के कन्याकुमारी के पास एक छोटे से द्वीप के ऊपर तमिल कवि एवं दार्शनिक तिरुवल्लुवर की 133 फीट (40.6 मीटर) ऊंची प्रतिमा। श्रेय : शिवम् एस.पी. 182। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Thiruvalluvar_Statue_of_kanyakumari.jpg)।

17.3.2 काव्य संगठन

वीर काव्यों का संकलन मौखिक भाट साहित्य के सिद्धान्तों के आधार पर किया गया। मौखिक संकलन की विशेषतायों सारे विश्व में लगभग एक जैसी हैं। भरपूर मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों का प्रयोग मुख्य विशेषता है। इनमें उन्हीं मुहावरों एवं अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है जो उन सामान्य जनों के मध्य प्रचलित थे। कवि लोग इनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति को जानते थे और वे यह भी जानते थे कि इनका कहां एवं कैसे अपनी कविता में उपयोग किया जाये। कविताओं के संकलन में मूल भावों एवं स्वाभाविक अभिव्यक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि उनको मौखिक रूप से प्रसारित किया जा सके और उनमें सामान्य रूप से भाट कवियों के साथ-साथ समाज की भागीदारी भी स्पष्ट हो सके। कविताओं में घटित होने वाले विभिन्न संदर्भों की अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने के लिये काव्यात्मक बनाने की आवश्यकता होती थी। उदाहरण के लिये, यदि किसी सरदार की प्रशंसा करनी होती थी तो उसकी प्रशंसा के लिये ''मालाधारी विजेताओं का योद्धा'', ''गौरवशाली रथों का स्वामी'', ''तेज दौड़ने वाले अश्वों का सरदार'', ''आंखों को रसिक लगने वाला योद्धा'' जैसे काव्यात्मक शब्दों का प्रयोग बिना किसी रूकावट के किया जाता था फिर चाहे कोई भी कवि

या सरदार रहा हो। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाट कवि कृत्रिम अभिव्यक्तियों एवं उनके संदर्भों के प्रयोग में दक्ष थे। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम उनकी काव्यात्मक प्रतिभा को कम करके देखना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवियों की व्यक्तिगत शैली एवं अभिव्यक्ति का कोई विशेष महत्व नहीं है। मौखिक कविता में छंद रचनाओं की तकनीकी साधारण शैली एवं अभिव्यक्तियों पर निर्भर करती थी। यह संकलन की एक ऐसी तकनीकी थी जिसमें ऐसे मुहावरों का प्रयोग होता था जिन पर न केवल कवियों की बल्कि समाज की भी सामान्य तौर पर पकड़ होती थी। इसलिये बार-बार ऐसी पंक्तियों एवं शीर्षकों का वर्णन आया है जिनका उदार परिवर्तन के साथ अनेक कवियों ने विभिन्न काव्यों में प्रयोग किया। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को किवदंतियां सुनाने की प्रक्रिया द्वारा वीर कवितायें पुरानी यादगारों से भरी हुई थीं। जिसके कारण इन कविताओं की रचना समय का निर्धारण करने में कठिनाई होती है।

17.3.3 समय निर्धारण की समस्या

संगम साहित्य के ग्रंथों में वर्णित श्रेणीबद्ध समस्याओं से इनके रचना समय को निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। ग्रंथों की कवितायें वास्तव में भिन्न-भिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन काव्यों के वास्तविक संकलन एवं मौखिक प्रसारण में 2वीं सदी बी.सी.ई. से 3वीं सदी सी.ई. के बीच की कई शताब्दियों का समय है। इनका काव्य संग्रहों के रूप में संकलन 6वीं सदी सी.ई. से 9वीं सदी सी.ई. के मध्य में हुआ। इनकी समीक्षाओं का काल भी 13-14वीं सदी सी.ई. से पूर्व का नहीं है। *तोलकाप्पियम* जो परम्परागत व्याकरण निबन्ध है अपने वर्तमान रूप में 3वीं सदी सी.ई. से पूर्व का नहीं है यद्यपि इसके कुछ आधारभूत भाग कुछ थोड़े से पहले के हो सकते हैं। *किजखानाक्कू* के सभी ग्रंथ 3वीं सदी सी.ई. के बाद वाले समय के हैं। *संगम* साहित्य का समय निर्धारण करने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसके प्रारंभिक व बाद के स्वरूप को निश्चित करना कठिन है क्योंकि ये सब एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं।

17.3.4 काव्यशास्त्र

संगम साहित्य के आधार पर कुछ स्वस्थ विकसित काव्यात्मक परम्पराओं का विकास हुआ। यद्यपि काव्यात्मक परम्पराओं का विकास कुछ बाद की शताब्दियों में हुआ परन्तु संकलन के नियम एवं आचार विधियां तमिल भाट काव्य की पुरानी परंपराओं का ही भाग थीं। पारम्परिक तमिल काव्य की दो मूलभूत विशेषताओं को *अकम* एवं *पुरम* नामक काव्य शैलियों में विभाजित किया गया है। इस इकाई के पहले भाग में ही हम *अकम* एवं *पुरम* काव्यों के विषय में बता चुके हैं। पांच *तिनइ* के संबंध में *अकम* को प्रेम के पांच उपभागों में विभाजित किया गया है प्रत्येक *तिनइ* एक विशेष प्रकार की प्रेम मुद्रा से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ, *पालै* प्रेमियों के बिछुड़ने की भावना से संबंधित है। *पुरम* काव्य की कविताओं में अपने स्वरूप *तिनइ* (स्थितियों तथा दृश्यों) एवं संदर्भों का वर्णन है। इसमें नौ दृश्यों और 63 संदर्भों का वर्णन है जिनको कवि संकलन के लिये ग्रहण कर सके। *अकम* एवं *पुरम* काव्य संग्रहों की कविताओं में प्रत्येक की निश्चित परम्पराओं का अनुसरण किया गया। प्रत्येक *अकम* कविता में *तिनइ* के ऐसे भाव का अनुसरण किया गया था जिसके स्वयं अपने देवता, जीव, प्राणी, जीवनयापन के तरीके, संगीत यंत्र एवं गीत होते थे। इसी भांति प्रत्येक *पुरम* काव्य में ऐसे प्रतिबंधों का अनुसरण किया गया है जो *तिनइ* अर्थात् दृश्यों और व्यवहार की विविधता से जुड़े थे।

17.3.5 साहित्यिक विकास

तमिल साहित्य परम्परा भारत के शास्त्रीय संस्कृत साहित्यिक परम्परा से स्वतंत्र है। यह संस्कृत भाषा के समानांतर ही भाषायी परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन इसके बावजूद भी तमिल भाषा एवं साहित्य के विकास की प्रक्रिया का प्रवाह कभी भी अलगाव की अवस्था

में नहीं हुआ। तमिल साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है। वीर काव्यों एवं *संगम* साहित्य की अन्य रचनाओं में आर्य संस्कृति के विषय का वर्णन है। यहां पर आर्य संस्कृति से हमारा तात्पर्य वैदिक काल के विचारों तथा संस्थाओं से है। वैदिक अनुष्ठानों की परम्परा को भी इन कविताओं के द्वारा प्रमाणित किया गया है। गौतमानर, पाशनर और कपिला जैसे कुछ भाट कवि *ब्राह्मण* थे। कवि गौतमानर को इसलिये उद्धृत किया गया है कि उसने अपने आश्रयदाता चेर सरदार चेलकेजू कुत्तून का भाग्य परिवर्तन करने के लिए बहुत से यज्ञ या वैदिक बलि सम्पन्न किए। तमिल वीर काव्य में महाकाव्यात्मक एवं पौराणिक विचारों को भी पाया गया है। जहां एक ओर संरक्षक सरदारों की प्रशंसा में कवितायें लिखी गई वहां दूसरी ओर *महाभारत* के युद्ध में उनकी भूमिका का भी वर्णन किया गया है। बहुत से पौराणिक देवी-देवताओं की तुलना तमिल देवी-देवताओं के साथ की गई है। तमिल कविताओं में मैयों (काला देवता) को कृष्ण के समान ही माना गया है। तमिल साहित्य की कठोर परम्परा के बावजूद भी इन प्रभावों को कम करके कभी भी नहीं देखा गया। तमिल साहित्य एवं भाषा का मूल पक्ष उद्भव के लिये संस्कृत का ऋृणी नहीं है। परन्तु इसके पूर्ण भाषायी एवं साहित्यिक रूप में बढ़ने एवं विकसित होने में आर्य संस्कृति के प्रभाव ने अनुगृहित किया। वीर कवितायें और प्रेम एवं *संगम* परंपरा की कुछ रचनायें प्रारंभिक तमिल क्षेत्र की व्यापक साहित्यिक संस्कृति की ही पुष्टि करती हैं। 3वीं सदी सी.ई. तमिलों ने जो भाषायी परिपक्वता प्राप्त की वह उसकी ओर भी इशारा करती है।

17.4 अन्य रचनायें

तोल्काप्पियम के मूल भाग में *किजम्वांक्कू* कुछ भाग यहां दूसरी रचनाओं को बनाते हैं। इनको दूसरी रचनायें कहा गया है क्योंकि ये वीर काव्य की भाट परंपराओं से संबंधित नहीं हैं। परन्तु भाट काव्य की परंपरा की साहित्यिक पृष्ठभूमि से ये बहुत अलग भी नहीं हैं। *तोल्काप्पियम* के भाग *प्रोरूलदिकरम* में पुराने तमिल *अकम* और *पुरम* की परंपराओं का जो वर्णन हुआ है वह वीर काव्यों की रचना काल के काफी नजदीक है। इसी प्रकार से *तिनइ* ग्रंथों एवं रचनाओं जैसे कि *कालवाजि* अपेक्षाकृत कुछ पहले के हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का मानना है कि *सिलप्पदिकारम* एवं *मणिमेकलै* दोनों महाकाव्य वीर काव्यों के समकालीन हैं लेकिन इन दोनों को काफी बाद की रचना माना गया है।

चेन्नई के मरीना समुद्रतट पर *सिलप्पादिकारम* के लेखक इलंगो आदिगल की मूर्ति। श्रेयः राकेश. 5 सुथार। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ilango_Adigal_statue_at_Marina_Beach_closeup.jpg)।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (✓) एवं गलत (×) के चिन्ह लगाओ :

   i) *संगम* साहित्य एक समान काल से संबंधित है। ( )

   ii) *संगम* साहित्य कपोलकल्पित है। ( )

   iii) वीर काव्य का संकलन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करके किया गया है। ( )

   iv) तमिल साहित्य एवं भाषा के विकास की प्रक्रिया अलगाव में हुई। ( )

2) आप तमिल भाट काव्य की साहित्यिक परंपराओं के विषय में क्या जानते हैं? इसका पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

17.5 सारांश

आपने इस इकाई में पढ़ा कि तमिल साहित्य कितना पुराना है और इसकी रचना किस भांति हुई है। आपने इस इकाई में वीर काव्य की मुख्य विशेषताओं, उनके संकलन की तकनीक एवं समय निर्धारण की समस्याओं के विषय में भी पढ़ा। जो दूसरी जानकारी अपने प्राप्त की वह है कि पुराने तमिल साहित्य एवं भाषा का क्या स्तर था। यह भी आप जान सके कि पुरानी तमिल रचनाओं का वर्गीकरण कैसे किया गया और इनका *संगम* काल में काव्य संग्रहों के रूप में संकलन कैसे किया गया।

17.6 शब्दावली

संगम : विद्वानों की एक संस्था जिसने प्राचीन तमिल रचनाओं को संग्रहित एवं वर्गीकृत किया।

अकम : कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों जैसे प्रेम आदि विषयों पर लिखा गया।

पुरम : कविताओं का ऐसा संग्रह जिसमें वस्तुनिष्ठ अनुभवों जैसे कि लूट-खसोट आदि विषयों पर लिखा गया।

भाट : वे लोग जो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में घूम-घूम कर कविताओं को संकलित करते और गाते थे।

तुराय : एक प्रकार की काव्यात्मक परम्परा जिसके अनुसार *पुरम* कवितायें विषयगत स्थिति की ओर इशारा करती हैं।

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

2) उपभाग 17.2.2 और 17.3.5 देखिए।

17.8 संदर्भ ग्रंथ

मीनाक्षी, के. (2000) *लिटेररी क्रिटिसिज़िम् इन तमिल एण्ड संस्कृत,* चेन्नई।

पीटरसन्, आई. वी. (1991) *पोयम्स टू शिवः द हिम्स ऑफ द तमिल सेन्ट्स,* दिल्ली।

शिवथम्बी, के. (1981) *ड्रामा इन एंशियन्ट तमिल सोसाइटी,* मद्रास।

ज़्वेलेबिल. के. वी. (1973) *द स्माइल ऑफ मुरूगन : ऑन द तमिल लिटेरेचर ऑफ साउथ इंडिया,* लाइडिन।